अंक 282 वर्ष 58

भाषा

जनवरी–फरवरी 2019

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

Skill India

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

जनवरी–फरवरी 2019

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर अवनीश कुमार

परामर्श मंडल

श्रीमती चित्रा मुद्गल
डॉ. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
श्री एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
श्रीमती अर्चना श्रीवास्तव

प्रूफ रीडर
इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **58** **अंक : 1 (282)**
जनवरी–फरवरी 2019

संपादकीय कार्यालय एवं बिक्री केंद्र
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.hindinideshalaya.nic.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	(डाक खर्च सहित)
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	(डाक खर्च सहित)
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	(डाक खर्च सहित)

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
संपादकीय
आपने लिखा
<u>आलेख</u>

1. मौन सौंदर्य के भीतर चेतना की आधुनिकता : हिंदी के युवा ग़ज़लकार	अनिरुद्ध सिन्हा	9
2. आनंद प्रकाश सतसैया : एक विहंगम दृष्टि	डॉ. ज्ञान चंद्र शर्मा	15
3. हिंदी एवं रोंङ्मै अव्ययों में प्रयुक्त निपातों का व्यतिरेकी अध्ययन	के. रेखा, ह. सुवदनी देवी	22
4. लघुकथा का स्वरूप-शैली एवं शिल्प	किशन लाल शर्मा	29
5. संघम साहित्य पुरनानूरु में प्रमुख कवयित्रियाँ	के. रामनाथन	32
6. इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में आदिवासी हाशिए का समाज	डॉ. मिथलेश सिंह	37
7. भाषाओं के अस्तित्व पर मँडराता संकट	राकेश शर्मा 'निशीथ'	41
8. हिंदी की शब्द संपदा और उसके अन्यतम भाषाशिल्पी तुलसीदास	डॉ. दादूराम शर्मा	47
9. भाषा का लोक स्वरूप-हिंदी की लोकोक्तियाँ तथा कन्नड के गादेगलु	डॉ. मैथिली प्र. राव	55
10. त्रिपुरा की जमातिया जनजाति की जीवन धारा	डॉ. मिलन रानी जमातिया	62
11. संस्कृत साहित्य में कुंभ और प्रयाग	प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल	76
12. कवि हृदय अटल जी	डॉ. अंजु सिंह	82

यात्रा वृतांत

13. दिल्ली से कांचीपुर, इंफाल	योगेंद्र कुमार 'गोस्वामी'	85
14. मेरी अविस्मरणीय 'मोरनी हिल्स' यात्रा	अनीता शर्मा	92

कहानी

15. कर्तव्य (मराठी)	दीपक तांबोली अनुवाद : डॉ. अशोक वाचुलकर	97
16. ढाल (सिंधी)	माया राही अनुवाद : डॉ. हूंदराज बलवाणी	100
17. जल-समाधि (हिंदी)	अर्पण कुमार	103

कविता

18. लौट आऊँगा मैं (हिंदी)	सुशांत सुप्रिय	107
19. स्वस्थ पर्यावरण (हिंदी)	फूलचंद मानव	108
20. एक अहसास (हिंदी)	अनुराधा सेंगर	109

परख

21. दुखांत कहानियों का दर्शनीय अलबम (स्वाहा-स्वाहा (कहानी-संग्रह)/पराग परिमल)	डॉ. सरोज कुमार त्रिपाठी	110
22. बालसाहित्य के प्रतिमान और साक्षात्कारों की भूमिका (हिंदी बालसाहित्य : जिज्ञासाएँ और समाधान (साक्षात्कार-संग्रह)/ डॉ. शकुंतला कालरा)	दिविक रमेश	113
23. आत्म दीपो भव (धारा को रोकते नहीं पहाड़ (काव्य संग्रह)/ डॉ. कैलाश निहारिका)	डॉ. साधना गुप्ता	117
24. सूरां दीवां देस रा, रोज बलै दिन-रात (मेड़तियों के गौरव गीत (गीत संग्रह)/ डॉ. जयपाल सिंह राठौड़)	वैद्यनाथ झा	120
25. एक बेचैनी-भरा दस्तावेज : "सांहस और डर के बीच" (साहस और डर के बीच (डायरी)/ नरेंद्र मोहन)	डॉ. अनुपम माथुर	123

प्राप्ति स्वीकार	127
संपर्क सूत्र	128
स्मृति शेष	130
समाचार समोन्नति	140

निदेशक की कलम से

नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ एवं मंगलकामनाएँ

मानवीय सभ्यता के विकास के क्रम में मनुष्य ने जब अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया होगा तो भावों और विचारों की इस सहज अभिव्यक्ति ने ही भाषा का रूप ग्रहण किया होगा। भाषा मानव समाज की ही नहीं किसी भी राष्ट्र की प्राणदायिनी शक्ति है। साहित्य हो, समाज हो अथवा राष्ट्र हो उसके विकास और उत्थान का मार्ग भाषा से होकर ही निकलता है। समय परिवर्तनशील है। बदलते समय के साथ समाज में भी एक बदलाव आया है और इस बदलाव का असर ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक शाखा के साथ-साथ भाषायी समाज पर भी दृष्टिगोचर हो रहा है। समय-परिवर्तन के साथ भाषा-शिक्षण और भाषा विज्ञान की पद्धतियों में पर्याप्त भिन्नता आई है। आधुनिक भाषा शिक्षण में जहाँ उसके सूक्ष्म अध्ययन पर बल दिया जा रहा है वहीं उसके व्यावहारिक पक्ष को भी विशेष महत्व मिल रहा है। भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण ने जीवन और साहित्य को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। इनके चलते मानवीय मूल्यों में भी बदलाव आया है। इन सब परिवर्तनों का असर भाषा पर पड़ना स्वाभाविक है। वैश्वीकरण के दबाव में और वैचारिक आग्रहों की प्रबलता के दौर में साहित्य साधना न रहकर साधन बन गया है। भाषा में विचारों की छाया होना कोई बुरी बात नहीं है पर इनकी उपस्थिति ईमानदार और संवेदनात्मक धरातल पर हो तभी श्रेष्ठ कृति तैयार होती है।

'भाषा' के माध्यम से हमारा सदैव यह प्रयास रहा है कि भाषा के सभी अंकों में गांभीर्य तथा संवेदनात्मक पृष्ठभूमि की रचनाओं का संग्रहण हो सके। भाषा के पूर्व के अंकों की भाँति इस अंक में अनेक महत्वपूर्ण एवं स्तरीय आलेखों का समावेश है जोकि पाठकों के लिए समसामयिक सूचनाओं की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। इसमें प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल का 'संस्कृत साहित्य में कुंभ और प्रयाग' आधारभूत ज्ञान-सामग्री का संग्रह है, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिंदी की लोकोक्तियाँ तथा कन्नड के गादेगलु का तुलनात्मक अध्ययन पाठकों को नवीन एवं रोचक सूचनाएँ प्रदान करेगा।

भाषा के इस अंक में हमने पिछले दिनों में दिवंगत साहित्यकारों की रचनाओं को स्मृतिशेष स्तंभ के अंतर्गत रखते हुए उन्हें स्मरण किया है। इनमें कृष्णा सोबती की प्रसिद्ध कहानी 'सिक्का बदल गया', नामवर सिंह का 'अच्छी कहानी' आलेख तथा केदारनाथ सिंह एवं विष्णु खरे की कविताओं को एक साथ संकलित कर 'भाषा' के माध्यम से इन सभी साहित्यकारों को शृद्धांजलि अर्पित की है।

भाषा का यह अंक आप सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत है। इस पर आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।
शुभकामनाओं सहित!

प्रोफेसर अवनीश कुमार

आपने लिखा

भाषा का मार्च-अप्रैल 2018 अंक मिला। यह भारतीय आत्मकथा साहित्य विशेषांक है। अंक बहुत ही सुरुचिपूर्ण एवं सुव्यवस्थित है। भारत की सभी भाषाओं में उपलब्ध आत्मकथाओं के संबंध में सटीक सूचना देने में समर्थ अंक है। एक ही कमी खली। भारतीय आत्मकथा साहित्य के अंतर्गत ज्ञान-विज्ञान के लेखकों की आत्मकथाएँ सम्मिलित हो पाती तो पूर्णता आ जाती। हिंदी के कई विज्ञान लेखकों ने आत्मकथाएँ लिखी हैं। उनका समावेश आवश्यक था।

- शिवगोपाल मिश्र, 25 अशोकनगर, इलाहाबाद - 1

भाषा पत्रिका जनवरी-फरवरी 2018 का अंक पाकर अपरिमित प्रसन्नता की अनुभूति हुई।

संपादकीय में हिंदी के प्रवासी लेखकों का परिचय, उनकी सृजनात्मकता को स्पर्श करते हुए भारत की सौंधी मार्मिकता जो माटी में है, उसका परिचय देकर पाठकों को लाभान्वित किया गया है, वह स्तुत्य है।

'वैश्विक परिदृश्य में हिंदी' और 'प्रवासी कहानीकार' आलेख में आरती स्मित ने ज्ञानवर्धक जानकारी दी।

कविताओं में 'क्या भूले क्या याद करें प्रिय' में आलोक कवि ने हृदय तंत्रिका के तारों को हिलाकर जो ध्वनि उत्पन्न की है, वह हृदय को छू गई थी।

टीनू पुरोहित की कहानी घरौंदा ने अंतर्मन में जो अहसास की अनुभूति कराई, वह शब्दों में व्यक्त किया जाना असंभव है। कुल मिलाकर, भाषा की संपूर्ण सामग्री ज्ञानवर्धक और रोचक रही। एतदर्थ समस्त रचनाकार बधाई के पात्र हैं।

मनमोहन गुप्ता (कहानीकार एवं कवि)
गुप्ता सदन, एस. बी. के. कन्या उ. मा. विद्यालय के पास,
भरतपुर,(राज.)321001

महोदय,

आपके द्वारा डाक से प्रेषित किया 'भाषा' का आत्मकथा विशेषांक प्राप्त हुआ। भारतीय आत्मकथा साहित्य के संदर्भ में अंक एक बेहतरीन उपलब्धि है। प्रस्तुत अंक में मेरा लेख प्रकाशित कर अनुग्रहीत किया, इसलिए हृदय से आभारी हूँ। भविष्य में भी संपर्क एवं सद्भाव बना रहे।

सधन्यवाद,

डॉ. गिरीश काशिद
शोध निर्देशक, हिंदी शोध केंद्र तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्रीमान भाऊसाहेब झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी
जिला-सोलापुर-413401, महाराष्ट्र

संपादकीय

बात सभ्यता के विकास की हो या उसके चरम की, नैतिकता और अनुशासन सर्वदा ही सभ्यता की नींव बने रहे हैं। आज के समय में नियम–आचार, मूल्य–बोध, नैतिकताएँ परिवर्तित हो रही हैं। जिससे वर्तमान समाज का रूप भी परिवर्तित होता जा रहा है। परंपराएँ, मान्यताएँ एवं मूल्यबोध समय सापेक्ष हैं और समाज एवं सभ्यता पर अपना प्रभाव डालते रहे हैं। भारतीय मनीषा परंपरा से विश्वशांति एवं वसुधैव कुटुंबकम् के व्यापक लक्ष्य के साथ चलती रही है। समय–समय पर पंथ और संप्रदाय के नाम पर होने वाले विभाजन भी दृष्टिगोचर होते रहे हैं किंतु सर्वधर्म समभाव एवं विश्वशांति के उद्‌देश्य में अपनी सार्थकता मानने वाली हमारी संस्कृति के पुरोधाओं में एक कामायनीकार श्री जयशंकर प्रसाद ने अपने समय में निम्न पंक्तियों द्‌वारा सांस्कृतिक उत्थान का स्वर मुखरित किया था–

बनो संसृति के मूल रहस्य,

तुम्हीं से फैलेगी यह बेल।

विश्वभर सौरभ से भर जाय

सुमन के खेलो सुंदर खेल।

हमारी भारतीय संस्कृति पुनः पुकार रही है उन कविजनों को, जिन्होंने माँ भारती की आरती उतारी थी। आज फिर एक मर्यादित, संस्कारयुक्त समाज की पुनर्स्थापना में योग दें। आज का साहित्य 'स्व' से 'पर' के लक्ष्य के साथ लिखा जाए। इस मंच से मैं उन सुधीजनों का आह्‌वाहन करता हूँ जो साहित्य सेवा के द्‌वारा समाज एवं सभ्यता के नए आयामों पर संयमित एवं अनुशासित भावी पीढ़ी के निर्माण में निरंतर संलग्न हैं। भाषा के इस स्तंभ से मैं सभी साहित्यकारों एवं सहृदय पाठकों का आभार व्यक्त करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि निरंतर आपका सहयोग भाषा के उत्तरोत्तर विकास में सहायक रहेगा।

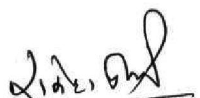

(डॉ. राकेश कुमार)

"जिस प्रकार भौतिक वातावरण की विसंगतियों का अनुशासन प्रकाश के द्वारा होता है उसी प्रकार मनुष्य के मानसिक परिवेश के बिखराव का अनुशासन कल्पना के हाथों होता है। कल्पना हमारे भीतर सोए हुए 'समष्टि मानव' को जाग्रत करती है और जीवन के बिखरे तथ्यों को एक दर्शन के सूत्र में पिरोकर संघटित करने में हमारी सहायता करती है।"

– रवींद्रनाथ टैगोर

भाषा ISSN 0523-1418

मौन सौंदर्य के भीतर चेतना की आधुनिकता : हिंदी के युवा ग़ज़लकार

अनिरुद्ध सिन्हा

यथार्थ परिवेश का जरूरी हिस्सा है जो किसी लेखक/कवि के भीतर तर्कसंगत दृष्टिकोण पैदा करता है। लेकिन इसके प्रतिवादी स्वर को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। साहित्य का सृजन सिर्फ कल्पना के माध्यम से नहीं किया जा सकता। सृजन के लिए जरूरी है सामाजिक हलचलों और समाज के बुनियादी वर्गों के साथ गठबंधन। यही गठबंधन अपने समय की बेहद अर्थपूर्ण टिप्पणियों के रूप में छोटे-छोटे सूत्रों एवं संकेतों के सहारे चेतना में प्रवाहित स्मृतियों को पकड़कर लेखकीय हैसियत मुहैया करवाता है। लेखन के हर कदम पर लेखक इसी गठबंधन से प्रेरित होकर व्यक्ति के विकास में योगदान देता है और उसका यथार्थ, जीवन शैली को किसी हद तक अपना स्वर देकर सुनिश्चित करता है।

जैविक उपस्थिति रहे या न रहे ग़ज़ल लेखन के लिए यह नितांत आवश्यक है आगे की दिशा तलाश करना---- समग्र और समर्पित होकर । इसी से समग्र काव्यानुभूतियाँ हासिल होती हैं। जहाँ तक मेरा मानना है ग़ज़ल की साहित्य में विश्वसनीयता के लिए अत्यधिक मंचीय भाव भरे निरर्थक प्रदर्शन से तो बचना ही चाहिए। जैसा कि हम जानते हैं हिंदी ग़ज़ल में प्राथमिक रूप से एक सामाजिक अवधारणा है जिसके अंतर्गत सामाजिक सुनिश्चितताओं का व्यापक क्षेत्र आ जाता है। हिंदी ग़ज़ल में कौन-कौन इन मूल्यों का पालन करता है और कैसे? समाज के बीच इसका प्रभाव किस प्रकार होता है। और निःसंदेह यह प्रभाव किस प्रकार देखना है आज के युवा ग़ज़लकारों की ग़ज़लें सामाजिक समस्याओं के समाधान और इसकी विसंगतियों के समाधान की कठिन कसौटी पर कितनी खरी उतरती हैं यह भी देखना है। युवाओं के पास अधिक जिम्मेदारी होती है अपने व्यक्तिगत जीवन की जरूरतों को पूरा करने की। हालांकि सामाजिकता का बोध तरुणाई में कम ही होता है और जिस में होता है वह अपनी उम्र से कहीं अधिक होता है। लेकिन आज हिंदी के कुछ ऐसे युवा की शक्ल में अनुभवी और जिम्मेदार ग़ज़लकार हैं जिनकी ग़ज़लों को पढ़कर उम्र दराज लोग भी इनके अनुभव पर ईर्ष्या करते हैं। हिंदी ग़ज़ल की दुनिया इन्हें आशा भरी नजरों से देख रही है। इन ग़ज़लकारों की ग़ज़लों का यदि हम रूपक बनाएँ तो जीवन की सभी तकलीफों, दर्द, घुटन, पीड़ा के साथ सामंजस्य बनाते हुए जीवन-कल्पना में मिलने वाली रोशनी की ओर स्वतः आँखें चली जाती हैं जो अपनी गरिमा और लेखकीय सादगी से चकित करती हैं...एक शानदार ग़ज़ल ने जैसे शिखर पा लिया हो...कथ्य की आभा से छिटककर तारे की तरह चमक रही हो। अब ऐसे कुछ युवा ग़ज़लकारों की ग़ज़लों की ओर रुख करें जो उत्सुकता, तीखापन और अंत मिलाकर एक विचार को जन्म देती हैं। आत्मावलोकन की प्रेरणा और जीवन जीने की सीख देती हैं। इनकी ग़ज़लों और शेरों की तह में जाकर इस सूत्र की खोज करें।

हम सितारों की उजालों में कोई कद्र कहाँ
खूब चमकेंगे जरा रात घनी होने दो ××
आज दरिया बहुत उदास लगा
एक कतरे ने फिर बगावत की

(संजू शाब्दिता)

संजू शाब्दिता की ग़ज़लों में आत्मविश्वास और आत्मगौरव के स्वाद का अनुभव होता है। इनका विश्वास सपनों की बैसाखी के सहारे आगे बढ़ने की कोशिश नहीं करता। आज की कठोर धरती पर मजबूत इरादे के साथ उतरना चाहता है। ग़ज़लों में समकालीन यथार्थ के प्रति विद्रोह, आकांक्षा और आकांक्षा के विद्रोह की ऐसी अभिव्यक्ति है जो यथार्थ और जीवन के बारे में नए ढंग से सोचने की प्रेरणा देती है। कथ्य और शिल्प में अद्भुत रचाव-बसाव है। शब्द-चयन, वैचारिक ऊर्जा के साथ कथ्य के अनुरूप भाषा का सधाव सर्जनात्मक स्थैर्य और धैर्य को प्रभावित करता है। इनकी ग़ज़लों का जन्म समाज के गंभीर सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संकट के एक तनावपूर्ण वातावरण में हुआ है। यही तनाव ग़ज़लों का विषय बनकर सामने आता है।

बिना पर के परिंदों की तरह बेबस दिखे हैं सब
जिसे सोने की चिड़िया कहते थे गुजरे जमाने में

कहाँ इन्कार है हमको गले तुझको लगाने से
मगर तू बाज तो आ पीठ में खंजर चलाने से

(डॉ. मनोज कुमार)

1982 में जन्मे युवा वैज्ञानिक मनोज कुमार शिक्षा के क्षेत्र में कई स्वर्ण पदक प्राप्त करने के बाद अपने उच्च पद के निर्वहन के साथ-साथ ग़ज़ल की सतत उपासना और आराधना में लगे हैं। व्यापक संवेदना से भरी इनकी ग़ज़लें हमारे हृदय को तृप्त करती हैं। पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित ग़ज़लें इस बात को चिह्नित करती हैं। सतत विकास मुख चिंतन ही ग़ज़लों का मुख्य स्वर होता है। कहा जा सकता है इनकी ग़ज़लों का संसार अंतश्चेतन-ग़ज़ल का संसार है। एक स्वप्नद्रष्टा बनकर, अतृप्त अभिलाषाओं के भटकाव में अनजान भटकता और अपने रिसते घावों में आँसुओं की बूंदें भरकर एक सुनसान जगह में तड़पन ही इनका लक्ष्य नहीं है, बल्कि सत्य के अन्वेषण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। अपने यथार्थ और समय की आँखों में आँखें डालकर प्रश्न करते हैं।

वर्तमान में हिंदी साहित्य कई संकटों से जूझ रहा है। कहीं यथार्थ से परे विचार, कहीं विचार के नाम पर विवाद की उत्तेजना और कहीं वास्तविकता से बच निकलने की कोशिश। ऐसे हालात में डॉ. मनोज कुमार की ग़ज़लें काफी सुकून देती हैं।

अपशब्द चीखते हैं मोहल्ले में हर तरफ
जाने ये किसकी आँख का पानी उतर गया

बात इतनी सोचना तुम हड़बड़ी को छोड़कर
चाँद पाकर क्या करोगे आदमी को छोड़कर

(के. पी. अनमोल)

यथार्थ की व्याख्या के प्रश्न पर आधुनिक हिंदी ग़ज़ल अपनी तमाम संकेतिकाओं और तरलता के साथ अपने दायित्व का निर्वहन कर रही है। मिसाल के तौर पर अनमोल के शेरों की भाव-भंगिमा पर नजर डालें तो यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है शब्द-बिंबों की बुनियादी शक्ति का उपयोग अनमोल किस बारीकी के साथ अपनी ग़ज़लों में करते हैं। कल्पना, यथार्थ के साथ चलती है जिसके सहारे आज की कथाओं और घटनाओं का सर्जनात्मक उपयोग मिलता है..."अपशब्द चीखते हैं मोहल्ले में हर तरफ"।

अनमोल एक दृष्टि संपन्न ग़ज़लकार हैं। अपने ग़ज़ल-लेखन को जितनी गंभीरता से लेते हैं, वह स्तुत्य है। ग़ज़ल के क्षेत्र में इनका अवदान सर्वज्ञात है।

आज हिंदी साहित्य में कोई भी ऐसा वैचारिक और राजनैतिक आंदोलन नहीं है जो ग़ज़ल आंदोलन की तुलना में जनसमूह से अधिक जुड़ा हो और जिसके पाठक भी हों। अधिकांश आलोचकों ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है कि ग़ज़ल का प्रभाव हिंदी साहित्य की विचारधारा पर बढ़ता चला जा रहा है।

मैं तुझे पाकर खुशी से मरने वाला था मगर
नींद टूटी ख्वाब टूटा मैं बिखरकर रह गया

सफर में हूँ मुसलसल सफर में रहने दो
तेरी नजर का सफर है सफर में रहने दो

(संतोष सिंह)

युवा ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में प्राय: यह देखा जा रहा है कि वे सभी क्षेत्रों में प्रयोग करने के पक्षधर हैं। नई शैली, नए छंद और नए प्रतीक, उपमान देखे जा सकते हैं। अपनी ग़ज़लों में वे प्रतीक, अप्रस्तुतों का अर्थ-बोध अधिक कराते हैं। अपने भावों को सूक्ष्मता के साथ दार्शनिकता लिए हुए रहते हैं। सौंदर्य-भावना में भी संस्कारों की सापेक्षता साफ देखी जा सकती है। इनकी मान्यताओं के पीछे गहन अध्ययन का बल तो है ही

साथ में यह भी इंगित होता है कि इनकी नजर में आकर्षण सौंदर्य का प्राण-तत्व है ठीक वैसे ही विकर्षण विरूपता का। संतोष सिंह के प्रथम शेर का मिसरा "मैं तुझे पाकर खुशी से मरने वाला था मगर" - इसमें समग्र शुचिता, मेध्यता एवं उज्ज्वलता जो श्रृंगार की सीमा में समाहित है, वह सौंदर्य के प्रति इसी दृष्टिभंगी का विधोजक है। उनका यह संपूर्ण वाग्विलास उनकी रस प्रतीति की व्यंजना के निमित्त नियोजित सौंदर्य, ज्ञात अथवा अज्ञात, संपूर्ण व्यंग्यार्थों को लांघकर कुछ कर लेता है --मतलब नींद टूटी ख्वाब टूटा मैं बिखरकर रह गया।

हिंदी ग़ज़ल के बारे में आम धारणा है कि इसमें निश्छलता, खुलापन, सहिष्णुता और अपने-आप में मगन रहने की विशेषता है। युवा ग़ज़लकारों की ग़ज़लों तक आने के लिए यह पृष्ठभूमि तो जरूरी है लेकिन यहाँ जिस बात की चर्चा हो रही है उसके बरक्स यह कहा जा सकता है कि वस्तुगत यथार्थ और आत्मगत संसार में इनकी ग़ज़लें समष्टिमूलक या जीवन की समग्र उपस्थिति में सामाजिक संलग्नता से जुड़ी रहती हैं।

अमित वागर्थ अपने समय के अग्रगामी, अत्यंत प्रखर ग़ज़लकार हैं। ये अपनी लड़ाई, अपने बूते लड़ना चाहते हैं। अपने भीतर संघर्ष की अनदेखी नहीं करते। अनेक प्रकार की अवधारणाओं और स्थितियों के घात-प्रतिघात से इनका ग़ज़ल-संसार व्यापक बनता है।

अभी मुझमें कहाँ इतना सलीका
बदलकर मिल सकूँ सूरत किसी से

पास रहने की सब लड़ाई थी
दूर कितने निकल गए हम

(अमित वागर्थ)

इस युवा ग़ज़लकार की ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता है कभी-कभी त्रासदी भावना में विरोध का पुट तो कभी-कभी उपहास में त्रासदी की बारीक परछाई मिलती है जो सतत लेखन-प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम होता है।

उर्दू-फारसी की कसौटी पर ग़ज़ल की ढेर सारी परिभाषाएँ गढ़ी गई हैं। मगर हिंदी ग़ज़ल-संसार में इसकी कोई सर्वमान्य और विकसित परिभाषा नहीं है। इसका मुख्य कारण है हिंदी ग़ज़ल का कविता के समक्ष खड़ा होना। पर इतना तो कहा ही जा सकता है, इसके भीतर भी एक आत्मा है जो मानवीय भावों, विचारों, स्वप्नों और उद्गारों के मधुरतम रूपों में सांसें ले रही हैं। ग़ज़ल और कविता के बीच यही एक बुनियादी अंतर है। ग़ज़ल में अंतर्भूत सौंदर्य का महत्व है और कविता में बाहरी सौंदर्य का महत्व है।

मैं कागजों के समंदर झिझोड़ जाऊँगी
यूँ हर्फ-हर्फ में दिल को निचोड़ जाऊँगी

हद में रहकर जरा देखा करो ख्वाबों को सुमन
लज्जते-इश्क मुलाकात से घट जाती है

(चित्र भारद्वाज 'सुमन')

इन दोनों शेरों में सुमन चित्रों के माध्यम से कुछ कहती हैं जिन्हें हम उपमाओं में ढालकर देख सकते हैं। प्रेम का अंतर्प्रवाह उसके भावों में होता है। हम यह भी कह सकते हैं सुमन की ग़ज़लें भाव-पक्ष से होते हुए कला-पक्ष की ओर जाती हैं। इन भाव-पक्ष और कला-पक्ष को देख-परखकर ही किसी निर्णय पर जाया जा सकता है।

ऐसा देखा जाता है दर्द प्रायः अर्थ-कल्पना संसार में यथार्थ से पलायन, विसंगतियों से समझौता कर अविकसित मानस को तृप्त करने से रोकता है। युवा ग़ज़लकार की ग़ज़लों में पलायन की ऐसी संभावनाओं का निषेध मिलता है। इनकी ग़ज़लों की राह हौसलाजनित संवेदनाओं के द्वारा संचालित होती है जिस पर निरंतर संवेदनाओं का समन्वय-विश्लेषण होता है-

दर्द का रास्ता हुआ है क्या
हौसला बेवका हुआ है क्या
तुम मुझे दो दुआ नहीं भी दो
क्या कभी हादसा हुआ है क्या

(विकास)

वर्णित दोनों शेर गहन चुप्पी के बीच से निकलते हुए हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। दर्द और हौसला का तुलनात्मक महत्व दिखलाने का प्रयास किया गया है। आशय जीवन-दर्द, यथार्थ होते हुए भी यथार्थवादी नहीं हो सकता। यह जीवन की ऊपरी सतह है जिसको मिटाया जा सकता है।

चना गेहूँ मटर अलसी औ जौ से प्यार करती हैं
मेरी ग़ज़लें मेरे खलिहान से होकर गुजरती हैं

कभी कउड़ा में आलू भूनकर खाओ तो समझोगे
तमन्नाएँ मेरी क्यों गाँव की मिट्टी पे मरती हैं
(ज्ञान प्रकाश पांडे)

ज्ञान प्रकाश पांडे की ग़ज़लों में आधुनिकता का रूप ही नहीं, इनका लोक भी मजबूती के साथ आता है। समाज में किसी न किसी यथार्थ की पूर्ति करना लोक साहित्य के अस्तित्व का ध्येय होता है। लोक वर्णन जनसाधारण के आत्मान्वेषण का सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा ही अपने अतीत से साक्षात्कार ग्रहण करते हैं। विविधता साहित्य का मूल वैशिष्ट्य रही है। इस विविधता में ही सांस्कृतिक समन्वय, उदात्त मूल्य और सामाजिक संदेश की प्रेरणा रही है जिसे ज्ञान प्रकाश पांडे अपनी ग़ज़लों के माध्यम से व्यक्त करने की कोशिश करते हैं।

युवा ग़ज़लकार प्रवीण कुमार दर्जी की ग़ज़लों का स्वर निहायत व्यक्तिगत होते हुए भी उसमें हमारे समय का चेहरा साफ दिखाई पड़ता है। उस चेहरे में हम समय की कोमलता और क्रूरता एक साथ महसूस करते हैं। कमसिन उम्र के साए पर समय के क्रूर चेहरे। इसे विडंबना ही कहा जाए। कितनी अजीब बात है। ख्यालों का सितम कहें या यथार्थ का लहुलूहान परिवेश। देखें इस शेर को ---

अपने दिल की ख़्वाहिशें कुर्बान करता हूँ
इस तरह मैं जिंदगी आसान करता हूँ

खयालों में नहीं मिलता वो ख्वाबों में नहीं मिलता
हकीकत का जो दर्शन है किताबों में नहीं मिलता
(प्रवीण कुमार दर्जी)

राहुल शिवाय की ग़ज़लों में जीवन के विरोधी पक्षों की अनुभूतियों की सहजता और सर्वथा उपयुक्त शब्दों और शैली तथा विचारों की स्पष्टता लक्षित होती है। जीवन के सभी पक्षों को अपनी सोच की परिधि में लाते हैं। एक ग़ज़लकार के नाते अपने दायित्वों के प्रति चौकन्ने भी हैं राहुल शिवाय। इनके चंद शेर ---

रोटियाँ दो-चार दे दो स्वप्न के बदले यहाँ
भाषणों से पेट नेता जी कभी भरता नहीं

हर कोई मुझसे गुजर कर चल दिया है छोड़कर
उम्र-भर मैं हर किसी का रास्ता बनकर रहा
(राहुल शिवाय)

राहुल शिवाय आज की राजनीति के इस सतही भटकाव से बचते हुए नितांत आधुनिक भाषा में अपने दार्शनिक, अव्याकृत सच को पकड़कर साफ-साफ कहते हैं जिसे ईमानदारी का साक्ष्य भी कहा जा सकता है।

जानता हूँ प्यास से मरना मेरा है तय यहाँ
क्या करूँ दिल ही समुंदर से लगा बैठा हूँ मैं

तुम ग़ज़ल पढ़ना मेरी तो चूम भी लेना उसे
शेर की सूरत में ढलकर खुद छुपा बैठा हूँ मैं
(गौरव त्रिवेदी)

प्रेम प्रदर्शन की पृथक-पृथक क्रियाएँ हैं जो भिन्न-भिन्न कालों में होती हैं। गौरव त्रिवेदी कम उम्र के युवा शायर हैं। हो सकता है इनका प्रेम आत्म समर्पण की दहलीज पर आकर जीवन का सांस्कृतिक पक्ष रखना चाह रहा हो। लेकिन दूसरी ओर से सोचें तो इनके भीतर आँसू भीगा हाहाकार है जो पलायन की ओर ले जाता है।

आज के युवा ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में जीवन के विविध पक्षों की अनुभूतियों की सहजता और सर्वथा उपयुक्त शब्दों और शैली तथा विचारों का मिला-जुला स्वर मिलता है। अजय नमन की ग़ज़लों में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है ---

मुश्किलें आती हैं कितनी आज के इस दौर में
थोड़ा चल के देख ले तू खुद पता चल जाएगा
(अजय नमन)

सुभाष पाठक 'जिया' की ग़ज़लों को पढ़कर सुखद आश्चर्य होता है। इन्होंने वैसी ही अंतर्दृष्टि और मौलिकता का परिचय दिया है जैसा कि अन्य ग़ज़लकारों की ग़ज़लों में मिलता है ---

बाद इसके चराग लौ देगा
पहले एक लौ चराग तक पहुँचे

ये खुशी है छुई-मुई जैसी
मशवरा दो इसे छुऊँ कि नहीं

ग़ज़ल संकेतों में बात करती है। एक सच्ची ग़ज़ल को अभिव्यंजना की चरम सीमा तक पहुँचने में बिंब

विधान का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बिंब रचना में अन्योक्तिकरण का भी व्यापक उपयोग किया जाता है। हरमन दिनेश की ग़ज़लों का संसार कई अनछुए बिंबों से भरा पड़ा है ---

दिया बेखौफ जलता जा रहा है
हवाओं को पसीना आ रहा है

अपना दुश्मन बना हुआ हूँ
और मुझसे मिले हुए हैं सब

(हरमन दिनेश)

19 वर्षीय युवा ग़ज़लकार विशाल ओझा एहसास की ग़ज़लों में संयम और साहस का वैभव बिल्कुल नया है। शब्दों के साथ कथ्य से जुड़े पूरे परिवेश में एक नई चमक है। वाक्यों और भाषिक विन्यास के भीतर जो दुनिया है, उसमें आज के यथार्थ की सच्चाइयों का तीखापन है ....

जुआरी हम नहीं हैं जो कि खेलें दाँव किस्मत का
हमें तो काम के दम पर ही किस्मत को सजाना है

चाँद को लिख दूँ सूरज ये मुमकिन कहाँ
झूठ लिखने का मुझमें हुनर ही नहीं

(विशाल ओझा एहसास)

यह सत्य है कि आधुनिक तकनीकी शक्तियाँ अपने आगे विगत की सामाजिक तथा पारिवारिक को स्वीकार नहीं करतीं। इस विषय को नए मोड़ देकर सोचने पर पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि इस आधुनिक तकनीक की दुनिया ने लोगों को अकेला किया है। इस दुखद समय को रामनाथ यादव 'बेखबर' अपने शेरों में इस तरह प्रकट करते हैं--

बड़ी लाचारगी से एक बूढ़ा
फटी अपनी रजाई देखता है

वो उमंगें नाजुक-सी चैट वाले क्या जानें
प्यार वाली जो बातें चिट्ठियाँ समझती हैं

(रामनाथ यादव 'बेखबर')

हिंदी ग़ज़ल में लोक संवेदना पर काफी कम काम हुआ है। ओम प्रकाश यती जैसे एक दो वरिष्ठ ग़ज़लकारों को छोड़ दिया जाए तो इस विषय पर निराशा ही हाथ लगती है। लेकिन आज के युवा ए. एफ़ नजर के ग़ज़ल संसार में स्वच्छंदतावादी प्रवृतियों से लेकर प्रगतिवादी और प्रयोगवादी तथा लोक संवेदना की छवि साफ-साफ देखी जा सकती है

छत से छत की मीठी बातें और अपनापन छीन लिया

फ्लैटों की चाहत ने हमसे चौड़ा आँगन छीन लिया

पुरानी शाख से इक सब्ज पत्ता टूटकर रोया
मैं अपने गाँव से निकला तो बरगद फूटकर रोया

(नजर)

साहित्य भावनाओं का संप्रेषण होता है। कठोरता की रेखा इसे आगे बढ़ने से रोकती है। यथार्थ और जीवन-संघर्ष के बीच कहीं न कहीं सौंदर्य छुपा हुआ है। इसी तरह गरिमा सक्सेना की ग़ज़लों का रूपक कितनी बात कहता और कितनी बात अनकही छोड़ देता है हम उस अनकही बात की ध्वनि के माध्यम से उसके अर्थ की ओर जा सकते हैं.....

न दूजा था कोई रहबर हमारा
यकीनन हम यकीं से जीत पाए

वो जो रखता है हौसला अंदर
उसको सागर भी रास्ता देगा

(गरिमा सक्सेना)

नज़्म सुभाष की ग़ज़लें समकालीन जीवन की सच्चाइयों को बहुत तीखे ढंग से हमारे समक्ष रखती हैं। इनके पास एक विशिष्ट रचना-विवेक है जो इनकी रचनात्मकता को हमेशा गतिशील रखता है। चाहे वह विचारधारा की दृढ़ता हो या संवेदना की तरलता।

अमीरी पंख बिन है आसमां को नापती रहती
गरीबी पंख वालों को सदा लाचार रखती है

कोर्ट से वह छूट आया बन नपुंसक ही सही
आप तो बस पेट में पलती निशानी देखिए

दोनों शेर वर्णनात्मक शैली में हैं लेकिन उनमें चिंता और विरोध की एक गहन अंतर्धारा का प्रवाह है। इस युग का विस्तृत आधार है जिस पर आज की हिंदी ग़ज़ल अपना आकार ग्रहण करती है।

इस समय की हिंदी ग़ज़ल में सर्वाधिक अर्थपूर्ण आम जीवन की त्रासदी है। अगर कहीं-कहीं नकारात्मक या निराशावादी दृष्टि की झलक मिलती है तो उसके भीतर ही क्रांतिकारी दृष्टि भी छुपी होती है। इसमें ध्वनियों/शब्दों की आवृत्तिजन्य लय-संरचना तथा काव्य-संवेदना की विशिष्ट अभिव्यंजकता रहती है। इस कारण कभी-कभी भ्रम की स्थिति या जटिलता आ जाती है। लेकिन इस जटिलता के प्रति युवा ग़ज़लकार कितने सजग हैं चित्रांश खरे की ग़ज़लें कुछ कहने में सक्षम हैं। कहीं कोई भ्रम नहीं--

इसी खलिहान में मैंने मेरा बचपन गुजारा है
दरोगा बन भी जाऊँ तो किसानी याद आएगी

हालत हमारे गाँव की अब तक खराब है
पढ़ लिख गए जो लोग वो शहरों में आ गए

(चत्रांश खरे)

युवा ग़ज़लकारों का संपूर्ण ग़ज़ल-संसार आत्मगत शैली में रचा हुआ है। ऐसे आत्मगत होकर ही रामनाथ शोधार्थी भी अपना ग़ज़ल-संसार रचते हैं। इनकी ग़ज़लों में मौखिकता, कल्पना, सामाजिकता सहज रूप में देख सकते हैं....

दर्द क्यूँ बाँटता फिरूँ सबसे
मैं हूँ बीमार बेवकूफ नहीं

वक्त पल-पल जहाँ बदलता हो
कम नहीं आदमी बने रहना

(रामनाथ शोधार्थी)

युवा ग़ज़लकार का अपना एक यथार्थ है। ग़ज़लों के स्वर में रूढ़िबद्ध संस्कार को तोड़ने का संकल्प, समय की आहट और युगीन प्रवृतियाँ हैं। ग़ज़लें सिर्फ वर्तमान से जुड़ती ही नहीं लेखकीय उद्देश्य और अभिव्यक्ति को ताकतवर भी बनाती हैं। नकली संसार के अँधेरे के विरुद्ध लेखन की अपनी ईमानदारी है। मनोलोक में सिमटकर यातना के आवर्तन में नहीं भटकता इनका यथार्थ। सबसे बड़ी तसल्ली की बात यह है कि इस बदलते समय और बदहवास दौर के विरुद्ध इनके भीतर आग बची हुई है। प्रेम के भावावेग में आज का लहुलूहान यथार्थ अनुपस्थित नहीं होता। लेखन का एक उत्साह है जिसके भीतर आग दहकती रहती है।

– गुलज़ार पोखर, मुंगेर, बिहार-811201

❑❑❑

आनंद प्रकाश सतसैया : एक विहंगम दृष्टि

डॉ. ज्ञान चंद्र शर्मा

किसी निश्चित संख्या को लेकर छंदों के संकलन का प्रचलन साहित्य में एक लंबे समय से है। हाल की गाथा सप्तशती, गोवर्धनाचार्य की आर्य सप्तशती, अमरुक, भर्तृहरि आदि कवियों के 'शतक' इसके उदाहरण हैं।

हिंदी कवियों को सात सौ की संख्या विशेष प्रिय रही है। अपभ्रंश के 'लड़ैते' छंद दोहा में अनेक महत्वपूर्ण सतसई ग्रंथों की रचना हुई जिसकी परंपरा आधुनिक काल तक चलती रही। मध्यकाल में रचित सतसई साहित्य के विषय मुख्यत: भक्ति,शृंगार, रीति और नीति रहे। पंजाब में भी इस परंपरा का यही स्वरूप है। साधु अमीर दास की 'ब्रजराज विलास सतसई' में ये चारों तत्व देखे जा सकते हैं। लगभग उसी समय में रचित दल सिंह की 'आनंद प्रकाश सतसैया' नीति प्रधान है। इसके कुछ ही काल अनंतर प्रकाश में आई बसंत सिंह ऋतुराज कृत 'बसंत सतसई' का भी मुख्य प्रतिपाद्य नीति ही रहा। इन तीनों सतसइयों के हिंदी सतसई-साहित्य में योगदान के उचित मूल्यांकन की आवश्यकता है।

ये तीनों रचनाएँ गुरुमुखी (पंजाबी) से देवनागरी में लिप्यंतरित होकर भाषा विभाग, पंजाब द्वारा प्रकाशित की जा चुकी हैं। इनमें साधु अमीर दास कृत 'ब्रजराज विलास सतसई' पर तो कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में शोधकार्य हो चुका है। शेष दो पर भी विद्वान अनुसंधानकर्ताओं से ध्यान देने की अपेक्षा है।

ऊपर कहा जा चुका है कि कवि दलसिंह की 'आनंद प्रकाश सतसैया' एक नीतिपरक रचना है जिसमें दृष्टांतों और अन्योक्तियों के माध्यम से जीवन के व्यावहारिक पक्षों को स्पष्ट करने का यत्न है। इसमें कवि के इतिहास, धर्म, दर्शन, पुराण-शास्त्र संबंधी व्यापक ज्ञान का पता चलता है। साथ ही उसके काव्य-कौशल का आभास भी मिलता है। रचना में विषय व्यवस्थित रूप से एक नियत क्रम में अभिव्यक्त हुआ है। शैली की दृष्टि से इसे वृंद सतसई की श्रेणी में रखा जा सकता है।

कवि परिचय

'सतसैया' के रचनाकार दलसिंह का जन्म पंजाब के बठिंडा नगर के उत्तर में पाँच कोस दूर स्थित गुरुगोबिंद सिंह पुर में हुआ था, जो आज का गोविंद पुरा जान पड़ता है-

दुरग बठिंडा अजय ताते समझ सुजान।
पाँच कोस उत्तर गुरु गोबिंद सिंह पुर जान।।

(सं. 707)

उनके पिता का नाम टेक सिंह और दादा का नाम बघेल सिंह था जो बलसिंह के पुत्र थे। वह मूलत: चंद्रवंशी थे। अमृतपान के बाद उन्होंने वंश-नाम त्याग दिया।

गोविंद पुरा से सवा कोस दूर, पेड़ों के झुंड के नीचे एक साधक रात-दिन पद्मासन में बैठकर सर्दी-गर्मी, आंधी-बरसात की चिंता किए बिना, साधनारत था। उसने पचासी बरस तक पृथ्वी पर पीठ लगाकर नहीं देखी थी। इस तपस्वी का नाम नाथा सिंह था। सात साल की अवस्था में दलसिंह ने इन्हें गुरु धारण किया और बीस बरस तक उनकी सेवा में रहे। वहीं पर रहकर उन्होंने

गहन विद्याभ्यास किया। अपने गुरु से वाणी का वरदान प्राप्त कर वह पटियाला नरेश कर्म सिंह के आश्रय में पहुँचे

श्री गुरु ते वर पाय के वाणी बिमल प्रकास।
आए असिध्वज हुकुम कर कर्म सिंह नृप पास।।
(सं. 35)

'सतसैया' की रचना से पूर्व दल सिंह ने मुल्ला हुसैन वायज काश्फी के प्रसिद्ध नीतिग्रंथ 'अख्लाकुल मुहसिनी' का फारसी से भाषानुवाद किया। इससे प्रसन्न होकर महाराजा ने इन्हें अनेक प्रकार के पुरस्कारों से सम्मानित किया तथा ऐसी ही और नीति रचनाएँ करने के लिए कहा।

दलसिंह 'सतसैया' के दोहों की रचना समय-समय पर करते रहे और इनका परिष्कार कर ग्रंथ रूप में संकलित किया। यह रचना छह साल तक रखी रही। तत्पश्चात महारानी किसन कौर के सौजन्य से आषाढ़ शुक्ल द्वितीय, दिन बुधवार, संवत 1890 को इसका प्रकाशन हुआ-

सरस सुग्रंथ बनाय षट साल धर्योधर मांहि।
किसन कौर प्रमदा सुररी पुहुमि प्रकास्यो ताहि।।
संमत नम निधि वसु रु विधु वासर बुद्ध विचार।
साढ़ सुदी दुतिया भली भयो ग्रंथ अवतार।।
(सं. 718-29)

उस समय दलसिंह की अवस्था पैंतीस और चालीस बरस के बीच रही होगी। इस आधार पर उनका जन्म संवत 1850 के लगभग अनुमानित किया जा सकता है।

रचना परिचय

आनंद प्रकाश सतसैया में कुल 719 दोहे संकलित हैं। निर्धारित संख्या से कुछ अधिक छंद रखना वृद्धि-सूचक शुभ माना जाता है। यह एक बहु प्रथित काव्य रुढ़ि रही है। रचना में अन्य अनेक काव्य रुढ़ियों का भी पालन है। यथा, इसका प्रारंभ मंगलाचरण से हुआ है। कवि अपने इष्ट गुरु गोबिंद सिंह का स्मरण करता है जिनके चरण कमलों में ध्यान लगाने से सब सुखों की सिद्धि, बुद्धि और नवनिधि की प्राप्ति होती है-

सिमर गुरु गोबिंद सिंह सिगर सुखन की सिद्धि।
जा पद पदम सुप्रेम ह्वै बुद्धि ब्रिद्धि नव निद्धि।।
(सं.-1)

तत्पश्चात स्तुति में ही उसने अपनी रचना की मौलिकता का उल्लेख किया है और इसके साथ 23 दोहों में अपने गुरु का वर्णन किया है-

संपत सब सुख करन को, पाप हरन को नित।
श्री गुरु नाथा सिंह को दरसन सफलो भित्त।।
(सं. 13)

दलसिंह ने अपने आश्रयदाता के वंश की सविस्तार चर्चा करते हुए महाराजा कर्मसिंह का ब्रह्मा, महेश और विष्णु के साथ श्लिष्ट वर्णन किया है। यथा ब्रह्मा के साथ उनका साम्य इस प्रकार स्थापित किया है-

परवेदन खोजत भले चार भुजा मुख चार।
करम सिंह नृप वर किधौं कमलासन अवतार।।
(सं. 63)

राजा कर्म सिंह शिव रूप हैं-

नागन रखत नेह कर गिरिजा के अधीन।
करम सिंह भूपति किधौं गिरिजा पति परवीन।।
(सं. 64)

विष्णु के साथ भी उनकी समानता है-

शंख सुदर्शन चक्रकर सदा लच्छमीसंग।
कर्म सिंह नृपमनि किधौं कमला पति के अंग।
(सं. 65)

गुरु और समय के शासक के स्तुतिपरक वर्णन की रूढ़ि सूफी प्रेमाख्यानों में भी अपनाई गई है। कृति के अंत में रचना संबंधी वर्णन और रचनाकाल का उल्लेख एक अन्य काव्य रूढ़ि है जिसका निर्वाह 'आनंद प्रकाश सतसैया' में हुआ है-

संमत नभ निधि वसु विधु, बासर बुद्ध विचार।
साढ़ सुदी दूतिया भली, भय-ग्रंथ अवतार।।
(सं.719)

'सतसैया' में अधिकतर दृष्टांतों और अन्योक्तियों का ही प्रयोग है। नीति काव्य में कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है। दलसिंह ने इनके प्रयोग में अपने कौशल का अच्छा परिचय दिया है। एक ओर जहाँ पौराणिक पात्रों, प्रसंगों और संदर्भों के संबंध में उनके विशद् ज्ञान की भरपूर जानकारी मिलती है, वहाँ इन अलंकारों का चमत्कार भी दृष्टव्य है। रामकथा, कृष्णचरित, महाभारत आदि के अनेक प्रसंगों को इनके द्वारा भूषित किया है। कवि का ज्ञान भारतीय संदर्भों तक ही सीमित नहीं था। 'सतसैया' के दो दोहों

भाषा ISSN 0523-1418

में यूनानी आक्रमणकारी सिकंदर से संबंधित किंवदंतियों को दृष्टांत रूप में प्रस्तुत किया है। नौशेरवान ने सिकंदर को पहचान लिया था। बुद्धिमान व्यक्तियों के लिए ऐसा कर पाना कठिन नहीं होता–

अकलमंद बल अकल सब बात लेत पहचान।
नोश्रवाने ज्यों लख्या साह सिकंदर जान।।

(सं. 261)

दलसिंह का अनुभव क्षेत्र अत्यंत व्यापक था। उनमें प्रकृति, परिवेश और नित्यप्रति के लोक व्यवहार के निरीक्षण की अद्भुत क्षमता है। चाँद, सूरज, नक्षत्र, नदी, वन, पर्वत, पत्र-पुष्प, जीव-जंतु, विभिन्न सामाजिक काम धंधे आदि सभी का सतसैया में समायोजन है।

दृष्टांत और अन्योक्ति नीति-कवियों द्वारा बहु-व्यवहृत अलंकार है जहाँ सादृश्य व अन्यापदेश द्वारा विषय को व्यक्त किया जाता है। ये दोनों अर्थालंकार हैं। दृष्टांत के शास्त्रीय लक्षण हैं "जहाँ विषय को स्पष्ट करने के लिए उसी के समान अन्य परिचित विषय का उल्लेख किया जाता हो।" इसमें उपमेय और उसके साधारण धर्म के वर्णन की तुलना में उपमान और उसके धर्म का उल्लेख रहता है। यथा–

कहा भयो जो दीह नर लघु ह्वै कारज काल।
बहुरि बड़े सो बड़े ज्यों बावन भए विसाल।।

(सं. 78)

अर्थात् क्या हुआ जो कार्य सिद्धि के समय बड़े व्यक्ति को छोटा होना पड़े। राजा बलि को अधीन करने के लिए भगवान विष्णु ने वामन का रूप धारण किया और लक्ष्य पूरा होने पर पुन: अपने असली रूप में आ गए। यहाँ सादृश्य भाव का प्राधान्य है।

अन्योक्ति अलंकार में अर्थ साधर्म्य के अनुसार वर्णित वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर घटाया जाता है जैसे–

गरुड़ कहत गर गंगधर परि अहि करै फुंकार।
लखौ तिहारी सबलता मिलै जि संग निवार।।

(सं. 95)

दुष्ट प्राणि बड़ों के सहारे अकड़ दिखलाते हैं। उस सहारे के न रहने पर उनकी सब अकड़ धरी की धरी रह जाती है।

दलसिंह ने इन अलंकारों का बहुत सफल प्रयोग किया है। देवी-देवता, ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त उन्होंने सामान्य जीवन से जुड़े विषयों का भी अत्यंत सटीक आकलन किया है। यथा कामिनी के यौवन के प्रभाव को लेकर कवि ने अनेक दोहों की रचना की है। उसके कपोल, तिल, कुच, कंचुकी, वेणी और कुसुमहार का अन्योक्तिपरक वर्णन करते हुए कवि का कहना है कि ये सब नारी के अंगों पर चढ़कर संसार को भ्रमित करते हैं। उन्हें सिर पर खड़े बुढ़ापे की आपदा का भी ध्यान नहीं रहता–

जोबन? क्यों तिय अंग चढ़ि करै जगत को आघात।
तेहि न सूझत सीस पर जरा जु सबल अफात।।

(सं. 527)

काव्य में षड् ऋतु वर्णन की भी एक रूढ़ि रही है। 'सतसैया' में इसका निर्वाह बड़े कौशल के साथ अपने वर्ण्य के प्रतिपादन के लिए किया गया है। इसका प्रारंभ कवि ने बसंत से किया है–

विपत परी पर देत है सुभ साजन सुख साज।
ज्यों लूटे सिसिर तरु सुदुति करत रितु राज।।

(सं. 537)

गर्मी में जल, थल सब जलने लगते हैं। बरसात में बादल उमड़ घुमड़कर आते हैं परंतु आसन्न शरद ऋतु उन बादलों को जल रहित कर देती है। इस ऋतु में काले बादल भी निर्वारि होकर धवल हो जाते हैं। उत्तम संगति का यही प्रभाव होता है–

उत्तम की संगति किए बढ़त सुनिर्मल जोति।
ज्यों प्रापति ह्वै सरद रितु अंबुद उज्जल होति।।

(सं. 539)

काल गति से छोटे बड़े और बड़े छोटे हो जाते हैं जैसे हेमंत ऋतु में दिन-रात की दशा होती है–

दीर घतै लघु होत है लघु दीरघ ह्वै जात।
हिम रितु अंतर जान हैं सुमती ज्यों दिन रात।।

(सं. 543)

शिशिर ऋतु को दलसिंह ने मुसीबत रूप में देखा है। परंतु इसके बाद बसंत भी तो आता है। जब हर ओर हरियाली छा जाती है–

वन! विलोककर सिरि दिन जिन मन करो उदास।
मधुरित संरसो तो करै लेहि सुमधुप सुवास।।

(सं. 547)

धनुष, कसौटी, सर्प, काग, रेत, गधे आदि को लेकर भी कुछ दोहों की रचना हुई है।

'प्रस्ताविक' के अंतर्गत कवि ने अपनी ओर से व्यावहारिक नीति की बातें कही हैं। अच्छे काम का भी एक तरीका होता है जैसे दूध से दही और दही से मक्खन बनाया जाता है-

विधि सेती सुभ बनति है बात भली सुन मीत।
ज्यों सुक्षीर ते बनत दधि पुनि निकसत नवनीत।।
(सं. 568)

गुण जहाँ से मिले ग्रहण कर लेना चाहिए। विष्णु का अवतार माने जाने वाले ऋषि दत्तात्रेय ने बगुले, कबूतर, चील आदि से कुछ न कुछ सीखा। इन सबको उन्होंने अपने गुरु के रूप में माना। इस प्रकार उनके चौबीस गुरु थे। इसको लेकर दलसिंह ने लिखा है-

जहाँ-जहाँ गुन हेरिये हितकर लीजै बीन।
जैसे दत्तात्रेय ने गुरु चौबीस कर लीन।।
(सं. 595)

'सतसैया' में तीन दोहे कबीर, सदना और सैन भक्त को लेकर भी हैं जिनमें उनकी सत्यनिष्ठा का उल्लेख है।

इस प्रसंग में कवि ने सर्वाधिक दोहों की रचना की है जो न केवल उसकी पैनी नज़र और व्यापक जानकारी का परिचय देते हैं बल्कि इनमें जीवन का संपूर्ण अनुभव और व्यावहारिक ज्ञान भी समाविष्ट है।

आनंद प्रकाश सतसई में मुख्य रूप से दृष्टांत और अन्योक्ति की छटा तो देखी ही जा सकती है परंतु रचनाकार ने विशेष चमत्कार की सृष्टि के लिए यमक अलंकार का भी एक खास रूप में प्रयोग किया है। 'आदि अंत यमक' के रूप में दोहे की प्रत्येक पंक्ति के प्रथम और अंतिम शब्द में यमक का विधान है। यथा-

भाग भलो सतसंग भो गए कलुष कुल भाग।
नाग काल ते श्री प्रभू राखो जैसे नाग।।
(सं. 675)

× × ×

चीर सुन भूखन तन लगत ज्यों कटार के चीर।
तीर सु दृग हरि के लगे जबते रविजा तीर।।
(सं. 665)

कृष्ण अभिसारिका का चित्रण देखिए-

स्याम सलोने को मिलो आज साज पट स्याम।
बाम सुहाय लाल के अंग बैठकर बाम।।
(सं. 667)

रचना के अंत में, अपनी मित्र मंडली, चार साहिबजादों, भाई मनी सिंह, महाराज कर्म सिंह, आनंदपुर साहिब के मुख्यग्रंथी, अपने पिता, भाई, पुत्रों, स्वयं अपना और वंश का परिचय दिया है। साथ ही 'सतसैया' की रचना संबंधी वर्णन है-

गुरु खालसे सीस सुभ छत्र विराजत नित।
पुर पटियाले में रची यही रचना वर मित।।

इसके प्रकाश न के बारे में लिखा है-

संमत नभ निधि बसु रु विधु बासर बुद्ध विचार।
साढ़ सुदी दुतिया भली भयो ग्रंथ अवतार।।

यह रचना आषाढ़ शुक्ल द्वितीय दिन बुधवार नभ (शून्य) निधि (नौ) बसु (आठ) विधु (एक) को प्रकाशित हुई। दाएँ से बाएँ की ओर चलते हुए यह संवत 1890 होता है।

दलसिंह अमृतधारी सिख थे। उन्होंने असिध्वज गुरु गोविंद सिंह के नाम पर अमृत पान किया। वही उनके इष्ट थे। मंगलाचरण में उन्हीं की स्तुति है। उनके चार पुत्रों का भी उन्होंने बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है। अन्य हिंदू मान्यताओं, देवी-देवताओं, अवतारों और महापुरुषों के प्रति दलसिंह पूर्ण श्रद्धा और सम्मान रखते थे।

गुरु नाथा सिंह ने दलसिंह को अमृत पान (खालसा पंथ में दीक्षा) करवाकर गुरु मंत्र दिया था। वह बीस बरस तक उन्हीं की सेवा में रहे-

सुधा छकायो आप कर बहुरि मंत्र गुरु दीन।
बीस बरस लौं दास ह्वै सेवा गुरु पद कीन।।

इन्ही बीस बरसों में गुरु के सान्निध्य में दलसिंह ने विद्याभ्यास किया और उन्हें वाणी का वरदान प्राप्त हुआ-

प्रथम सेव गुरु चरण की पुनि विद्या अभ्यास।
इस विधि कर गुरु कृपा तै बानी भई प्रकास।।

यह विद्याभ्यास निश्चय ही शास्त्र-पुराण का रहा होगा जिसका परिचय उनकी रचना में मिलता है। उन्होंने ऐसे पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख किया है जो सामान्यतः लोक-स्मृति में नहीं होते। उदाहरणार्थ राजा रघु की पुत्री चंद्रावती, केरल के राजकुमार चंद्रहास के प्रसंग अधिक विख्यात नहीं हैं। ऐसे कुछ और संदर्भ भी रचना में

देखने को मिलते हैं। इनसे दल सिंह के व्यापक और गहन शास्त्र अध्ययन की परिधि का ज्ञान होता है।

रचना कौशल

'आनंद प्रकाश सतसैया' की रचना नीतिकाव्य के अनुरूप हुई है। नीति शब्द का प्रयोग पथ प्रदर्शक के अर्थों में होता है। नीति कवि अपनी वाणी से मनुष्य का एक प्रकार से पथ प्रदर्शन ही करता है। उसका आचार-व्यवहार कैसा होना चाहिए, उसे कर्तव्य अकर्तव्य का बोध होना चाहिए, वह अच्छे-बुरे में भेद कर सके आदि, नित्य के जीवन से जुड़ी समस्त प्रक्रियाओं का समावेश उसमें रहता है। यह सामाजिक मूल्यों की सहज अभिव्यक्ति है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक इसकी धारा अविरल रूप से बही है। 'आनंद प्रकाश सतसैया' उसकी विशिष्ट कड़ी है जो अभी तक विद्वानों की दृष्टि से ओझल रही है। हम इसे वृंद सतमई के नाम से जानी जाने वाली कवि वृंद की 'दृष्टांत सतसई' के समकक्ष रख सकते हैं।

नीति काव्य में तथ्यात्कता और ज्ञानोपदेश का प्राधान्य होता है और रसात्मकता का अभाव। इसलिए रसात्मक वाक्य को ही काव्य मानने वाले आचार्य नीति काव्य को काव्य नहीं मानते। परंतु कविता मस्तिष्क से होकर ह्रदय तक पहुँचती है। नीतिकाव्य मस्तिष्क को अवश्य उद्वेलित करता है। इस कारण उसमें कुछ न कुछ काव्यात्मकता तो है ही।

गीता में सत्य प्रिय और हितकारी अनुद्वेगकर वाक्य को वाणी का तप कहा गया है। इस कसौटी पर नीति काव्य खरा उतरता है। 'सतसैया' में ये गुण विद्यमान हैं। यहाँ दृष्टांत और अन्योक्तियों के माध्यम से सूक्तियाँ विशेष प्रभावकारी बनी हैं।

दलसिंह अपने गुरु से वाणी का वरदान प्राप्त कर गुरु गोबिंद सिंह के आदेश से पटियाला नरेश महाराज कर्म सिंह के दरबार में पहुँचे। यहाँ उन्होंने मुल्ला हुसैन वाइज़ काश्फी की फारसी रचना 'इखलाकुल मुहसिनी' के हिंदी में पद्यबद्ध अनुवाद के बाद सतसैया की रचना की। और छह साल तक परिष्कार कर इसे प्रकाशित किया।

'सतसैया' की रचना मुक्तक काव्य के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त दोहा छंद में हुई है जिसकी परंपरा अपभ्रंश काल से चली आ रही है। कवि ने अपने कथन के लिए दृष्टांत और अन्योक्ति अलंकारों का सहारा लिया है। दृष्टांत में उपमान और उपमेय में बिंब-प्रतिबिंब का भाव झलकता है। एक पंक्ति के कथन को दूसरी पंक्ति के समभाव के कथन से पुष्ट किया जाता है। यथा-

जथा जोग कर देत जो बांटत कछू प्रवीन।
सुरासुरन को सुधा, मद जैसे हरि जू दीन।।

अप्रिय कथन को प्रिय बनाकर कहने के ढंग को अन्योक्ति कहते हैं। यहाँ लक्ष्य कथ्य से भिन्न होता है। यथा-

रूप जाति को गरब जिन कर मुक्ता मन मांह।
बिन गुन ह्वै पर है पुहमि गुन युत उन नर नाह।।

रे मुक्ता! रूप-जाति का गर्व मत करो। बिना गुण के तुम भूमि पर आ गिरोगे और गुण युक्त होकर राजा के ह्रदय से लगोगे। यहाँ गुण पर धागे, डोरी और विशेषता का श्लेष भी दृष्टव्य है।

दलसिंह ने इतिहास, पुराण एवं परिवेश से उपमान ग्रहण कर अपनी रचना को अलंकृत किया है। उनका उद्देश्य ऐसे ग्रंथ के सृजन का था जिसमें नए-नए दृष्टांतों का विधान हो-

बहुरि बसि मौर चित मो ऐसो ग्रंथ बनाई।
रचि नोतन द्रिस्टांत वर धरिए जा में लाई।।

वह सर्वथा मौलिक हो उसमें किसी का अनुकरण न हो-

कही उकतिपुनि भाखनी सो न सुमति को हेत।
ज्यों हेर्‌यो अनुकरन पुनि भयो न सोभा देत।।

अन्य कवियों के अर्थ लेकर कोई अच्छा कवि नहीं बन जाता, जैसे पराये धन को अपने घर पर रखकर कोई साहुकार नहीं हो जाता-

आन कविन को अरथ लै भयो सुकवि न कोई।
निज घर धर पर अरथ को जैसे साह न होई।।

दलसिंह की संपूर्ण रचना में उनकी मौलिकता झलकती है। कहीं कोई साम्य आया भी है तो उसे संयोग मात्र कहा जा सकता है, जैसे दो खनिजकारों के हाथ एक ही हीरा लग जाए।

'सतसैया' के दोहे किसी एक समय पर, एक स्थान पर बैठकर नहीं लिखे गए। ये समय-समय पर रचे जाते रहे होंगे जिन्हें संकलन के समय विषयानुसार न्यस्त कर दिया गया। यह संभवत: पंजाब में रची प्राय: सभी सतसइयों के बारे में कहा जा सकता है।

भाषा

हिंदी साहित्य के मध्यकाल में काव्य रचना के लिए अधिकतर ब्रजभाषा का प्रयोग किया जाता था यद्यपि स्थान भेद के कारण इसके रूप में भिन्नता मिलती है। 'सतसैया' की भाषा इसका अपवाद नहीं है यह मूल रूप से गुरुमुखी (पंजाबी) लिपि में लिखी गई है। इसका देवनागरी में लिप्यंतरण सहज नहीं है। पंजाबी में कुछ ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए कोई पृथक चिह्न नहीं हैं। इसमें संयुक्ताक्षर का प्रयोग बहुत कम होता है जो लिप्यांतरकार के काम को और कठिन बना देता है। ऐसे में रचयिता को भाषा ज्ञान, शब्द प्रयोग और शैली से शब्द के रूप का अनुमान करना पड़ता है। 'आनंद प्रकाश सतसई' के लिप्यंतरकार विषय के गहन जानकार विद्वान थे। उन्होंने मूल और लिप्यंतरित रूप दोनों के साथ न्याय किया है।

'सतसैया' की भाषा प्रसाद गुण प्रधान ब्रज है जिसमें स्थानीय रंग भी झलकता है। सामान्य प्रयोग में आने वाले संस्कृत शब्दों का भी इसमें अच्छा मिश्रण है। ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप इनके तद्भव रूप का भी खुलकर प्रयोग हुआ है। यह भाषा रचना के प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने में सक्षम है।

रचना में दृष्टांत और अन्योक्ति का प्रयोग तो प्रमुख रूप में है ही। दूसरे अलंकार भी इसमें पूर्ण लाघव के साथ प्रयुक्त हुए हैं। इनमें शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों की छटा है। शब्दालंकारों में श्लेष, यमक और अनुप्रास तथा अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, उदाहरण, रूपक इत्यादि का विधान सहज रूप में हुआ है। श्लेष के लिए निम्न उदाहरण देखिए। जिसमें राजा (करम सिंह) और ब्रह्मा का श्लिष्ट वर्णन है-

परवेदन खोजत भले चार भुजा मुखचार
करम सिंह नृपवर किधौं कमलासन अवतार।।

पंक्ति के प्रथम और अंतिम शब्दों में यमक का विधान कर दलसिंह ने इस अलंकार में विशेष चमत्कार की सृष्टि की है। इसको 'आदि अंत यमक' का एक नया अभिधान भी दिया गया है। मानिनी नायिका की दशा का वर्णन करते निम्न दोहे को देखिए-

मान छोर मेरो कह्यो नीके कर सखि मान।
पान खात प्रीतम न उत तुम इत न पियत पान।।

सखी नायिका से मान छोड़ने की बात कहती है क्योंकि प्रियतम ने खाना-पीना छोड़ रखा है इधर, तुम पानी तक नहीं पीतीं।

नायिका को मनाने के लिए सखी कहती है मैं हार कर तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, अब यह हार पहनकर मान त्याग दो और सौत के मुख पर धूल डालते हुए, डाली पकड़कर खड़े हुए नायक से मिलन कर लो-

हार परत हों पांय तजि मान, पहरि कर हार।
डार सौत मुख धूर मिल हरि ठाढ़े गह डार।

'सतसैया' में ऐसे आदि-अंत-यमक वाले दोहों की संख्या बीस के करीब है। यमक के अतिरिक्त रचना में अनुप्रास का भी अनायास प्रयोग है जैसे 'पद-पदम' कृपा कटाक्ष इत्यादि।

अर्थालंकारों में कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, रूपक इत्यादि का नितांत स्वाभाविक रीति से विधान किया है।

अलंकार का प्रयोग दलसिंह ने लक्ष्य के रूप में नहीं माध्यम के रूप में किया है जिसमें रचना के सौंदर्य और स्तर को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। ये कहीं भी कृत्रिम और अनावश्यक प्रतीत नहीं होते।

'आनंद प्रकाश सतसई' की रचना मुख्यत: एक नीतिकाव्य के रूप में हुई है। नीति व्यक्ति और समाज की सम्मिलित समुन्नति का प्रथम सोपान है। 'असतो मा सद गमय' 'सत्यम् वद्, धर्म धर्मम् चर' जैसे आशीर्वचन भारतीय चिंतन में बीज रूप में स्थित हैं। उपदेशालकता और पथ प्रदर्शन के अंतर्भाव के करण नीति में मानव की सूक्ष्म वृत्तियों की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत कम रहती है। साहित्य में नीति परक रचनाओं की एक लंबी परंपना के बावजूद इन्हें काव्य की श्रेणी में रखने में काव्याचार्यों ने कृपणता ही दिखलाई है। नीति काव्य हृदय को कम और मस्तिष्क को अधिक रंजित करता है, यह अपनी वाग्विदग्धता, उक्ति-वैचित्र्य और लाघवपूर्ण अभिव्यक्ति के कारण सदा ही गुणीजनों का कंठहार रहा है। रसात्मक काव्य के साथ गुंफित होकर नीति काव्य भी रसमय हो उठता है। 'रामचरित मानस' के महाकाव्यत्व में उसमें आई उपदेशात्मक और नीतिपूर्ण उक्तियों की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उसकी सूक्तियाँ जन-जन के कंठ में निवास करती हैं।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई नीति काव्य की धारा हिंदी के भक्तिकाव्य में संतों और भक्तों की वाणी में कभी सीधे विषय के रूप में तो कभी उसके

आनुषंगिक रूप में प्रकट हुई है। रीतिकालीन कवि भी इस ओर आकर्षित हुए जिसके उदाहरण मतिराम, बिहारी, रसनिधि आदि कवियों की रचनाओं में मिलते हैं।

स्वतंत्र रूप में नीति काव्य के रचयिताओं में रहीम, भड्डरी बेताल, घाघ, वृंद, गिरधर कविराय, दीन दयाल गिरी जैसे कवियों की विस्तृत नामावलि है। दल सिंह की गणना भी इसी कोटि में की जा सकती है। उनका दृष्टांत और अन्योक्ति का विधान अनुपम है जिसका स्रोत भारतीय धर्म, पौराणिक परंपराओं में निहित है, दलसिंह की कविता में भले ही रसात्मकता और भावाभिव्यक्ति का अभाव हो परंतु वह व्यावहारिक ज्ञान में किसी से पीछे नहीं कही जा सकती। वह अपने आप में एक सूक्ति कोष है।

पंजाब में एक ही काल खंड में थोड़ा आगे-पीछे तीन सतसइयों की रचना हुई। इनमें से अमीर दास कृत ब्रजराज विलास सतसई में भक्ति, शृंगार और रीति का संगम है। इसे सहज ही बिहारी और मतिराम जैसे निष्णात कवियों की रचनाओं के समकक्ष रखा जा सकता है।

'वृंद सतसई' के नाम से विख्यात वृंद की रचना का वास्तविक नाम 'दृष्टांत सतसई' है जिसमें दृष्टांतों की सहायता से दैनिक व्यवहार के प्राय: सभी पक्षों को बोध गम्य बनाया गया है। उन्हें नीतिकार कवि रूप में श्रेष्ठ माना जाता है। दलसिंह भी वृंद के समान दृष्टांतों के माध्यम से अपनी बात कहते है। उनकी अन्योक्तियाँ भी गंभीर अर्थ व्यक्त करने वाली हैं।

तीसरे सतसईकार हैं वसंत सिंह ऋतुराज। उनकी कविता अधिक परिष्कृत है। विषय उनका भी नीति है जिसे वह अपने परिवेश से उदाहरण प्रस्तुत कर स्पष्ट करते हैं।

साधु अमीर दास, दलसिंह और बसंत सिंह ऋतु राज तीनों का योगदान हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

– 324, दशमेश एन्क्लेव, ढकोली जीरकपुर, चंडीगढ़ –160104

❑❑❑

हिंदी एवं रोंङ्मै अव्ययों में प्रयुक्त निपातों का व्यतिरेकी अध्ययन

के. रेखा, ह. सुवदनी देवी

भाषाविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है- "भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन।" इसके लिए हिंदी में भाषाशास्त्र, भाषातत्व, भाषा-निर्वचन शास्त्र, व्याकरण, शब्दानुशासन, भाषिकी आदि अनेक शब्द प्रचलित हुए, किंतु 'भाषाविज्ञान' शब्द रूढ़ हो गया। "भाषाविज्ञान भाषा में निहित गुत्थियों को सुलझाता है तथा भाषा-अध्येता के समक्ष स्पष्ट और सरल सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है।" अत: भाषाविज्ञान भाषा-शिक्षण को सरल एवं सहज बनाता है। उन्नीसवीं सदी में शिक्षा के क्षेत्र में कई उपलब्धियाँ आईं। उनमें भाषा-अध्ययन में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि अन्य भाषा-शिक्षण में आने वाली कठिनाइयों को दूर करना। मातृभाषा तथा अन्य भाषा की विषमताओं को अध्येता के सामने रखना। भाषाविज्ञान के अंतर्गत आने वाली इस विधा को तुलनात्मक अध्ययन न कहकर 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' कहा गया। इसे अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत रखा गया। यह सन् 1940 तथा सन् 1950 के दौरान विकसित हुआ। सन् 1945 में फ़्राइज की प्रसिद्ध पुस्तक 'Teaching and Learning of English as a Foreign Language' सामने आई। यह व्यतिरेकी विश्लेषण की पहली बुनियाद है। रोंङ्मै भाषा मणिपुर की रोंङ्मै जनजाति (कबुई) की भाषा है। मणिपुर में बसने वाली 33 जनजातियों में रोंङ्मै एक महत्वपूर्ण जनजाति है। यह जनजाति मणिपुर के तमैङ्लौंग जिला, इखौपुम, इंफाल के महाबलि, जन्मस्थान, कई सामथोंग आदि स्थानों में बसती है।

व्यतिरेकी विश्लेषण- विभिन्न स्तरों पर दो भाषाओं की संरचनाओं की परस्पर तुलना कर उनमें समान और असमान तत्वों का विश्लेषण करना व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाता है। इसमें असमानताओं पर विशेष बल दिया जाता है। अत: व्यतिरेकी भाषाविज्ञान विश्व में प्राप्त दो भाषाओं की समानता, असमानता, अर्धसमानता आदि का अध्ययन करता है तथा द्वितीय भाषाशिक्षण के दौरान आने वाले मातृभाषा के व्याघातों को सामने प्रस्तुत करता है। बोलकर गास्त ने अपने आलेख 'Contrastive Linguistics Theory and Method' में व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा द्वितीय भाषाशिक्षण तथा अनुवाद कार्य में किस तरह की उपलब्धि हो सकती है, इसका खाता चित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है-

एकल भाषा विश्लेषण

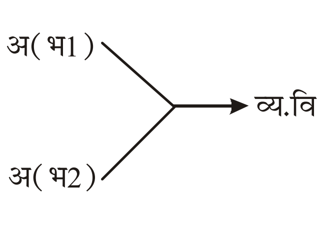

व्यतिरेकी विश्लेषण

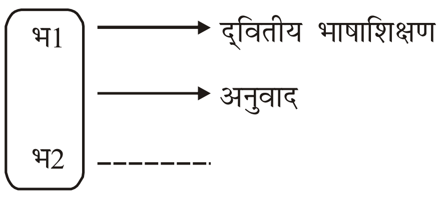

चित्र में दो भाषाओं के व्यतिरेकी अध्ययन से होने वाली उपलब्धि को चित्रित किया गया है। प्रस्तुत लेख

भाषा ISSN 0523-1418

का भी यही उद्देश्य है। हिंदी एवं रोंङ्मै पृथक-पृथक भाषा परिवारों के होने के कारण पृथकता तो रहेगी। इन दोनों भाषाओं के व्यतिरेकी अध्ययन के जरिए कई व्याकरणिक संरचनात्मक विषमताएँ अध्येताओं के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें द्वितीय भाषाशिक्षण में आने वाले मातृभाषा व्याघातों से बचा जा सकता है। इसलिए मैंने भी अव्यय के भेदों में निपात को शोध-लेख का विषय चुना है।

इसमें अव्यय, अव्यय की परिभाषा, अव्यय के भेद, अव्यय के भेदों में निपात, निपात की अवधारणा, हिंदी एवं रोंङ्मै निपातों की व्याख्या, निपात के प्रयोग आदि पर विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाएगा।

अव्यय की परिभाषा

वे शब्दरूप जो परिवर्तनशील नहीं हैं, जिन पर लिंग-वचन-कारक आदि व्याकरणिक कोटियों का प्रभाव नहीं पड़ता है, अव्यय हैं।

कुछ वैयाकरणों ने पाणिनि-व्याकरण के अव्यय शब्द को न लेकर यास्क के निपात को लिया है।

निपात- परिगणित निपात शब्दों में न लिंग-विचार अपेक्षित होते हैं, न वचन-विचार, न उनमें प्रत्यय ही अपेक्षित होते हैं।

अव्यय के भेद

क) क्रियाविशेषण

ख) समुच्चयबोधक

ग) संबंधबोधक

घ) विस्मयादिबोधक

ङ) निपात

निपात- हिंदी में कुछ ऐसे अव्यय शब्द भी हैं जो वाक्य में किसी शब्द या पद विशेष पर जोर (बल) देने के लिए उस शब्द या पद के बाद प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के शब्दों को निपात या अवधारक कहा जाता है। ये वाक्य में सामान्यता किसी भी पद के बाद आ सकते हैं।

रोंङ्मै के अव्यय तथा इसके भेदों को अपनी मौलिक परिभाषा प्राप्त नहीं। ऐसा नहीं है कि रोंङ्मै वाक्य-संरचना में निपातों का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः हमने अंग्रेजी व्याकरण तथा कोश से कुछ परिभाषाएँ संग्रहीत की हैं।

हिंदी निपात एवं रोंङ्मै निपात निम्न प्रकार से है-

हिंदी	रोंङ्मै
क) ही	ना/रप
ख) भी	किएन/नी
ग) तो	थो
घ) तक	ड्न्न
ङ) भर	पदिक/ज़िंग/कगोएना
च) मात्र	न

1) 'ही' निपातः

'ही' निपात कर्ता/कर्म/परसर्ग/ क्रियाविशेषण/क्रिया आदि से लगकर वाक्य में विशेष अर्थ प्रदान करता है। 'ही' के कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं-

हिंदी	रोंङ्मै
1. वह ही जाएगा।	कमेइ <u>ना</u> तत्पनी।
2. उसके आते ही खबर देना।	कमै गङ <u>रप</u> चम तिलौ तिउ।
3. वह आज चावल ही खाएगा।	कमै असै नप <u>ना</u> <u>तुपनी</u>।
4. आज मैं ही जाऊँगा।	असै आइ <u>ना</u> तत्पनी।
5. यह काम बच्चों ने ही किया है।	हेई तान अलाउ नुन रुई ना तानलोउ तुङ्दे।
6. वह खाना खाते ही काम पर जाएगा।	कमै नप तु रप तान तत्पनी।

रोंङ्मै में 'ही' का अर्थ 'ना' है। इसका संरूप है- 'रप' । समय अनुसार 'ही' और 'रप' का प्रयोग किया जाता है। रोंङ्मै भाषा में 'ना' का प्रयोग हिंदी भाषा के 'सिर्फ', 'के लिए' के रूप में प्रयोग किया जाता हैं तथा 'रप' का प्रयोग 'जाते ही', 'करते ही' आदि के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

इसका कर्ता/कर्म/क्रिया/क्रियाविशेषण आदि के साथ प्रयोग करते है।

रोंङ्मै	हिंदी
1. कमै ना तपनी।	वह ही जाएगा।
2. कमै त्त रप को सा लओ।	उसके जाते ही खबर देना।
3. कमै असै नप	आज वह चावल

तुपनी।	ही खाएगा।
4. असै आए ना तत्पनी।	आज मैं ही जाऊँगा।
5. कपुइ रोए कना खंग ना नप स्वंङे।	माँ ने बेटे के लिए ही खाना बनाया।
6. हैइ तान ना नुन गोय रोयना तान लओ त्वंगे।	यह काम बच्चों ने ही किया है।
7. कमै नप तु रप तान तान तत्पनी	वह खाना खाते ही काम पर जाएगा।
8. पईना हौगाये।	बहुत ही खूबसूरत है।
9. जैंग जैंग ना तरो।	धीरे-धीरे ही चलो।

इस तरह रोंङ्मै में भी 'ही' निपात के संरचनात्मक प्रयोग मिलते हैं। हिंदी में 'ही' युक्त पदबंध प्राप्त है। रोंङ्मै भाषा में इस तरह की संरचना उपलब्ध है किंतु इसका भाव इस रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है

हिंदी	रोंङ्मै
1. साथ ही साथ	सु इन चम ना
2. रेत ही रेत	बुतना सिन ना
3. कुछ ही लोग	मई कतित ना
4. देखते ही देखते	जाओ तन तन ना
5. काम ही काम	तान सिन ना
6. कोई कोई ही	थओ कुम्मई रुइ ना
7. ज्यों ही - त्यों ही	रई नुङ कुन्ना इनताओनी
8. बातों ही बातों में	लत सा-सा ना आदि।

रोंङ्मै में इस तरह के पदबंध नहीं मिलते। हिंदी के कई क्रियाविशेषण शब्द तथा अवधारक निपात 'ही' की संधि हो जाने से नए शब्द उभरकर सामने आते हैं। वे इस प्रकार हैं-

क्रियाविशेषण शब्द	+ ही	= नया शब्द
अब	+ ही	= अभी
कब	+ ही	= कभी
तब	+ ही	= तभी
यहाँ	+ ही	= यहीं
कहाँ	+ ही	= कहीं

आदि शब्द बनते हैं। ये वाक्य को और बल तथा अवधारक प्रदान करते है। इस तरह के शब्द रोङ्मै भाषा में प्राप्त नहीं हैं। जिस तरह से हिंदी में क्रियाविशेषण शब्द के साथ 'ही' शब्द के संधि करने से नए शब्द उभरकर आते हैं इस तरह के शब्द रोंङ्मै भाषा में नहीं हैं। हाँ, यदि अभी, कभी, तभी, यहीं, कहीं का हू-ब-हू प्रयोग किया जाए तो ये रोंङ्मै भाषा में ताव ना (अभी), तबुई बुई गन खौ (कभी), हई गन खौ (तभी), हई खौ (यहीं) इत्यादि के रूप में मिलते हैं।

2)'भी' निपात का प्रयोग कर्ता/कर्म/क्रिया/क्रियाविशेषण आदि के साथ प्रयोग करके वाक्य को सार्थक भी बनाता है। साथ ही साथ वाक्य के अर्थ में वृद्धि या अधिकता या अवधारक प्रदान करता है। वाक्यों में 'भी' के कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं:-

1. राकेश भी जाएगा।
2. सीता भी बहुत अच्छा काम करती है।
3. वह भी रात को जगी थी।
4. शीला उतनी भी खराब नहीं है।
5. उसकी जितनी भी तारीफ करो कम है।
6. जो भी हो रुकना मत।
7. राम में मूरत भी है और सीरत भी।
8. कल भी बारिश होगी।
9. जनता में भी बल होता है।
10. आजकल गाँव में भी लोग पढ़े-लिखे होते हैं।
11. यह काम कोई भी नहीं कर सकता।
12. वह रात को भी पढ़ाई करता है।

इस तरह 'भी' के कई प्रयोग दिए गए हैं। रोंङ्मै भाषा में भी 'भी' का प्रयोग किया जाता है जिसके लिए दो रूपों का प्रयोग किया जाता है जोकि 'किएन' और 'नी' है। इन दोनों रूपों में से किसी भी रूप का प्रयोग रोंङ्मै भाषा में हिंदी के 'भी' के लिए किया जा सकता है, अर्थात् कहा जा सकता है कि ये दोनों ही रूप 'भी' के पर्यायवाची हैं। 'किएन', 'नी' युक्त कुछ वाक्य इस प्रकार हैं-

रोंङ्मै	हिंदी
1. राहुल किएन/नी असई कैथिल तत्पनी।	राहुल भी आज बाजार जाएगा।
2. आए किएन/नी तान तान पनी।	मैं भी आज काम करूँगी।
3. कपुई किएन/नी नपप्वंग कसिमें।	माँ ने भी मिठाई बनाई थी।
4. हई किएन/नी हौगाए ए।	यह भी सुंदर है।

5. असई किएन/ नी तिङ लुपनी।	आज भी बारिश होगी।
6. अलाओ नुन किएन/नी कजाउपनी।	बच्चे भी शामिल होंगे।

जिस तरह हिंदी में एक ही वाक्य में 'भी' का प्रयोग एक से अधिक बार किया जा सकता है उसी प्रकार रोंङ्मै में भी 'किएन' और 'नी' का प्रयोग एक से अधिक बार किया जा सकता है, जैसे- वह लड़की लिख भी लेती है और पढ़ भी लेती है। हिंदी में 'भी' निपात युक्त कई पदबंध प्राप्त हैं- कभी भी; कहीं भी; कुछ भी; कोई भी; कितना भी; किसी भी आदि। रोङ्मै में 'किएन', 'नी' निपात प्रयोग होता है। हिंदी में 'भी' का प्रयोग 'और' के साथ भी किया जाता है, जिसका अर्थ है - 'ज्यादा' जैसे हम इस काम को और भी अच्छा कर सकते हैं। आज श्वेता ने और भी अच्छे कपड़े पहने है। इस तरह की वाक्य-संरचना रोंङ्मै में नहीं मिलती।

3) 'तो' निपात : हिंदी के 'तो' निपात कर्ता/ कर्म/ सर्वनाम/ क्रिया/ विशेषण आदि वाक्य घटकों के साथ जुडकर सार्थक वाक्यों का निर्माण करते हैं जैसे-

1. मैं तो बता रही हूँ ।
2. वह तो गया काम से।
3. चाय तो पी लो।
4. उसने तो यही किया था।
5. रानी तो चुप ही नहीं होती।
6. वह तो बहुत बुद्धिमान लगती है।
7. राधा तो आई पर अभी तक गई नहीं।
8. उसने तो ऐसा कहा पर किया नहीं।

इस तरह निपात 'तो' वाक्य के अर्थ को बल देते हैं। रोंङ्मै में 'तो' निपात का रूप है- 'थो'।

'थो' निपात के साथ कर्ता/ कर्म/ विशेषण/ सर्वनाम/क्रिया आदि वाक्य घटकों के साथ पिरोकर सार्थक वाक्य का निर्माण किया जा सकता है।

हिंदी	रोङ्मै
1. वह तो कुछ नहीं बोलता।	कमई थो लत खस सामे।
2. उसने न तो खाना खाया है, न तो पानी पिया है।	कमई थो नप नि तु मखे दुई नि जंग मखे।
3. आज तो मैं यह काम करूँगी।	असै थो आय हई तान तानपनी।
4. वह तो सुंदर है।	कमै थो हौगाएदे।
5. मैं जानना तो चाहती हूँ।	आए थाए थो थाएनिए।

इस तरह के कई प्रयोग रोङ्मै भाषा में मिलते हैं। जो कि हिंदी भाषा की 'ही' की तरह प्रयोग में लाए जाते हैं। अब जिस तरह से हिंदी में- वह भी तो जाना चाहता है। रोङ्मै में-कमै किएन थो पादे। हिंदी अर्थ - उसने भी तो पढ़ाई की थी। रोङ्मै -कमई कियन थो लरिक पादे। जिस तरह हिंदी में 'भी' और 'तो' का एक साथ प्रयोग मिलता है बिल्कुल उसी तरह रोङ्मै में भाषा में भी 'भी' और 'तो' का हू-ब-हू प्रयोग किया जाता है। ऐसे पदबंध हैं जो हिंदी में मिलते है जैसे जाने तो दो; सुनो तो; चलो तो; पी तो लो; मैं भी तो; नहीं तो आदि इस तरह का प्रयोग रोङ्मै भाषा में नहीं मिलता है। इसका भाव दूसरे ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

4) 'भर' निपात के रूप में जिन शब्दों के बाद आता है उनकी पूर्णता, समग्रता सीमितता या तार्किक बोध कराता है।

हिंदी में 'भर' निपात माप या परिमाण के अर्थ में प्रयोग होता है:- मीटर भर कपड़ा; किलो भर दूध; मुठ्ठी भर चावल; मुठ्ठी भर चीनी; मुठ्ठी भर अनाज आदि। इस तरह के प्रयोग रोङ्मै में नहीं मिलते।

'भर' का अर्थ केवल के अर्थ में भी होता है, जैसे:- उसे आज भर का ही समय है। मुझे मुट्ठी भर ही चावल चाहिए।

रोङ्मै भाषा में इस पूर्णता, समग्रता या तार्किक बोध को बताने के लिए 'पदिक', 'ज़िंग', 'कगोए' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'पदिक' का प्रयोग सामान या पदार्थ या तरलता के स्तर को बताने के लिए किया जाता है अत: 'ज़िंग' शब्द का प्रयोग काल या समय बताने के लिए किया जाता है

'कगोए' का प्रयोग किसी जगह को भरने की बात करता है । जैसे- रोङ्मै भाषा में कमई नईरिंग जिप ज़िंग बमदे अर्थात् वह रात भर सोता है। यहाँ समय की बात की जा रही है इसीलिए 'ज़िंग' का प्रयोग किया गया है। तथा रोङ्मै में बुंग पदिक ना तु थो अर्थात् पेट भर

खाओ। यहाँ अनाज से बने खाद्य पदार्थ से पेट भरा जाता है जोकि किसी तरह का पदार्थ है जिससे पेट भरा जाता है। इसीलिए यहाँ 'पदिक' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है, रोङ्मै में नम कगोएना खओ चम तिथाए लओथे अर्थात् गाँव भर में खबर फैल गई। हिंदी और रोङ्मै में कुछ उदाहरण-

रोङ्मै	हिंदी
1. दुई बुअंग पदिक ना जंग थो।	तुम गिलास भर पानी पियो।
2. नप बुंग पदिक ना तु-ओ।	तुम थाली भर के खाना खाओ।
3. असै तान नाई ज़िंग दे।	आज दिन भर काम है।
4. असै मणिपुर कगोएना बंद नाए।	आज मणिपुर भर में बंद है।

इस तरह रोङ्मै भाषा में 'पदिक', 'ज़िंग' और 'कगोए' शब्दों का प्रयोग हिंदी के 'भर' के अर्थों में किया जाता है।

5) 'तक' जिस शब्द के पश्चात् आता है, उसे बल प्रदान करने के साथ उसकी सीमा भी निर्धारित करता है। रोङ्मै में 'तक' का प्रयोग 'ङ्न्न' के रूप में किया जाता है। हिंदी की वाक्य-संरचना में 'तक' निपात का कोई निश्चित स्थान नहीं होता है। कुछ वाक्य निम्नलिखित हैं:-

हिंदी	रोङ्मै
1. वह आज तक नहीं आया।	कमै असै ङ्न्न ग्वंग मखे
2. उसने मेरे पास तक आने से मना कर दिया।	कमै रुइ अदेंग खौ ग्वंग मई ङ्न्न नुमखे
3. मैनें आज तक उसका नाम नहीं पूछा।	आए रुइ असै ङ्न्न कजन थन लओ मखे
4. मैं बाजार तक जा रही हूँ।	आए कैथिन ङ्न्न तत्लिहे
5. वहाँ तक पेड़ ही पेड़ हैं।	खुई ङ्न्न थिंगबंग सिन्न दे।

रोङ्मै में 'तक' का प्रयोग ङ्न्न' के रूप में किया जाता है। रोङ्मै के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-

रोङ्मै	हिंदी
1. असै ङ्न्न तबुई सुबम तियम चो।	आज तक तुम क्या कर रहे थे।
2. असै ङ्न्न चम तिथाए लओ-मे।	आज तक खबर नहीं दी।
3. आए अथ्वन ङ्न्न गंग्पंदे।	मैं कल तक आ जाऊँगी।
4. आए दिल्ली ङ्न्न तत्पुनि-थे।	मैं दिल्ली तक जाऊँगी।

हिंदी में ऐसी भी वाक्य-संरचना है जो रोङ्मै वाक्य-संरचना में भी प्राप्त है।

रोङ्मै	हिंदी
1. अलत हई असै ङ्न्न चु-मखे।	यहाँ तक कि उसने मेरी बात नहीं सुनी।
2. कपु-ता ङ्न्न जाओ लओ-मखे।	यहाँ तक कि अपने बाप की देखभाल नहीं की।

क्रिया विशेषणों के साथ भी 'तक' का प्रयोग होता है। और यह भी रोङ्मै भाषा में प्राप्त है।

हिंदी	रोङ्मै
1. कहाँ तक	थोकाए ङ्न्न
2. वहाँ तक	थुई ङ्न्न
3. आज तक	असई ङ्न्न
4. यहाँ तक	खौ ङ्न्न

6) 'मात्र' निपात:

रोङ्मै में 'न' मात्र निपात का पर्याय है। हिंदी में 'मात्र' का प्रयोग बहुत कम मिलता है। 'मात्र' युक्त कुछ शब्द इस प्रकार हैं-

विद्या+मात्र = विद्यामात्र (लरिक-थाएमे-न)

पल+मात्र = पलमात्र (कदक-अ-खत-न) रोङ्मै में इस तरह के शब्द मिलते तो हैं लेकिन हिंदी के साथ तुलना करने पर कुछ असमानताएँ पाई जाती हैं।

रोङ्मै शब्दों के साथ 'न' (मात्र') के अलावा अन्य प्रत्यय जुड़े हुए हैं। हिंदी के कुछ 'मात्र' वाले वाक्य इस प्रकार हैं- आज आलू मात्र की कीमत सस्ती है। मात्र पैसों से प्रेम नहीं करें आदि। रोङ्मै के कुछ वाक्य इस प्रकार हैं-

भाषा ISSN 0523-1418

रोङ्मै	हिंदी
1. आए थो हई न जाओ-नि-ए।	मुझे तो मात्र यही देखने का मन है।
2. नंग हई न सु-ओ।	तुम मात्र यही करो।
3. अनियो कईथिन न तनिये।	हम मात्र बाजार जाएँगे।
4. मनसई नुन थो सियन न कहावे।	लोग मात्र पैसों से प्रेम करते हैं।

रोङ्मै में 'न' निपात 'केवल', 'मात्र' के अर्थ का बोध कराता है।

प्रस्तुत आलेख में हिंदी एवं रोङ्मै के निपातों का व्यतिरेकी अध्ययन किया गया है। हिंदी एवं रोङ्मै पृथक-पृथक भाषा परिवार के हैं। हिंदी और रोङ्मै अलग-अलग भाषा परिवार के होने के कारण दोनों भाषाओं के मूल रूप में असमानताएँ देखने को मिलीं। हिंदी की लिपि देवनागरी है तथा रोङ्मै की लिपि 'रोमन' (Roman) है। इस आलेख में दो भाषाओं के व्यतिरेकी अध्ययन से होने वाली उपलब्धि को चित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अलग-अलग भाषाओं के व्यतिरेकी अध्ययन से भाषा-शिक्षण तथा अनुवाद में काफी सहायता मिल सकती है तथा भविष्य में कुछ और उपलब्धि भी हासिल हो सकती है। अंग्रेजी में निपात को पार्टिकल (Partical) कहते हैं। हिंदी एवं रोङ्मै निपात छह हैं। दोनों भाषाओं के निपातों के रूप पृथक-पृथक हैं। हिंदी और रोङ्मै निपात इस प्रकार हैं-

हिंदी	रोङ्मै
1. ही	ना/ रप
2. भी	किएन/ नी
3. तो	थो
4. तक	ङ्न्न
5. भर	पदिक/ ज़िंग/ कगोएना
6. मात्र	न

हिंदी के निपातों का कोई संरूप नहीं है लेकिन रोङ्मै के निपातों के कई संरूप हैं। इन संरूपों का प्रयोग वाक्य स्तरों पर निर्धारित किया जाता है। इस तरह का प्रयोग हिंदी में प्राप्त नहीं है। वाक्य-संरचना के अर्थ एवं प्रयोग के अनुसार निपातों का प्रयोग होता है लेकिन रूप में परिवर्तन नहीं होता। हिंदी में क्रिया विशेषण शब्दों तथा 'ही' के साथ संधि करके नए शब्दों का निर्माण होता है। यह रोङ्मै शब्द रचना में उपलब्ध नहीं है। हिंदी में 'ही' निपात युक्त कई पदबंध हैं जो रोङ्मै में नहीं हैं लेकिन समान अर्थ अभिव्यक्त करने के लिए सामान्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'भी' निपात का कर्ता/ कर्म/ विशेषण/ क्रिया विशेषण/ परसर्ग आदि के साथ प्रयोग करते हैं। इस तरह के संरचनात्मक प्रयोग रोङ्मै में भी प्राप्त हैं। रोङ्मै की वाक्य संरचना में 'भी' के लिए 'किएन' 'नी' निपात का प्रयोग एक ही वाक्य में कई बार कर सकते हैं जैसे- रोङ्मै में राधा किएन/नी, रमेश किएनि/नी, शीतल किएन/ नी कैथियन तत्बमे। हिंदी में - राधा भी, रमेश भी, शीतल भी बाजार जाएँगे। इस तरह के प्रयोग हिंदी में नहीं हैं। क्रियाविशेषण के साथ 'भी' का प्रयोग किया जाता है। लेकिन रोङ्मै में क्रियाविशेषण तथा 'नी' या 'किएन' निपात के मध्य अधिकरण कारक का होना आवश्यक है। रोङ्मै में 'भी' निपात के संरूप प्राप्त हैं जो कि 'किएन', 'नी' हैं।

'तो' निपात का जिस तरह हिंदी में प्रयोग किया जाता है बिल्कुल उसी तरह रोङ्मै में भी प्रयोग होता है। परंतु जाने तो दो; सुनो तो; चलो तो जैसे पदबंध रोङ्मै भाषा में नहीं हैं। रोङमै में 'तक' निपात के लिए 'ङ्न्न' का प्रयोग किया जाता है। हू-ब-हू हिंदी निपात की ही तरह इसका प्रयोग किया जाता है। रोङ्मै भाषा में 'भर' का अर्थ पूर्णता, समग्रता या तार्किक बोधता को बताने के लिए 'पदिक', 'ज़िंग', 'कगोए' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'मात्र' निपात केवल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। रोङ्मै में 'ना' मात्र निपात का पर्याय है। दोनों भाषाओं की वाक्य-संरचना में कोई भिन्नता नहीं है। अत: दोनों भाषाओं में हमें कुछ समानताएं, असमानताएँ और अर्धसमानताएँ भी देखने को मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भाषाविज्ञान परिभाषिक कोश; वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

2. प्रो. सूरजभान सिंह; अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण, प्रभात प्रकाशन, स.-2010

3. बोलकर गास्त: Contrastive Linguistics Theory and Methods

4. डॉ. कैलाश चंद्र अग्रवाल; हिंदी व्याकरण तथा रचना

5. काशीराम शर्मा; हिंदी व्याकरण मीमांसा, राधाकृष्ण प्रकाशन

6. डॉ. कैलाश चंद्र अग्रवाल; आधुनिक हिंदी व्याकरण तथा रचना, रंजन प्रकाशन

7. डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा; हिंदी का विवरणात्मक व्याकरण

8. हजारीयुम, सुवदनी देवी; व्यतिरेकी विश्लेषण सिद्धांत: सामान्य परिचय

9. आर्येंद्र शर्मा; A Basic Grammar of Modern Hindi केंद्रीय हिंदी निदेशालय

10. Jack C. Richard and Richard Schmidt: Longman Dictionary of Language Teaching & Applied Linguistics

11. A. Pei Mario & Frank Gaynor; Dictionary of Linguistics

12. Omkar N. Koul; Modern Hindi Grammar

– हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इंफाल-795003, मणिपुर

❑❑❑

लघुकथा का स्वरूप-शैली एवं शिल्प

किशन लाल शर्मा

लघुकथा का इतिहास बहुत पुराना है। छोटी-छोटी कथाएँ/कहानी हर युग में लिखी गई हैं। पूर्व में लिखी गई लघुकथाओं को, चाहे काल खंड कोई रहा हो, लघुकथा नाम नहीं दिया गया। उन्हें जातक कथा, बोध कथा, नीति कथा, मार्मिक कथा, प्रेरक प्रसंग, दृष्टांत आदि नामों से ही जाना जाता है। जातक कथाएँ, कथा सरित सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि पौराणिक ग्रंथ लघुकथाओं की मूल्यवान धरोहर हैं।

"लघुकथा शब्द का नामकरण बुद्धिनाथ झा 'कैरव' ने सन् 1942 में किया। इससे पूर्व की लघुआकारीय रचनाओं को न तो लघुकथा नाम से जाना जाता था और न ही लघु कहानी नाम से संबोधित किया जाता था।"[1] और फिर लघु आकार की रचनाओं को लघुकथा नाम से जाना जाने लगा।

लघुकथा है क्या?

"हर पीड़ा की पीड़ा से उत्पन्न अनुभूति जब दिल के तारों को झंझोड़ती है तब वही अनुभूति लघुकथा को जन्म देती है।"[2] दूसरे शब्दों में लघुकथा लेखक के भोगे हुए क्षण की मार्मिक अभिव्यक्ति है।[3]

लघुकथा आज हिंदी साहित्य की लोकप्रिय विधा बन चुकी है। पाठक कोई भी पत्रिका हाथ में ले, वह सबसे पहले उसमें से लघुकथा को पढ़ना पसंद करता है, ऐसा क्यों?

"वैज्ञानिक प्रगति ने जीवन को इतना अधिक गतिशील बना दिया है कि वह अत्यधिक संघर्ष एवं व्यस्तता के घटाघोप से आच्छन्न है- ढका, पूर्णावृत्त है। फलत: उसकी अभिव्यक्ति अंकुरित होकर संक्षिप्तता की ओर सतत् अग्रसर है।[4]

'इस संक्षिप्तता का एक कारण और हो सकता है- जीवन की भागदौड़ और आपाधापी में समय का अभाव।[5] जीवन यापन करने के लिए इतनी भागदौड़ है कि आदमी का जीवन अतिव्यस्त हो गया है और उसके पास समय का नितांत अभाव है। इसके अलावा एक सबसे बड़ा कारण और है टी. वी. और इंटरनेट। टी. वी. और इंटरनेट ने भी पठन-पाठन के प्रति रुचि कम की है। आज लोग पढ़ने से ज्यादा टी. वी. या इंटरनेट देखना पसंद करते हैं। ये तीनों कारण लघुकथा के लिए वरदान सिद्ध हो रहे हैं। समयाभाव के कारण पाठक लंबी कहानी और उपन्यास नहीं पढ़ना चाहता। वह छोटी-छोटी सारगर्भित रचनाएँ पढ़ना चाहता है। उसकी इस इच्छा की पूर्ति लघुकथाकार कर रहे हैं। ज्यों-ज्यों भविष्य में मानव जीवन संघर्षपूर्ण होता जाएगा, लघुकथा की लोकप्रियता बढ़ती जाएगी।

केशव प्रसाद वर्मा के शब्दों में शैली के दो प्रकार हैं- प्रसाद शैली और समास शैली। प्रसाद शैली में अतिसाधारण ढंग से सहज-सुगम भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों को एक साथ सजाकर रखा जाता है। इससे मानसिक चंचलता और उद्विग्नता की वह वाणी मिलती है जो पाठक के मर्म को छूकर गुदगुदा देती है। यही शैली लघुकथा के लिए उपयुक्त होती है। समास शैली द्वारा कठिन शब्दों में मिश्र एवं जटिल वाक्यों से भाषा तो दुरुह होती है, लेखक के भाव एवं विचार वाग्जाल

में उलझकर कौड़ी के तीन हो जाते हैं। अत: यह लघुकथा के लिए उपयोगी नहीं हो सकती।

लघुकथा का शिल्प

"किसी रचना को प्रस्तुत करने के ढंग अथवा तकनीक के लिए शिल्प का प्रयोग किया जाता है। शिल्प वह कारीगरी है जो रचनाकार की सूझबूझ से मूर्त्त होती है।[6] कोई भी लघुकथा तभी लघुकथा मानी जाएगी, जब उसमें लघुकथा के तत्व मौजूद हों।

लघुकथा का स्वरूप बनाए रखने के लिए लघुकथा में प्रमुखत: निम्न गुण/विशेषताओं का होना अति आवश्यक है:-

कथानक

यह लघुकथा की आधारशिला है। इसमें जीवन का कोई एक अविस्मरणीय क्षण, क्रिया कलाप या मार्मिक विचार बीज रूप में होता है, जिसको कथाकार सजग कल्पना से रोचक बनाकर लघुकथा का रूप देता है।[7]

संक्षिप्तता

यह लघुकथा की आत्मा है, जो कथाकार के शिल्प विधान को सरल बनाता है। लघुकथा ने अपनी लघुता के कारण ही अपनी संज्ञा ग्रहण की है। इसकी यह लघुता इसके कथानक के सहारे लाई जा सकती है। इसके संवाद, अंतर्द्वंद्व, वर्णन एवं कथ्य अल्प होकर भी कथा का रूप ग्रहण किए रहते हैं।[8]

लघुकथा की शब्द सीमा निर्धारित नहीं है। यह रचनाकार पर निर्भर है कि वह कितने कम से कम शब्दों में लघुकथा लिख सकता है।

संवेदनशीलता

आकार में लघु होते हुए भी भाव इसमें ऐसे व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त होते हैं, जो पाठक के मर्म को छेद देते हैं। इस तथ्य का निर्वाह केवल कथ्य में संवेदन को केंद्र बिंदु मानकर ही किया जा सकता है। यह संवेदन लघुकथा की प्राणवायु है।[9]

संप्रेषणीयता

दिल से निकली अपनी बात में ज्यादा असर होता है। लेखक अपनी क्षमता अनुसार अपनी बात को पाठक के हृदय तक पहुँचाने का प्रयास करता है। यह संप्रेषणीयता ही लघुकथा की जान है। यही गुण पाठक को विचार मग्न कर देता है। अब चाहे वह गुलाब की खुशबू का एहसास हो अथवा उसके काँटे की चुभन का।[10]

स्वाभाविकता/सत्यता

लघुकथा में बनावटीपन का कोई स्थान नहीं है।[11] कपोल कल्पना कथा शिल्प को बिगाड़कर रख देती है। किसी क्षणिक सत्य का उद्घाटन ही कथा को प्राणबल प्रदान करता है, जिससे लघुकथा सर्वग्राह्य बन जाती है।[12]

गंभीरता

कथावस्तु की गंभीरता से ही लघुकथा वजनदार बन पाती है। लघुकथा की गंभीरता से ही गागर में सागर भरने की कथा समाहित होती है।[13]

बोधगम्यता/रोचकता

लघुकथा ऐसी होनी चाहिए जो प्रथम वाक्य से ही पाठक को बांध ले। पाठक लघुकथा पढ़ते समय उसमें खो जाए और उस कथा को अपनी समझकर उसके साथ-साथ आगे बढ़ने लगे। घटना प्रवाह के साथ पाठक की उत्सुकता, लघुकथा को रोचक बनाती है।[14]

मौलिकता

मौलिकता ही लघुकथा को श्रेष्ठता प्रदान करती है।[15] लेखक को मौलिक लेखन ही करना चाहिए। मौलिक लघुकथाएँ ही पाठक द्वारा पसंद की जाती हैं।

उद्देश्य

लघुकथा का मूल उद्देश्य पाठक के मन को झकझोरना तो होता ही है किंतु उसके हृदय की उदात्त अनुभूतियों को जाग्रत करना भी है। इसके लिए उसमें घटना को स्थान न देकर परिस्थितियों का ही परिचित्रण होना चाहिए।[16]

चरम स्थिति

यह लघुकथा के कथ्य का वह स्थल है, जहाँ पहुँचकर पाठक के मन की कौतुहलता पराकाष्ठा को छू लेती है।[17]

व्यंग्यात्मकता

लघुकथा में अगर दाल में नमक के बराबर व्यंग्य का पुट डाल दिया जाए तो लघुकथा में जान पड़ जाती है। व्यंग्य एक ऐसा बाण है जो हमारे समाज की विद्रूपताओं, शोषण, अन्याय, विसंगतियों, पीड़ा, आतंक, अत्याचार, भ्रष्टाचार, धर्मांधता आदि ज्वलंत मुद्दों पर प्रहार करने में सक्षम है। इसलिए जहाँ तक संभव हो लघुकथा को हल्के-फुल्के व्यंग्य से सशक्त करना चाहिए।[18]

भाषा ISSN 0523-1418

शीर्ष

लघुकथा का यह एक ऐसा गुंबद है, जिसके अवलोकन मात्र से ही उसके प्रति आर्कषण हो जाता है। अत: शीर्षक कथ्य के भाषानुकूल, सरल, भावपूर्ण, संक्षिप्त एवं प्रतीकात्मक होना चाहिए, जिससे लघुकथा के उद्देश्य की झलक मिल जाए।

वर्तमान में जो लघुकथाएँ लिखी जा रही हैं, उनमें शैली एवं शिल्प का ध्यान रखा जा रहा है। परंतु यह कोई ऐसा व्याकरण नहीं है, जिसमें बंधकर ही कथाकार को अपनी लघुकथा की रचना करनी चाहिए। यह जरूर है कि यदि कथाकार शैली एवं शिल्प को ध्यान में रखे तो लघुकथा सार्थक होगी, उसका स्वरूप बना रहेगा और वह पाठक पर अपना प्रभाव छोड़ने में पूर्णतया सक्षम होगी।

संदर्भ:

1. हिंदी लघुकथा- एक वर्गीकरण (आलेख डॉ. राम कुमार घोटड़ लहर और लहर (लघुकथा संकलन) संपादन अजीम अंजुम- प्रथम संस्करण पृष्ठ 10 (1)।

2. लघुकथा- आज की आवश्यकता (आलेख) डॉ. मुइनुद्दीन अतहर- दृष्टि (लघुकथा संग्रह) डॉ. मुइनुद्दीन अतहर- प्रथम संस्करण 2009 पृष्ठ 9 (2)

3. दो शब्द (आलेख) डॉ. स्वर्ण किरन- दृष्टि (लघुकथा संग्रह) मोह. मुइनुद्दीन अतहर- प्रथम संस्करण 2009 पृष्ठ 5 (3)

4. लघुकथा-शैली एवं शिल्प। (आलेख) केशव प्रसाद वर्मा- सानुबंध/जुलाई 1994 का अंक/पृष्ठ 58 (4, 5) 59 (6, 7, 8, 9, 12) 62 (26, 17, 19)

5. लघुकथा, लेखन सार्थक पहल है। (आलेख) मोह. मुइनुद्दीन अतहर- मुखौटों के पार (लघुकथा संग्रह) प्रथम संस्करण 2013 पृष्ठ 12 (10, 11, 13) 13 (14, 15, 18)।

– 103, रामस्वरूप कालोनी, शाहगंज, आगरा-282010

❑❑❑

संघम साहित्य पुरनानूरु में प्रमुख कवयित्रियाँ

के. रामनाथन

नारी के लिए नहीं चाहिए सहानुभूति, बल्कि उसे जरूर चाहिए शिक्षा और आजादी। जब नारी घर के बाहर की दुनिया को पहचान लेती है तब वह नर का गुलाम बनकर नहीं रहेगी। वह देश के लिए मार्गदर्शन करने वाली नेता बनकर रहेगी।

–महात्मा गांधी जी

भारतवर्ष का अमिट प्रतीक है ऊँचा हिमालय और तमिल भाषा की अनुपम कृति है संघम साहित्य। संघम साहित्यों की रचना लगभग दो हजार साल पहले मानी जाती है। इन साहित्यों से एक ओर भाषा की समृद्धि का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर तत्कालीन समाज के लोगों के सभ्य जीवन का सुबोध इतिहास भी मिलता है। यह तो सत्य है कि सभ्य समाज के गठन में स्त्रियों की शिक्षा और उनका योगदान महत्वपूर्ण कार्य निभाता है। स्त्रियों की शिक्षा से विचारों में पवित्रता और कार्यों में दृढ़ता बढ़ती है जिससे समाज का सच्चा विकास और सभ्य जीवन की प्राप्ति सुलभ होती है।

पुरनानूरु हमें ऐसे समाज को दर्शाता है जिसमें शिक्षा नर–नारी सबको निर्भेद और निर्बाध मिलती थी और समाज का ऊँचा विकास होता था। संघम साहित्य में अन्यान्य कवियों की तरह कवयित्रियाँ भी शास्त्र रचना कर अपना अलग अस्तित्व प्रस्तुत करने में बेजोड़ थीं। उनकी रचनाओं से हमें उनके वैयक्तिक ज्ञान के साथ सामाजिक ज्ञान का भी अच्छा परिचय मिलता है। वे कवयित्रियाँ अपने अलग अस्तित्व के कारण राजा के दरबार में महत्वपूर्ण स्थान पाती थीं और जीवन मूल्यों को बताने वाली महान चिंतक के रूप में अपनी कीर्ति पताका फहराती थीं। ऐसी कवयित्रियों से तमिल साहित्य भंडार की समृद्धि खूब विकसित हुई और उनका नाम भी अमर हो गया।

पतु पाट्टू, एट्टू तोगै, पदिनेन कीलकणक्कु आदि संपूर्ण साहित्य माने जाते हैं। इनमें हम 30 कवयित्रियों की रचनाओं को पाते हैं। सामाजिक संबंध को प्रकट करने वाली उनकी रचनाओं में चिंतन की गहनता, अनुभव की विशालता, अभिव्यक्ति की कुशलता जैसी बहुमुखी प्रतिभा को हम देखते हैं।

अनुभव की विशालता

संघम काल की कवयित्रियों में औवैयार का स्थान अग्रगण्य है। उनकी रचनाओं में सामाजिक भलाई के उत्तम उपाय बताए गए हैं। इसलिए तमिल के राष्ट्रकवि भारतीयार भी कहते हैं, "हम तमिलनाडु की सारी संपत्ति को भी खो देंगे तो उसे फिर पा सकते हैं। परंतु यदि औवैयार की कृतियों को खो देंगे तो उन्हें फिर प्राप्त करना असंभव है। क्योंकि वे सब समाज की उन्नति के लिए अनुपम निधि हैं। उन्हें खोने के लिए हम कभी तैयार नहीं हैं।" उनके उपर्युक्त कथन से औवैयार की रचनाओं की विलक्षणता साफ प्रकट होती है।

संघम काल की कवयित्री औवैयार अपने साहित्यिक ज्ञान तथा व्यावहारिक ज्ञान के कारण तमिलनाडु में प्रसिद्ध थीं। आज की तरह उस जमाने में यातायात की इतनी सुविधा नहीं थी। फिर भी कवयित्री ने तमिलनाडु में पैदल भ्रमण करके सामाजिक ज्ञान को खूब हासिल कर लिया था। उल्लेखनीय बात यह है कि संघम काल

भाषा ISSN 0523-1418

की अन्य कवयित्रियों में से उनकी लिखित कविताएँ ही अधिक हैं। पुरनानूरु में उनकी 37 कविताएँ हैं।

उस जमाने में लोगों का विश्वास था कि जहाँ अच्छा देश है वहीं अच्छे जन रहते हैं। प्राकृतिक संपदा तथा अन्यान्य सुविधाओं के कारण ही कोई अच्छा देश बन सकता है और वहीं अच्छे लोग रहेंगे। असमृद्ध जगहों में असभ्य और बुरे लोग ही रहेंगे। परंतु अच्छे और आदर्श देश के लक्षण पर कवयित्री का विचार दूसरा था क्योंकि नदी-नाले, हरे-खेत, रेगिस्तान, पर्वत आदि विभिन्न स्थानों की यात्रा और वहाँ के लोगों के परिचय के कारण उनमें शैक्षिक ज्ञान के साथ सांसारिक ज्ञान भी अत्यधिक था। इसलिए उन्होंने अपनी एक कविता में ऐसे आदर्श और अच्छे देश के लक्षण पर इस प्रकार लिखा, "हे जमीन! तुम जंगल की हो या खाली जगह की, गड्ढे की हो या पर्वत की, जिससे तुम्हें कोई विशेष महत्व की प्राप्ति नहीं होती। जहाँ उत्तम जन रहते हैं, वहीं तुमको आदर्श और अच्छे देश का नाम मिलता है" (पृ. 187)

प्रस्तुत कविता के द्वारा कवयित्री के व्यापक आत्मानुभव के साथ आदर्श देश का लक्षण भी प्रकट होता है।

परिपूर्ण कर्तव्य ज्ञान

समाज का संघटन जनता से होता है। उसके सुगठन के लिए उसके हर सदस्य का अपना कर्तव्य भी होता है। माता, पिता, मजदूर, राजा, व्यक्ति आदि को अपने कर्तव्य के प्रति ध्यान होना चाहिए। कवयित्री पोन्मुडिमयार ने अपनी एक कविता के द्वारा हर एक के कर्तव्य पर अपना विचार प्रकट किया है। पहले कवयित्री माता के कर्तव्य बताती हैं। परिवार में माता का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि माता बच्चे को जन्म देती है। एक बच्चे को जन्म देने तक उसे अनेकानेक कष्टों को सहना पड़ता है और कई मुसीबतों को पार करना पड़ता है। यहाँ तक कि वह अपने सुखों को भी भूलकर बच्चे को जन्म देती है। इस प्रकार वह माता अपना सुख भूलकर बाहरी समाज के लिए एक स्वस्थ बच्चे को जन्म देकर अपना कर्तव्य पूरा करती है।

अब कवयित्री पिता के कर्तव्य बताती हैं। बच्चे के विकास के समय उसे अच्छे ज्ञान दिलाने और उत्तम चरित्रवान बनाने का कर्तव्य पिता का होता है। यदि बच्चा माँ के लालन-पालन में विकसित होगा तो माँ के लाड़-प्यार के कारण वह बिगड़ सकता है। इसलिए उस बच्चे का लालन-पालन करने का, शिक्षित तथा चरित्रवान बनाने का और समाज में ऊँचा स्थान दिलाने का कर्तव्य केवल पिता ही सफलतापूर्वक निभा सकते हैं। इसलिए पिता अपने पुत्र को योग्य नागरिक बनाने का कर्तव्य निभाता है।

शिक्षित एवं उत्तम गुणों से युक्त युवक अब अपना कर्तव्य निभाने के लिए समाज में पदार्पण करता है। इसलिए समाज को उसे अपना कर्तव्य पूरा करने का मौका देना चाहिए। समाज से प्रदान किए गए उस अवसर का सदुपयोग करके वह युवक अपना कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है। इसलिए समाज युवक को सुअवसर प्रदान करने का कर्तव्य निभाता है।

यह कथन सत्य है कि जैसा राजा वैसी प्रजा। अब राजा के कर्तव्य पर कवयित्री सूचित करती है। युवक को चरित्रवान और देश सेवक बनाए रखने के लिए राजा का अपना कर्तव्य होता है। क्योंकि राजा देश और जनता का प्रधान है। उसकी सोच और व्यवहार के अनुसार ही सारा कार्य चलता है और सारी प्रजा उसका पालन करती हैं। यदि राजा उत्तम गुणों और कार्यों का अनुशीलन करे तो देश के लोग भी पूर्णतया उसका पालन करेंगे। इस प्रकार राजा उत्तम गुणों का जीवन में पालन करने के लिए अपने व्यवहार के द्वारा कर्तव्य निभाता है (पृ- 312)

कवयित्री की प्रस्तुत कविता आदर्शपूर्ण समाज की स्थापना के लिए सदस्यों के कर्तव्य के प्रति उनकी विशाल दृष्टि को साफ प्रकट करती है।

वीरता की विलक्षणता

यह तो सच है कि नारी नम्रता एवं कोमलता की प्रतिमूर्ति है। उसमें जितनी कोमलता होती है उतनी दृढ़ता भी होती है। उसकी ऐसी दृढ़ता उसे एक निडर वीरांगना का रूप प्रदान करती है। निर्भीक वीरांगना तो किसी भी दशा में विचलित नहीं होती। वह अपने वचन और कार्य में सदा अपनी दृढ़ता को प्रकट करती है। कवयित्री ओक्कूर मासात्तियार ऐसी एक वीरांगना का वर्णन अपनी कविता में करती हैं। वे लिखती हैं, "उस दिन के युद्ध में इस स्त्री के निडर भाई ने बलवान हाथी को मार गिराया और खुद शहीद हो गया। कल के युद्ध में इसके पति ने शत्रु की बड़ी सेना को रोकने में सफलता प्राप्त की और देश के लिए अपने प्राण भी त्याग दिए।

लेकिन अब तक युद्ध का अंत नहीं हुआ। अब भी युद्ध के ढोल बज रहे हैं। इसलिए उसका जीवन बिल्कुल शून्य-सा हो गया। फिर भी उसका मन देश के मान को बचाने का उपाय सोच रहा था। उसने अपने एक मात्र मासूम पुत्र को पास बुलाया और उसे साफ कपड़े पहनाए। फिर उसके बाल सँवारकर खूब सजाया। उसके बाद पुत्र के हाथ में एक तलवार देकर उसे देश का मान बचाने के लिए युद्ध मैदान की ओर हिम्मत से भेज दिया" (पृ.-279)

कवयित्री की प्रस्तुत कविता यह प्रकट करती है कि औरतों में देश भक्ति के साथ निर्भीक स्वभाव भी कूट-कूटकर भरा रहता है।

विवेकपूर्ण अभिव्यक्ति

यह तो ज्ञात है कि कवयित्री औवैयार साहित्यिक ज्ञान के लिए नहीं बल्कि समयोचित व्यवहार कुशलता के लिए भी प्रसिद्ध थीं। अपनी चतुर अभिव्यक्ति के बल पर असंभव को भी संभव करने की शक्ति उनमें थी। एक बार राजा तोंडैमान अपनी बड़ी सेना के साथ सामंत अदियमान पर आक्रमण करने का उपाय बना रहा था। जब यह खबर अदियमान को मिली तब उसको बड़ी चिंता हुई क्योंकि वह उस समय युद्ध का सामना करने की स्थिति में न था। इसलिए वह युद्ध को टालने का विचार सोच रहा था। उसने शत्रु राजा के पास किसी दूत को भेजकर शांति स्थापित कराने का निर्णय लिया। उसका विचार था कि इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए चतुर दूत की जरूरत है। क्योंकि ऐसे दूत कार्य से ही युद्ध नहीं होगा और उसके आत्मगौरव पर भी कलंक नहीं लगेगा। कवयित्री औवैयार ने उसके मन की सोच को ताड़ लिया। वे तुरंत खुद दूत बनने को तैयार हो गईं।

औवैयार दूत के रूप में तोंडैमान से मिलीं। अपनी शक्तिशाली सेना के घमंड में एक दम चूर राजा ने उनका खूब स्वागत-सम्मान किया। उसके बाद वह उनको अपने अस्त्र-शस्त्र के गोदाम में ले गया। उसका विचार था कि वहाँ हथियारों के भंडार को देखकर औवैयार एक दम डर जाएँगी और सामंत अदियमान को माफ करने की प्रार्थना करेंगी। परंतु औवैयार ने उस अवसर पर अपनी चतुर अभिव्यक्ति का लाभ उठाया। उन्होंने तोंडैमान से कहा, "राजा, तुम्हारे इस गोदाम में अनेकानेक अस्त्र-शस्त्र, नए-नए और नुकीले हैं। वे सब फूलों की माला से सज-धज कर रखे हुए हैं। उन पर जंग न लगने के लिए तेल लगाया गया हैं इसलिए वे सब चमक रहे हैं। परंतु अदियमान के अस्त्र-शस्त्र अक्सर युद्ध में प्रयोग होने के कारण निस्तेज हो गए हैं। उनपर धार लगवाने के लिए वे सब लोहार के पास पड़े हैं" (पृ.-95)

औवैयार ने अपनी अभिव्यक्ति की कुशलता से शत्रु राजा के मन में यह विचार पैदा कर दिया कि सामंत अदियमान और उसके वीरों में युद्ध का अधिक अनुभव है। इसलिए तो उसके हथियार लोहार के पास पड़े हैं। आपके पास नए एवं अधिक हथियार हो सकते हैं। परंतु आपके वीरों में युद्ध का उतना अनुभव नहीं है जितना अदियमान की सेना के पास है।

औवैयार की ऐसी व्यावहारिक कुशलता से तोंडैमान के मन में अदियमान के प्रति श्रद्धा विकसित हुई, उसका घमंड दूर हुआ और युद्ध का खतरा भी टल गया।

अपूर्व उपहार

संघकाल में राजदरबार में कवियों का बड़ा आदर होता था। राजा कवियों का उचित सम्मान करना अपना गौरव मानता था। एक बार औवैयार राजा अदियमान के दरबार में आई थीं। वे मारे थकावट से चूर-चूर थीं। राजा ने प्रसन्न मन से उनका स्वागत किया। तब उसने उनको खाने के लिए एक अपूर्व आँवले को दिया। अधिक सुरक्षित रखे उस फल को नि:संकोच उपहार में दिए राजा के उदार दिल पर कवयित्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने राजा से उस आँवले की विशेषता के बारे में पूछा। राजा ने बताया कि यह फल अपूर्व मिलने वाला है। इसकी प्राप्ति बारह साल में एक बार ही होती है। इसे तोड़ना उतना आसान नहीं है। क्योंकि यह ऊँचे पर्वत की घाटी में मिलता है। उस आँवले का विशेष औषधीय गुण यह है कि इसे खाने वाला लंबे समय तक स्वस्थ रह सकता है। उस अपूर्व फल की विशेषता सुनकर औवैयार चकित रह गईं। उन्होंने राजा से सवाल किया कि ऐसे विशेष फल को खुद न खाकर मुझे देने का कारण क्या है? राजा ने उत्तर दिया कि उत्तम ज्ञान प्राप्त कर आप लंबे समय तक जीवन बिताएँ तो जनता को बड़ा लाभ मिलेगा। इस विचार से ही मैंने उसके महत्व को न बताकर आपको खाने के लिए दिया।

राजा के हृदय की विशालत पर गद्‌गद् होकर

औवैयार ने आशीर्वाद दिया और कविता लिखी, "पुराने और ऊँचे पहाड़ की घाटी में अपूर्व मिलने वाले छोटे पत्ते के इस आँवले के महत्व को अपने मन में छिपाकर अमर जीवन पाने के लिए मुझे खाने को दिया। चाँद को अपने भाल पर धारण किए उस नीलकंठ के समान तुम्हारा जीवन सदा बना रहे"(पृ. 91)

देवगण का विचार था कि किसी न किसी तरह लंबा जीवन प्राप्त हो। इसलिए उन्होंने अमृत का सेवन किया। परंतु एक दिन उनका भी अंत हो गया। लेकिन जिस जहर को पीना कोई भी पसंद नहीं करता उसे भगवान शिव ने सबको जीवन प्रदान करने के लिए खुद पी लिया। भगवान खुशी से जहर पीकर नीलकंठ के नाम से अमर बन गए। वैसे ही औवैयार की कामना थी कि राजा अदियमान को नीलकंठ की तरह अमर जीवन मिले।

भावुक हृदय

यह तो सच है कि कुछ घटनाएँ हमारे दिल की गहराई में घर कर लेती हैं। समय बीतने पर भी वे घटनाएँ हमारे ध्यान से नहीं हटतीं। राजा पारी बड़ा दयालू और दानी था। वह परंबु देश का शासक था। पारी एक बार सैर के लिए रथ पर निकल पड़ा। तब उसने रास्ते में देखा कि पौधों के बीच एक बेल बिना सहारे इधर-उधर भटक रही थी। बेल की दशा पर राजा को बड़ा दुख हुआ। उसने तुरंत अपने रथ को उस बेल के पास खड़ा किया और उस बेल को आगे बढ़ने के लिए अपने रथ पर फैला दिया। पौधों के प्रति भी राजा पारी के इस दयापूर्ण कार्य को देखकर सारी जनता उसकी प्रशंसा करने लगी और उसका नाम भी चारों ओर फैल गया।

दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती राजा पारी की कीर्ति पर चेर, चोल और पांडिय राजाओं के मन में ईर्ष्या और द्वेष की भावना पनप उठी। उन्होंने पारी की बढ़ती कीर्ति का अंत करने के लिए बड़ी सेना लेकर उसके देश पर हमला किया। लेकिन पारी की राजधानी पहाड़ पर थी, उधर वह अपने किले में सुरक्षित था। इससे शत्रुओं की सेना का हमला निष्फल हो गया था।

शत्रुओं की दशा पर व्यंग्य करते हुए पारी के दरबारी कवि कबिलर ने उनसे मिलकर कहा कि राजा पारी को युद्ध में जीतना असंभव है। असल में वह बड़ा दयालू है। इसलिए आप उनसे मिलकर भेंट माँगें तो वह अपना सब कुछ दे देगा। यह सुनकर उन शत्रुओं ने एक षड्यंत्र बनाया और नट-नटी का वेष धारण करके पारी के सामने अपनी कला का प्रदर्शन किया। पारी ने खुश होकर उनसे कहा कि जो चाहो माँगो। तब उन शत्रुओं ने उत्तर दिया हम आपको ही भेंट में पाना चाहते हैं।

वादे के अनुसार राजा पारी उनके साथ चल पड़ा। उन निर्दयी शत्रुओं ने उसे मार दिया और उसके राज्य को भी हड़प लिया। तब से उसकी दो बेटियाँ अनाथ एवं निस्सहाय हो गईं। वे दोनों बेटियाँ कवयित्रियाँ भी थीं। उन्हें अपने पिता के साथ बिताए दिन को भूलना कठिन रहा। वे दोनों सदैव अपने पिता की याद में दुखी और उदास रहती थीं। पूर्णिमा के दिन वे दोनों की याद में डूब गईं। अपने विचारों को कविता का रूप देकर लिखा, "गत महीने की पूर्णिमा में हमारे साथ थे। यह देश भी जीत लिया और वह पहाड़ भी उनका हो गया। अब हमारे पिता भी हमारे साथ नहीं रहे" (पृ.-112)

मन का सम्मान

कवयित्री वेणिकुयतियार ने मान के प्रति अधिक सम्मान रखते हुए चेर राजा पेरुंचेरलादन के व्यवहार पर प्रसन्न होकर एक कविता लिखी जिससे राजा की कीर्ति अमर हो गई। एक बार चोलराजा करिकालन और चेर राजा पेरुंचेरलादन के बीच में वण्णिपरंदलै नामक स्थान में कठोर युद्ध हुआ। उस युद्ध में शत्रु के सैनिक से तेज चलाया गया एक भाला चेराराज की छाती को चीरकर पीठ के बाहर आ गया और युद्ध में चेर राजा हार गया था। उन दिनों युद्ध में पीठ पर लगने वाला घाव अपमान का चिह्न समझा जाता था और वह सैनिक भी कायर माना जाता था। इसलिए कोई भी सैनिक पीठ पर घाव लगने नहीं देता था। यदि ऐसा हो गया तो वह वीरता का अपमान समझकर वह अपने प्राण त्याग देता था।

असल में चेर राजा को पीठ पर का घाव उसकी कायरता से या युद्ध मैदान से भागने के कारण नहीं हुआ था। बल्कि तेज चलाया गया वह भाला छाती को छेदकर पीठ के बाहर आने के कारण बना था। युद्ध में हार और पीठ पर घाव आदि से चेर राजा पेरुंचेरलादन अशांत और बेचैन था। उससे ऐसा अपमान सहा नहीं गया। इसलिए उसने उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार उत्तर दिशा में बिना अन्न और पानी लिए

अपने प्राण छोड़ने का दृढ निश्चय किया। मित्र और कविगणों के समझाने पर भी उसने एक न सुनी और आखिर मान की रक्षा में अपने प्राण छोड़ दिए।

कवयित्री वेण्णिकुयतियार ने जीत के नशे में गलती करते राजा को समझाने का निश्चय किया। उन्होंने राजा को देखकर कहा, "अपनी जल सेना के सहारे जीत पाने के लिए हवा को भी साथ मिलाए चोल वंश परंपरा में आए हे राजा! हाथी की बड़ी सेना को अपने पास रखने वाले हे राजा! अपने बल से शत्रु को हराकर जीत पाने वाले हे राजा! कीर्तिपूर्ण स्वर्ग को पाने के लिए पीठ पर घाव को अपमान मानकर अपने प्राण त्याग दिए वह राजा तुमसे भी उत्तम है न?"(पृ.-66)

कवयित्री की प्रस्तुत कविता में उनकी बड़ी हिम्मत प्रकट होती है। क्योंकि हारने वाले की कीर्ति को जीतने वाले के सामने व्यक्त करना साधारण कार्य नहीं है। फिर भी कवयित्री ने बड़ी चतुराई से इंगित कर दिया कि जीत पाना अच्छा है, लेकिन उस जीत से भी मान का सम्मान ऊँचा है।

निष्कर्ष

संघम साहित्य पुरनानूरु हमें ऐसी कवयित्रियों को दर्शाता है, जिनमें साहित्यिक ज्ञान के साथ सांसारिक ज्ञान, व्यावहारिक कुशलता, समयानुकूल की चतुराई आदि गुण भी विद्यमान रही हैं।

- वे कवयित्रियाँ ऐसे देश की स्थापना करना चाहती हैं, उस आदर्श देश में हर एक अपने कर्तव्यों के प्रति ध्यान रखे।
- वे कवयित्रियाँ वीरता की पुजारिन हैं। इसलिए अपने एक मात्र पुत्र को भी देश की रक्षा करने के लिए शान से भेजने वाली नारी की प्रशंसा करती हैं।
- वे कवयित्रियाँ अपने विचारों की अभिव्यक्ति बडी चतुराई से प्रस्तुत करती हैं। उनकी ऐसी कुशलता के कारण युद्ध का विचार भी हट जाता है।
- वे कवयित्रियाँ अपनी साहित्यिक क्षमता के कारण राजा की प्रिय बन गई हैं। इसलिए राजा उनको अपूर्व उपहार देना परम गौरव समझता है।
- वे कवयित्रियाँ भावुक और कोमल हृदय की हैं। उनका कोमल स्वभाव उन्हें पुरानी याद में डूबो देता है।
- वे कवयित्रियाँ निडर और निर्भीक होती हैं। वे अपने विचार को प्रकट करने में जरा भी संकोच नहीं करती हैं। इसलिए जीत पाने पर भी राजा की गलती को नाजुक ढंग से प्रकट करती हैं।

संदर्भः

(पृ.-) पुरनानूरु की कविता संख्या।

– 83/23-बी, करुंगलपट्टी, IV स्ट्रीट, सेलम-636006

❑❑❑

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में आदिवासी हाशिये का समाज

डॉ. मिथलेश सिंह

आदिवासी साहित्य पर बात करने से पहले 'आदिवासी' शब्द को समझना आवश्यक है। आदिवासी शब्द से स्पष्ट होता है कि, जो पहले से यहाँ रह रहे हों, आदिवासी अर्थात् आदि जमा वासी। इन्हें संविधान की पंचम अनुसूची में 'जनजातियों' शब्द से परिभाषित किया गया है। जेकब्स तथा स्टर्न की परिभाषा के अनुसार - "एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का ऐसा समूह जिसकी समान भूमि हो, समान भाषा हो, समान सांस्कृतिक विरासत हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का जीवन अर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओत-प्रोत हो, जनजाति कहलाता है।"[1]

भारत में अनेक जनजातियाँ है जिन्हें सात भागों में बाँटा जाता है, उत्तर पूर्वोत्तर, पूर्वी, मध्य-पश्चिम, दक्षिण और दवीपीय क्षेत्र। आदिवासियों का अपना धर्म है, वे प्रकृति पूजक हैं। उनमें से कुछ लोगों ने हिंदू, ईसाई, बौद्ध एवं इस्लाम धर्म अपनाया है। भारत में प्रमुख रूप से भील, गोंड, संथाल, मीजी, असुर, न्याशी, हो, गालो, मोन्पा, तागीन, खामती, मेमबा, पारधी, नाक्टे, कंजर, कबूतरा, आपातानी, मुंडा, सांसी, नट, मदारी, सपेरे, दरवेशी, पासी चाकमा, डोंबारी, कोली, पारधी, मीणा, आन्गे, गरसिया, सहरिया, लेपचा, थारू, उरांव, भवघूरा, बोंडा आदि वास करती हैं, जिन्हें आदिवासी कहा जाता है। ऐसे अनेक आदिवासियों को केंद्र में रखकर भारतीय स्तर पर अनेक भाषाओं में साहित्य लिखा जा रहा है। जिनमें महाश्वेता देवी, बाबा भांड, भुंजग मेश्राम, विमल मिश्र, टे. शी. नेगी, सुरेश मिश्र, डॉ. विजय चौरसियां, सतीनाथ, भादुडी, तिप्पेस्वामी, यू. आर, अनंतमूर्ति आदि साहित्यकार अपनी-अपनी ओर से योगदान दे रहे हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रभाषा कैसे पीछे रह सकती है।

इक्कीसवीं सदी समाज, राजनीति, साहित्यादि की दृष्टि से निश्चित ही महत्वपूर्ण रहेगी। इस सदी के आरंभ में ही चेतना ने समता स्वातंत्र्य की जोरदार माँग करना शुरू किया। अब तक समाज संस्कृति आदि की दृष्टि से हाशिये पर रहे जन समुदाय प्रवाह में आने के लिए बहुत जोरों से मशक्त कर रहे हैं। फिर वह दलित हो या आदिवासी और इनका पाथेय बना है साहित्य।

आदिवासी साहित्य पर जब विचार करते हैं तो निश्चित रूप से आदिवासी जनजातियों में जागा आत्मसम्मान हमारा ध्यान खींचता है। आज भारतीय स्तर पर आदिवासी साहित्य की चर्चा शुरू है। अनेक भारतीय भाषाओं में साहित्य आदिवासियों की जल-जमीन-जंगल से खदेड़ने की त्रासदी को डंके की चोट पर व्यक्त कर रहा है। आदिवासी साहित्य स्पष्ट कर रहा है कि हम यहाँ के मूल निवासी हैं और हमें ही निर्वासित किया जा रहा है। हिंदी में आदिवासी पर अनेक विधाओं की तुलना में कथा साहित्य सृजन का आरंभ हुआ है, भले ही वह अभी सशक्त न हो। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में कथा साहित्य में लेखन का औसत कुछ ज्यादा है और उसमें भी उपन्यास विधा सशक्त दिखाई देती है। हिंदी आदिवासी उपन्यासों का जब हम अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट होता है कि उपन्यासकारों ने उन पहलुओं को उजागर किया है, जिन पर अब तक किसी ने प्रकाश नहीं डाला था। हिंदी उपन्यासकारों ने स्पष्ट किया है कि, आदिवासी यहाँ के मूल निवासी होकर भी उन्हें अपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें यहाँ की

समाज व्यवस्था ने हाशिये पर रखकर आज भी आदिम रूप से जंगलों में रहने के लिए मजबूर किया है उन तक मूलभूत सुविधाओं को भी पहुँचने नहीं दिया जाता है। ये जनजातियाँ आज भी वरुण, सिंगबोंगा जैसे देवताओं के चक्रव्यूह में फंसी, गिरी, कंदाहारों में पीढ़ी दर पीढ़ी जीवन जीवन जी रही हैं। उन्हें औद्योगीकरण के नाम पर जल, जमीन, जंगलों से निर्वासित किया जा रहा है। ऐसी अनेक समस्याओं को हिंदी उपन्यासकारों ने उकेरा है, और इन्हें हाशिये से निकालकर; हम भी मानव हैं, हमें भी उतना ही हक है जितना यहाँ के गाँवों में, नगरों में रह रहे मानवों को है; आदिवासियों एवं अभिजात जातियों, धर्मों के लोगों को है का संदेश दिया है।

मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं "कभी-कभी सड़कों, गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध-सुर्खियों में दिखाई देने वाले कंजर, सांसी, मदारी, संपेरे, पारदी, हाबूडे, बनजारे, बावरिया, कबूतरे न जाने कितनी जनजातियाँ हैं जो सभ्य समाज के हाशिये पर डेरा लगाए सदियों गुजार देती हैं- हमारा उनसे चौकना संबंध सिर्फ काम चलाऊ ही बना रहता है। उनके लिए हम हैं 'कज्जा और दिक' यानी सभ्य संभ्रांत 'परदेशी', उनका इस्तेमाल करने वाले शोषक, उनके अपराधों से डरते मगर अपराधी बनाए रखने के आग्रही।"[2] यहाँ पर लेखिका ने केवल आदिवासियों की जीवन समस्याओं, शोषण को ही नहीं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को, उत्सव, पर्व-त्योहार, अंधविश्वास, आवास-निवास, रूढ़ि, परंपरा, आचार-विचार, संसाधनों को भी हमारे सामने रखा है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में लिखे इन उपन्यासों में करनटो, नटो, संथाल, उरांव, मुंडा, गोंड, मिजो आदि जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के साथ-साथ उन पर हो रहे अन्याय-अत्याचार, शोषण, पिछड़ेपन को भी उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया है, "महाजनी और सामंती दखलंदाजी की मिसालें 'सावधान नीचे आग है' तक पसरी हुई हैं। इसी तरह 'पाँव तले की दूब' में जनजातीय समाज की नवीनतम आकांक्षाओं और संघर्षों को वैज्ञानिक आलोड़नों के साथ उत्कर्षित किया गया है।"[3] बीसवीं सदी के ये उपन्यासकार स्वतंत्रता के बाद सामंतवादी, अर्ध-सामंतवादी, पूंजीवादी व्यवस्था में फंसे आदिवासियों की त्रासदी को प्रामाणिकता के साथ उजागर कर रहे हैं। बीसवीं सदी के इन उपन्यासों की इस परंपरा को आगे बढ़ाने वाले और आदिवासी शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले उपन्यास इक्कीसवीं सदी में लिखे जा रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के ये उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवताओं, दिकू, कन्जाओं उदयोजक, व्यापारी, प्रशासक, राजनेता, पूंजीवादी के शोषण को बड़ी संवेदना के साथ बताते हैं। कुछ उपन्यासों जैसे- आदि भूमि (प्रतिभा राय- 2002), काला पादरी (तेजिंदर 2002), पठार पर कोहरा (राकेश कुमार सिंह-2003), रेत (भगवानदास मोरवाल-2008), ग्लोबल गाँव के देवता (रणेंद्र- 2009), अरण्य में सूरज (श्रीमती अजित गुप्ता-2009), मरंगगोडा (नीलकंठ हुआ महुआ माजी-2012) आदि।

प्रतिभा राय का 'आदिभूमि' उपन्यास उड़ीसा के आदिवासी 'बोंडा' जनजाति पर लिखा गया है। यह उपन्यास बोंडा जाति के जीवन-व्यवहार, हिंसा, प्रतिरोध, सरलता, लोकविश्वास, स्त्री-पुरुष संबंध, स्त्री शोषण आदि को सशक्त रूप में उजागर करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी इनके शोषण का सिलसिला जारी होने के सत्य प्रतिभा राय उजागर करती हैं।

इस उपन्यास में सरकारी योजनाओं आवास योजना, साक्षरता आदि की धोखाधड़ी झूठ-फरेब, भ्रष्टाचार, स्त्रियों का यौन शोषण आदि को अभिव्यक्त किया गया है। इसमें शिक्षा के प्रति आदिवासियों की रुचि बढ़े इसलिए मास्टर सीतानाथ के माध्यम से उपन्यासकार अपनी बात रखती हैं। आदिवासी इलाकों में समाज सुधार करना आसान नहीं है, क्योंकि कई स्वार्थी लोग वहाँ पर अटके हुए होते हैं। उनमें प्रशासक बी. डी. ओ, पुलिस, राजनेता, एम.एल.ए जैसों का समावेश होने की बात उपन्यासकार करती हैं। उपन्यास का सीतानाथ, "अपनी निष्ठा के बल पर इस जंगली झुंड को 'आदमी' बनाने पर तुला हुआ है[4] किंतु अवसरवादी जीवन समस्याओं के साथ-साथ प्रकृति की संपन्नता को भी उपन्यासकार प्रतिभा राय उजागर करती हैं।

तेजिंदर का 'काला पादरी' मध्य प्रदेश की 'उंराव' जनजाति की समस्याओं को व्यक्त करने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास में आदिवासियों का उपनिवेशक व्यवस्था में फंसे होने की वास्तविकता सामने रखता है। साथ ही आदिवासी भूख, अभाव, दारिद्र्य, शोषण आदि से परेशान होकर ईसाई, हिंदू, बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की ऐतिहासिक वास्तविकता की ओर भी संकेत करता है।

भाषा ISSN 0523-1418

लेखक बताते हैं- "साहब रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ मर गई। उसने भी कई दिनों से कुछ खाया नहीं था।"[5]

'पठार पर कोहरा' झारखंड के मुंडा आदिवासियों की करुण कथा है। राकेश सिंह ने आजादी के बाद भी आदिवासियों के जीवन की समस्याओं का कोहरा न हटने की बात उपन्यास में की है। उपन्यास में साहू, बाबू और बंदूकधारी संस्कृति की पोल खोल दी है, जो अंग्रेजों के झारखंड छोड़ने पर शोषण का काम कर रहे हैं। इस उपन्यास में सरकारी योजनाओं के भ्रष्टाचार का भंडा-फोड़ किया है। राजीव गांधी की सरकारी योजनाओं के बारे में दस प्रतिशत वाली बात को आदिवासियों की योजनाओं में हो रहे भ्रष्टाचार के रूप में इस प्रकार व्यक्त करता है- "आजादी के बाद आदिवासियों के कल्याण की सैकड़ों योजनाएँ बनी हैं। पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ? आंबटित राशि का दस प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुँच रहा है। कई योजनाएँ कागज पर चलती रहती हैं। कई योजनाएं तो फाइलों की कब्र में ही दफ़न हो गईं ..... यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अपढ़, असंस्कृत, भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा रहेगा।[6]

इस उपन्यास में परेशानियों से घिरी एक लड़की की जद्दोजहद भी है और मुंड़ा जनजाति के शोषण, उत्पीड़न, अभाव, अन्याय-अत्याचार की वास्तविकताएँ भी हैं। लेखक इस उपन्यास में केवल शोषण की बात नहीं करता बल्कि शोषण के विरोध में आवाज भी उठाता है।

भगवान दास मोरवाल का 'रेत' उपन्यास हरियाणा की 'कंजर' जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक-संरचनाओं को बताता है। 'कंजर' अर्थात् काननचर यानी जंगल में घूमने वाले। यह कंजर अपने आप को 'माना गुरु' और 'माँ नलिन्या' की संतान मानता है। यह उपन्यास आदिवासी स्त्री और पुरुष विमर्श की कृति है। यह उपन्यास कंजरों पर पुलिस, प्रशासकों द्वारा हो रहे शोषण को दर्शाता है।

हरिराम मीना का 'धूणी तपे तीर' राजस्थान की मानगढ़ की घटना पर आधरित है। इस घटना को इतिहासकारों ने अनदेखा किया था। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने 'भीलों-मीनों' के ऐतिहासिक योगदान को उजागर करने की कोशिश की है।

रणेंद्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' झारखंड की 'असुर' जनजातियों के शोषण, विस्थापन को उजागर करता है। वैश्वीकरण के इस युग में एक ओर हम विकास कर रहे हैं तो दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों का अमर्याद उपयोग करके प्रकृति को दूषित कर रहे हैं। वहाँ के आदिवासियों पर हो रहे अन्याय और अत्याचार को भी दर्शाया गया है। इस उपन्यास में असुर जिनको राक्षस भी कहा जाता है के बड़े-बड़े दाँतों, सींगोवाला कोई जीव वाली संकल्पना को भी तोड़ा है। उस उपन्यास में हम देख सकते हैं-"आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटेलाइट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खनिज सम्पदा जंगल और अन्य संसाधन दिखते है तो उन्हें लगता है कि राष्ट्र-राज्य तो वे ही हैं तो हक उनका ही हुआ। सो इन खनिजों पर जंगलों में घूमते हुए लंगोट पहने असुर-बिरिजिया उरांव-मुंडा आदिवासी दलित-सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफ़्त होती है। वे कीड़े-मकोड़ो से जल्द निजात पाना चाहते हैं।"

उपन्यास में ग्लोबल गाँव के देवताओं में उद्योगपतियों, पूंजीपतियों, पुलिस, राजनेता, ठेकेदार आदि आकाशचारियों का समावेश है। इस वैश्वीकरण के युग में उनका जो शोषण हो रहा है वह स्पष्ट रूप से झलकता है।

महुआ मांजी का 'मंरगगोडा नीलकंठ हुआ' झारखंड की 'हो' आदिवासी जनजाति को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में मुख्यतः अणु-परमाणु नाभिकीय ऊर्जा के आदिवासी जीवन पर हो रहे दुष्परिणामों की ओर ध्यान खींचा गया है।

श्रीमती अजित गुप्ता का 'अरण्य में सूरज' राजस्थान की 'भील' जनजाति की जीवन-वास्तविकता को स्पष्ट करता है। लेखिका इसमें भीलों के परंपरागत जीवन को उनकी रूढ़ियों, मिथकों, अंधविश्वासों, दंतकथाओं के माध्यम से पाठकों के सामने रखती हैं। इस उपन्यास में बाल विवाह, बेरोजगारी, एड्स जैसी बीमारी, अंधविश्वास, दारिद्र्य, शोषण, व्यसनाधीनता और अशिक्षा जैसी समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यास 'हो', 'उरांव', 'असुर',

'भील', 'बोंडा', 'कंजर' आदि जनजातियों को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं जो राजस्थान, उड़ीसा मध्यप्रदेश, झारखंड, हरियाणा राज्यों में स्थित हैं। मुख्यत: ये उपन्यास एक ओर हमारी जगमगाती संपन्नता औद्योगिक विकास, नगरीकरण और वैज्ञानिक सफलता आदि को व्यक्त करता हैं तो दूसरी ओर आदिवासी जनजातियों की विपन्ता, विस्थापन, शोषण, बीमारियाँ, अन्याय, अत्याचार, विषमता, पराधीनता, अभाव, भूख, अमानवीय जीवन धर्मांतरण और प्राकृतिक ह्रास आदि को व्यक्त करते हैं। साथ ही इन समस्याओं से उबरकर निकलने के लिए संघर्ष करते आदिवासियों की जद्दोजहद को भी व्यक्त करते हैं। जब हम हिंदी आदिवासी साहित्य पर विचार करते हैं तो हमें इस सदी के आदिवासी उपन्यास ही आकर्षित करते हैं। ये उपन्यास दर्शाते हैं कि इस वैश्वीकरण बाजारीकरण, के युग में आदिवासियों के सामने कितनी समस्याएँ हैं और उनसे कैसे निपटा जा सकता है, यह सुझाव भी दिया गया है।

संदर्भ

1. भारतीय आदिवासियों की सांस्कृतिक, प्रकृति पूजा और पर्व त्योहार- डॉ. लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा, पृ. 88
2. अल्मा कबूतरी-मैत्रयी पुष्पा पृ. 43
3. बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में- विद्याभूषण पृ. 68
4. बोंडा जाति का औपन्यासिक समाजशास्त्र, हंस- फरवरी 2002, पृ.88
5. पठार पर कोहरा-राकेश कुमार सिंह पृ. 1
6. ग्लोबल गाँव के देवता-रणेंद्र

– विभागाध्यक्ष, जी. एस. एस. जैन कॉलेज, वेपेरी, चेन्नई

❑❑❑

भाषाओं के अस्तित्व पर मँडराता संकट

राकेश शर्मा 'निशीथ'

प्रसिद्ध भाषाविद और विचारक ई. एम. सिओरन ने कहा है, "कोई भी व्यक्ति किसी देश में निवास नहीं करता, बल्कि भाषा में निवास करता है।" क्रिस्टोफर मोसले का कहना है, "हर भाषा एक अनुपम विचार और दुनिया की संरचना है, जिसमें इसके अपने ही समुदाय- साहचर्य, रूपक, विचार पद्धति, शब्दावली, ध्वनि-प्रणाली, व्याकरण आदि होते हैं। ये सभी अद्भुत स्थापत्य संरचना में एक साथ कार्य करते हैं, जो इतना नाजुक होता है कि यह आसानी से लुप्त हो सकता है।"

दुनिया में 2,700 से अधिक भाषाएँ और 7000 से अधिक बोलियाँ हैं। अकेले अफ्रीका महाद्वीप में 1,000 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। पश्चिमोत्तर स्पेन और दक्षिण पश्चिम फ्रांस में बोली जाने वाली भाषा बास्क को विश्व की सबसे कठिन भाषा माना जाता है। बास्क भाषा के शब्द तथा इसका व्याकरण बेहद मुश्किल माने जाते हैं। दुनिया की पहली लिखित भाषा सुमेरियन है, जिसका इस्तेमाल करीब 3,200 ईस्वी पूर्व होता था। हालांकि यह भाषा अब लुप्त हो चुकी है। ऐसी सबसे पुरानी भाषा, जिसका अब भी उपयोग किया जाता है, वह है चीनी या मंडारिन। इस समय चीनी भाषा का प्रयोग दुनिया में लगभग 1.3 अरब लोग करते हैं। दुनिया में अंग्रेजी भाषा बोलने वालों की कुल संख्या 1.5 अरब है। दुनिया में सबसे अधिक दस्तावेज अंग्रेजी भाषा में ही प्रकाशित हैं। विश्व में हिंदी भाषियों की संख्या एक अरब से अधिक है।

मातृभाषा क्या है?

मातृभाषा सहज ज्ञानार्जन की भाषा है। यह हमारे स्वप्नों की भाषा होती है। यह सुख-दुख को अनुभव करने और उसे प्रकट करने की सहज प्रक्रिया है। वर्ष 1948 में पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली खान ने उर्दू को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया था। पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में इसकी जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। वहाँ बांग्ला को राजभाषा बनाने की माँग को लेकर आंदोलन हुआ। 11 मार्च, 1949 को ढाका विश्वविद्यालय के छात्रों ने 'राष्ट्रभाषा संग्राम परिषद्' का गठन कर 'बांग्ला राष्ट्रभाषा दिवस' मनाने की घोषणा की थी। तब सड़क पर उतरे आंदोलनकारियों पर लाठीचार्ज और आँसू गैस के गोले छोड़े गए। इससे भाषा आंदोलन और तेज हुआ और तीन वर्ष के बाद छात्रों का यह संघर्ष राजनैतिक आंदोलन में बदल गया।

21 फरवरी, 1952 को ढाका में कानून सभा की बैठक हुई। जैसे ही ढाका विश्वविद्यालय से निकलकर आंदोलनकारियों ने राजपथ पर आना शुरू किया पुलिस ने फायरिंग शुरू कर दी, जिसमें अनेक लोग मारे गए। यह माना जाता है कि भाषा के लिए शुरू हुआ यह आंदोलन देश की आजादी का आंदोलन बन गया। इसकी परिणति बांग्लादेश बनने की हुई और बांग्लादेश में मातृ भाषा दिवस मनाना शुरू हो गया। 17 नवंबर, 1999 को संयुक्त राष्ट्र के प्रभाग यूनेस्को ने इसे स्वीकृति देते हुए यह घोषणा की थी कि हर वर्ष 21 फरवरी के दिन अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस के रूप में मनाया जाएगा, तब से हर वर्ष विश्व में भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता और बहुभाषिकता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से इस दिन को विश्व भर में मनाया जाता

है। वर्ष 2008 को अंतरराष्ट्रीय भाषा वर्ष के रूप में मनाया गया था।

विश्व में हिंदी की स्थिति

विश्व के 25 से अधिक देशों में हिंदी की पहुँच है। भारत के अलावा इन देशों में हिंदी बोली, समझी जाती है- पाकिस्तान, भूटान, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव, म्यांमार, इंडोनेशिया, सिंगापुर, थाईलैंड, चीन, जापान, ब्रिटेन, जर्मनी, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, यमन, युगांडा और त्रिनिडाड एंड टोबैगो, कनाडा, इंग्लैंड, अमरीका, मध्य एशिया। विभिन्न देशों में हिंदी बोलने वालों में दक्षिण अफ्रीका में 8,90,292 लोग, नेपाल में 8,00,000 लोग, मॉरीशस में 6,85,170 लोग, अमेरिका में 6,48,983 लोग, यमन में 2,32,760 लोग, युगांडा में 1,47,000 जर्मनी में 30,000 और न्यूजीलैंड में 20,000 लोग हैं। भारत के हिंदी भाषी राज्यों की आबादी 46 करोड़ से अधिक है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश की 1.2 अरब आबादी में से 41.03 प्रतिशत की मातृभाषा हिंदी है। वर्ष 2001 की भारतीय जनगणना में 4.22 करोड़ लोगों ने हिंदी को अपनी मूल भाषा बताया था। दुनियाभर में 80 करोड़ से अधिक हिंदी बोलने वाले हैं। भारत में 75 प्रतिशत लोग हिंदी बोल सकने में सक्षम हैं।

मरती, सिमटी भाषाएँ

बीसवीं सदी के शुरू में विश्व में लगभग 15,000 भाषाएँ थीं, जिनकी संख्या 21वीं सदी की शुरुआत में घटकर लगभग 7,000 रह गईं। अगर ऐसा ही चलता रहा तो इस सदी के अंत तक यह संख्या घटकर सात से आठ सौ के बीच रह जाएगी। वर्ष 1991 की भारत की जनगणना के भाषा खंड की प्रस्तावना में दिए गए कथन में कहा गया है कि, "भाषा आत्मा का वह रक्त है जिसमें विचार प्रवाहित होते और पनपते हैं।... यदि एक भाषा मरती है तो एक जाति का हजारों वर्ष का अनुभव, इतिहास, उसकी सांस्कृतिक विविधता तथा पहचान ही सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाती है। डॉ. रामविलास शर्मा ने अप्रैल, 1958 में लिखित 'अंग्रेजी प्रेमी भारतवासी' शीर्षक निबंध में ऐनी बेसेंट का निम्नलिखित वक्तव्य उद्धृत किया था, "किसी देश में राष्ट्रीयता के भाव नष्ट करने का इससे अधिक कुशल उपाय यह नहीं है कि एक विदेशी भाषा को उच्च वर्गों की भाषा, कानून और अदालतों की, कॉलेजों की भाषा बना दिया जाए और सरकारी नौकरियों के लिए उस विदेशी भाषा की जानकारी आवश्यक कर दी जाए।"

संयुक्त राष्ट्र के स्वतंत्र विशेषज्ञ के अनुसार दुनिया के सभी अंचलों में कम बोली जाने वाली भाषाओं और बोलियों की संख्या में आ रही गिरावट बेहद चिंता का विषय है। इन भाषाओं और बोलियों को हो रहे नुकसान की पूर्ति कमोबेश असंभव है। कोरो उस भाषा का नाम है, जिसे खोजा गया लेकिन किसी भाषा के खोजे जाने की यह बात अपवाद है। ज्यादातर मामलों में भाषाओं के लुप्त होने की खबरें सामने आती हैं। भाषा रिसर्च एंड पब्लिकेशन सेंटर के सर्वे के अनुसार पिछले पाँच दशक में भारत में बोली जाने वाली 220 से अधिक भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं। भारतीय संविधान द्वारा उपेक्षित भाषाओं के दस्तावेजीकरण और संरक्षण के उद्देश्य से वर्ष 1996 में भाषा ट्रस्ट की स्थापना हुई थी। इस सर्वेक्षण से पता चला कि वर्ष 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में 1,100 से अधिक भाषाएँ थीं, जिनकी संख्या अब 880 से भी कम रह गई है। भाषाओं पर आए इस संकट का एक मुख्य कारण यह है कि भारत में बहुत-सी भाषाएँ ऐसी हैं, जो अभी तक लिपिबद्ध नहीं हो पाई हैं। कई भाषाएँ तो ऐसी हैं जिन्हें लोग बोल लेते हैं पर जब उन्हें लिखने की बात आती है तो वह लिख नहीं पाते हैं।

यूनेस्को संकटग्रस्त भाषाएँ कार्यक्रम ने चेतावनी दी है कि कंबोडिया में 20 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं पर आने वाले दशकों में इनमें से 19 विलुप्त हो जाएँगी। अलास्का यूनिवर्सिटी के माइकल क्रास ने एक सर्वेक्षण में पाया कि विश्व की 6,000 भाषाओं में से मात्र 170 को ही राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। अधिकतर देशों में अंग्रेजी, स्पेनिश, अरबी व पोर्तुगीज़ को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। कुल मिलाकर 70 ऐसे देश हैं, जो अपनी मूल भाषा का उपयोग करते हैं।

पिछले 30 सालों में लुप्त हुई भाषाएँ

वर्ष 2009 में संयुक्त राष्ट्र ने अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस की पूर्व संध्या पर आंकड़े जारी किए थे। इसमें बताया गया था कि दुनियाभर की कई मातृभाषाओं में संरक्षण के अभाव और अंग्रेजी के वर्चस्व ने सैकड़ों भाषाओं को समाप्ति के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। इन आँकड़ों के अनुसार दुनियाभर में ऐसी सैकड़ों भाषाएँ हैं, जो विलुप्त होने की स्थिति में पहुँच

गई हैं और भारत के बाद दूसरे नंबर पर अमरीका में स्थिति काफी चिंताजनक है, जहाँ 192 भाषाएँ दम तोड़ती नजर आ रही हैं। यूनेस्को ने खतरे की स्थिति वाली दुनिया की भाषाओं का एक इंटरएक्टिव एटलस बनाया है। इसके अनुसार विश्व की 6,000 से अधिक भाषाओं में से लगभग 2500 खतरे में हैं। खतरे की स्थिति को पाँच भागों में बाँटा गया है, लोप होने का खतरा, लोप होने का गंभीर खतरा, लोप होने का बहुत गंभीर खतरा, लुप्त होने वाली और लुप्त हो चुकी भाषाएँ। इसमें भारत की कुल 196 भाषाएँ खतरे की स्थिति में दर्शाई गई हैं। इनमें से 81 पर लुप्त होने का खतरा है, 63 पर लुप्त होने का गंभीर खतरा है, 6 बहुत गंभीर खतरे में है, 42 लुप्तप्राय हैं और 5 भाषाएँ हाल ही में लुप्त हो चुकी हैं।

इस रिपोर्ट के अनुसार भारत, अमरीका और इंडोनेशिया क्रमश: पहले, दूसरे और तीसरे स्थान पर हैं। भारत, अमरीका के बाद इंडोनेशिया है, जहाँ 147 भाषाएँ संकट में हैं। नेशनल ज्योग्राफिक सोसायटी एंड लिविंग टंग्स इंस्टीट्यूट फॉर एंडेंजर्ड लैंग्वेजेज के अनुसार हर एक पखवाड़े में एक भाषा की मौत हो रही है। अगर इसके संरक्षण के लिए कुछ खास नहीं किया गया तो वर्ष 2100 तक भूमंडल में बोली जाने वाली 7,000 से भी अधिक भाषाएँ पूर्णत: लुप्त हो जाएंगी। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि पूरी दुनिया में 2700 भाषाएँ संकटग्रस्त हैं।

ऐसा नहीं कि सिर्फ वे भाषाएँ लुप्त हो रही हैं, जिनमें लिखित साहित्य की परंपरा नहीं है। एस्ट्रो एशियाटिक खानदान की मून भाषा, जिसमें लिखित परंपरा सातवीं सदी में मौजूद थी, खात्मे की तरफ बढ़ रही है। दक्षिण भारत की टोलू जैसी खालिस द्राविड़ी भाषा की ग्रंथ नामक लिपि है। वर्ष 1842 में इसमें पाठ्यपुस्तक में और बाइबल के अनुवाद छपते रहे हैं, मगर वह खत्म होती जा रही है। कुर्वी बोली, जैसे बोलने वाले पाँच लाख लोग ओडिशा से आंध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम तक फैले हुए हैं वह भी खत्म होती जा रही है। बिहार की मैथिली भाषा, जिसकी लिपि तिरहुतिया है, लगभग गायब हो चुकी है। विश्व में जो भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

- वर्ष 1987 में नेगरहॉलैंड्स क्रिओल भाषा लुप्त हुई। इसे बोलने वाली आखिरी व्यक्ति मिसेज एलिक स्टीवेंशन थीं। यह भाषा अमरीका के वर्जिन आइसलैंड में बोली जाती थी।
- मियामी इलिनाइज नेटिव अमरीका भाषा थी। वर्ष 1989 में अध्ययन के बाद पता चला कि इसे बोलने वाला कोई नहीं बचा।
- कामास को कामाशियन नाम से भी जाना जाता है। यह रूस के यूराल पर्वतमाला क्षेत्र में बोली जाती थी। इसे बोलने वाले आखिरी व्यक्ति कलावाडिया पोल्तोनिकोवा थे। उनकी मृत्यु वर्ष 1989 में हुई।
- मुनिची पेरू के यूरीमागुआस प्रांत के मुनिचीस गाँव में बोली जाती थी। इस भाषा के आखिरी बोलने वाले हुऐनचो इकाहुएटे थे, जिनकी मृत्यु वर्ष 1990 में हुई।
- उबयेख तुर्की के कॉकेशिय प्रांत में बड़े पैमाने पर बोली जाती थी। यह काला सागर इलाके में पड़ता है। यह भाषा वर्ष 1992 में लुप्त हो गई।
- गागुडजू को बोलने वाले आखिरी व्यक्ति बिग बिल निएट्जी थे, उनकी मृत्यु 23 मई, 2002 में हुई थी। यह भाषा उत्तरी आस्ट्रेलिया में बोली जाती थी। इस भाषा को काकाडू या गागाडू के नाम से जाना जाता है।
- अकाला सामी रूस के कोला पेनेसुएला में बोली जाती थी। इसे बोलने वाले आखिरी व्यक्ति मार्जा सर्जीना थे। उनकी मृत्यु 29 दिसंबर, 2003 में हुई।
- इयाक 21 जनवरी, 2008 को तब लुप्त हुई जब इसे बोलने वाले आखिरी व्यक्ति स्मिथ जोंस की मृत्यु हुई। इयाक एक सदी पहले अलास्का के प्रशांत महासागरी तटीय क्षेत्रों में बोली जाती थी।
- वर्ष 2010 में बो ग्रेट अंडमानी भाषा लुप्त हुई। इसे बोलने वाली एकमात्र महिला बोआ सीनियर की मृत्यु होने पर इस भाषा को बोलने वाला कोई नहीं बचा। भाषा उत्तरी अंडमान के पश्चिमी किनारे पर बोली जाती थी। यह लिपिहीन थी। इस कारण इसके संबंध में अब कोई जानकारी नहीं बची।

जिन भाषाओं के लुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है

- तेरसामी कोला पेन्नुसला प्रांत में बोली जाती है, जो रूस का सुदूर हिस्सा है। आज से 100 साल पहले यहाँ रहने वाले सभी लोग तेरसामी ही बोलते थे। लेकिन अब इसका स्थान रूसी भाषा ने ले लिया है।

☐ 19वीं सदी के अंत तक हीरेन भाषा बोलने वाले हजारों में थे लेकिन अब स्पेनिश भाषा का वर्चस्व हो गया है।

☐ उसमें सामी स्वीडन और नार्वे के सीमांत इलाकों में बोली जाती है। यह लैटिन वर्णमाला में लिखी जाती है। इस भाषा में ओल्ड टेस्टामेंट और बाइबिल भी उपलब्ध है। इसे बोलने वालों की उम्र 80 से अधिक है।

☐ कयारडिल्ड के बोलने वाले आस्ट्रेलिया के बेंटिक्क द्वीप में रहते हैं। कयारडिल्ड का अधिग्रहण अंग्रेजों ने किया है।

☐ पिटे सामी स्वीडन में बोली जाती है। नार्वे से सटे सीमांत इलाके में इसे बोलने वाले 20 से कम लोग हैं। लैटिन वर्णमाला (अल्फाबेट) वाली इस भाषा को स्वीडन सरकार संरक्षण दे रही है।

☐ मांचू को बोलने वाले केवल 60 लोग बचे हैं। ये लोग उत्तरी चीन में रहते हैं। ये चीन की मांचू जाति के है।

☐ वोटियन रूस के इंगेरिया प्रांत में आज सिर्फ 20 लोग बचे हैं। नए लोग इसे नहीं सीख रहे हैं।

भाषाओं के लुप्त होने के कारण

आखिर कैसे बनती, बिगड़ी और लुप्त होती हैं भाषाएँ? कहाँ चली जाती हैं बोलियाँ? कई मान्यताएँ हैं और अपने तर्क भी। इसके कुछ अन्य कारण भी हैं। इसका एक प्रमुख कारण है संस्कृति या दूसरे शब्दों में कहें तो भाषाओं की असल तासीर कहीं खो गई। यह प्रयोग 18वीं सदी के बाद से जबरदस्त तरीके से बढ़ा। इसका दूसरा बड़ा उदाहरण देखने को मिलता है इंटरनेट में चैट की भाषा you की जगह u, बात-बात में cool लिखना जैसी तमाम शब्दावली हैं, जो हाल ही में अस्तित्व में आई हैं। सभी देशों के लोग इसका उपयोग कर रहे हैं।

संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषाओं को विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में गिना जाता है। इनमें किसी में पहले और किसी में बाद में विद्वता के संदर्भ में इतनी परिपक्वता आ गई है कि यह आम की जगह खास लोगों की जागीर बनकर रह गई। तत्कालीन समाज में तो संस्कृत के लिए बाकायदा व्यवस्था की गई थी कि यह समाज के कमजोर वर्गों के बीच पहुँचने न पाए। अमरीकी भाषविद् विलियम लेबॉव ने अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा कि जनसंख्या का एक विशिष्ट हिस्सा उच्चारण की अपनी विशिष्ट शैली विकसित करता है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि सभी मनुष्य एक ही तरह का उच्चारण नहीं करते। बाद में यही भाषाई अंतर उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की पहचान बन जाता है। इस समाज के नए मेहमान जाने-अनजाने रूप से समाज के अन्य लोगों से इस भाषाई अंतर को बनाए रखते हैं और कभी-कभी इसे और भी गहरा कर देते हैं। उदाहरण के लिए विश्व के तमाम देशों में रहने वाले तमाम भारतीय आपस में अपनी विशिष्ट शैली को बनाए रखते हैं। इस दृष्टि से ताकि वे अपनी संस्कृति और परंपराओं के विभेद को बनाए रख सकें। भारत में मातृभाषा शब्द शायद ऐसे ही आया होगा। मातृभाषा यानी वह भाषा जो माँ बोलती है। हाल ही के दशक को अपवाद मान लिया जाए तो एक लड़की भले ही कितनी भी दूर ब्याह कर गई हो, लेकिन अपने परिवार में वह अपने गाँव की बोली-भाषा जीवित रखती थी। उसी भाषा में वह लोरी सुनाती थी, दुलारती थी और पढ़ाती-लिखाती थी। इसलिए तमाम दौरों से गुजरकर भी भाषाएँ अपना वजूद बनाए रहीं। लेकिन वह परंपरा भी अब तेजी से लुप्त हो रही है।

भाषाओं का लुप्त होना चिंता का विषय है क्योंकि हर लुप्त होती भाषा के साथ संबंधित भाषा-भाषी समुदाय का इतिहास, ज्ञान और संस्कृति सदा के लिए खो जाते हैं। पूरी मानव सभ्यता खुद को खोकर दरिद्र हो जाती है। ऐसे में भाषा के भविष्य और भविष्य की भाषाओं को लेकर चिंता अस्वाभाविक नहीं है। भाषा के भविष्य को प्रभावित करने वले तत्वों में सबसे प्रमुख कारणों में जनसंख्या, अर्थव्यवस्था, सैन्य-शक्ति, ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में सहभागिता शामिल हैं। जो देश या समाज इनमें आगे होंगे उनकी ही शाखाएँ टिकेंगी।

वैश्विक स्तर पर उपनिवेशवाद जैसे कारणों का भाषाओं पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इस कारण इनका सीमांतीकरण हुआ है और देशज और कम प्रचलित भाषाओं के उपयोग में तेजी से गिरावट आई है क्योंकि अकसर इसे पिछड़ेपन, औपनिवेशिक आधिपत्य और राष्ट्रीय विकास में मंदी का प्रतीक माना जाने लगा था। वैश्वीकरण के युग में इंटरनेट और वेब आधारित जानकारी प्रणाली के विकास ने अल्प प्रचलित भाषाओं

भाषा ISSN 0523-1418

और बोलियों की विविधता पर सीधा और निर्णायक प्रभाव डाला है क्योंकि वैश्विक सूचना तंत्र और बाजार के लिए वैश्विक समझ होना आवश्यक माना जाता है। भाषा बोलने वालों की संख्या घटने के अन्य कारण ये हो सकते हैं, जैसे – समुदाय के सदस्यों की संख्या में कमी, दूसरी जगह बसना, सांस्कृतिक ह्रास, भूमि का छिनना और पर्यावरणीय कारण। कुछ समूहों के लिए स्थितियाँ उनके नियंत्रण से बाहर हैं। कुछ देश सार्वभौमिकता, राष्ट्रीय एकता और क्षेत्रीय प्रभुसत्ता को कारगर बनाने के लिए आक्रामक तरीके से एक राष्ट्र एक भाषा सिद्धांत को प्रोत्साहित करते हैं।

आईसीयू में पड़ी भारतीय भाषाएँ

भारत का पहला भाषाई सर्वेक्षण अंग्रेज अधिकारी जॉर्ज ग्रियर्सन के नेतृत्व में पूरा किया गया था। आठ दशक के लंबे अंतराल के बाद वर्ष 2012 में भारतीय जन-भाषाई सर्वेक्षण (पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया) की छह खंडों में प्रकाशित रिपोर्ट चौंकाने वाली है। यह रिपोर्ट भारतीय भाषाओं से जुड़े अनेक अनछुए पहलुओं को सामने लाती है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत की लगभग 20 प्रतिशत भाषाएँ विलुप्त हो चुकी हैं। अभी तक भारत की 310 भाषाओं के विलुप्त हो जाने के तथ्य सामने आए हैं। यह भी केवल 11 राज्यों के सर्वेक्षण में सामने आया है। इसमें गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, तमिलनाडु, राजस्थान, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, पं. बंगाल, जम्मू-कश्मीर तथा ओडिशा आदि ही शामिल थे। भारत में भाषाओं का मूल्यांकन करने से पता चलता है कि यहाँ 400 से अधिक ऐसी भाषाएँ हैं, जिन्हें बोलने वाले 10,000 से भी कम हैं। दूसरी ओर एक करोड़ से अधिक बोली जाने वाली विश्व की 65 भाषाओं में से 11 भारत की हैं।

भाषाओं के लुप्त होने के दुष्परिणाम

प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहने वाली जनजातियाँ, जिनको समाज में कभी ऊँचा मुकाम हासिल नहीं हो सका, उनकी बोली आमतौर से वह जबान नहीं है, जिसको विकसित भाषा कहा जाता है और जिसमें ज्ञान-विज्ञान का काम होता है। उनकी अपनी बोलियाँ हैं, जिनमें वे अपना अनुभव और ज्ञान बयान कर सकते हैं। ये बोलियाँ अस्त-व्यस्त तरक्की की दौड़ में रौंदी-कुचली और लुप्त होती जा रही हैं। जब भी किसी बोली का विनाश होता है तो उसके साथ इन्सानी अनुभवों का एक बड़ा खजाना हमेशा के लिए खो जाता है, जो नस्ल-दर-नस्ल हजारों वर्षों में जमा हुआ था। किसी चीज का लुप्त होना सार्वभौमिक समस्या है लेकिन भाषा का विलुप्त होना, शायद मनुष्य जाति के लिए खास है। यह प्रामाणिक तथ्य है कि जिस तरह मछली जल में रहती है, उसी तरह मनुष्य भाषा में। लेकिन भाषाओं की मौत तेजी से हो रही है। बीती सदी में कोई ऐसा दशक नहीं रहा होगा, जिसमें किसी-न-किसी भाषा का अंत न हुआ हो।

लोक भाषाएँ किसी भी मानक भाषा की संजीवनी शक्ति होती हैं। जब तक लोक (जन या अंग्रेजी में फोक यानी आदिम मनुष्य या आदिवासी, जनजाति) जिंदा रहेगा, उसके साथ-साथ उसकी भाषा भी जिएगी। बोलियों के समाप्त होने के खतरे तब बढ़ते हैं, जब बोलने वाले समुदाय मिटा दिए जाते हैं, जैसा कि अमरीका ने अनेक रेड इंडियन समुदायों के साथ किया, आस्ट्रेलिया ने एब-ओरिजिंस और न्यूजीलेंड ने मावरी जनजाति के साथ किया। भाषा-भाषी समुदाय मरता तब है, जब वह स्वेच्छा से अपनी मूल भाषा का इस्तेमाल परिवार, परिवेश और लोकाचारों में बंद कर दे। यह मात्र एक पीढ़ी में नहीं होता। जब पीढ़ी-दर-पीढ़ी भाषा-समुदाय रोजगार के लिए अन्य भाषा क्षेत्र में जाने लगता है तो वहाँ की स्थानीयता को न केवल भाषा, बल्कि भोजन, वस्त्र, लोकाचार तक में अपनाने लगता है। मातृ संस्कृति का जिंदा बने रहना भाषा के न मरने की उम्मीद का एक और बड़ा आधार है। जब माताएँ अपनी मूल भाषा त्याग देंगी, तो बच्चे माँ की भाषा से वंचित हो जाएंगे। तब जाकर मदर टंग की जगह अदर टंग लेने लगेगी। किसी भाषा का मर जाना एक संस्कृति का लुप्त हो जाना होता है।

भाषाओं को बचाने के प्रयास

दुनिया की कुल एक तिहाई भाषाओं की ही लेखन प्रणाली मौजूद है। इसलिए जब यह विलुप्त हो जाएंगी तब आगे आने वाली पीढ़ी के लिए इन भाषाओं का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होगा। अत: जिन भाषाओं को नही बचाया जा सकता उनका आने वाली पीढ़ी की जानकारी और वैज्ञानिक उद्देश्यों के लिए प्रलेखन किया जाना चाहिए। शब्दावली, कहानी, व्याकरण, धार्मिक संदर्भ के द्वारा भाषा का प्रलेखन किया जा सकता है। सरकार को भी देश की पहचान भाषा को बचाने के

लिए इन्हें स्कूलों आदि में पढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए, जिससे आने वाली पीढ़ी को अपने देश के गौरव काल के बारे में संपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।

वैसे तो भाषा का संरक्षण काफी कठिन कार्य है, फिर भी कुछ भाषाओं को बचाने के लिए कार्य किए जा रहे हैं। दुनिया की तमाम भाषाएँ संस्थानों द्वारा आदिवासी भाषाओं पर किए जा रहे कार्यों के कारण न सिर्फ इन्हें बचाने की योजना बनाई जा रही है बल्कि उनसे जुड़े संस्थान भी खोले जा रहे हैं। विश्वविद्यालयों में आदिवासी भाषाओं को संरक्षण देना है। जिन भाषाओं की लिपि है, उन्हें कंप्यूटराइज किया जाएगा या जो बोलियाँ बोली जाती हैं, उन्हें रिकार्ड करके रखा जाएगा।

50 साल बाद की भाषा

भारत और चीन जिस तेजी से कई आर्थिक ताकतों के रूप में उभर रहे हैं, उसके आधार पर क्या यह सोचा जा सकता है कि एक दिन हिंदी या मंदारिन भी इस दुनिया की संपर्क भाषा बन सकती है। वॉयस ऑफ अमरीका ने एक सर्वे कराया था। इसमें यह पाया गया कि चीनी भाषा की लोकप्रियता बहुत तेजी से बढ़ रही है। पूरी दुनिया जिस तरह से संचार साधनों के साथ एक विश्वग्राम में बदल रही है, उसे देखते हुए इस सवाल पर भी कई लोग बेहद गंभीरता से विचार कर रहे हैं। कुछ लोग मानते हैं कि हिंदी, बांग्ला, हिब्रू और मालावी जैसी अनेक भाषाएँ खत्म हो सकती हैं या लगभग खत्म होने के कगार पर होंगी। ब्रिटेन के भाषा विशेषज्ञ डेविड ग्रैडल जैसे लोगों का तो मानना है कि आज से पचास साल बाद अंग्रेजी भी अपना वजूद खोने लगेगी। लेकिन एक दूसरा खेमा भी है, जो यह मानता है कि नहीं, उस समय पूरी दुनिया में सिर्फ एक ही भाषा चलेगी और वह अंग्रेजी होगी, लेकिन अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में उस अंग्रेजी की शक्ल अलग-अलग होगी। यह विचार निराधार नहीं है।

इथोनोलॉग के अनुसार पिछले दो सौ वर्षों में लगभग 516 भाषाएँ नष्ट हो गई हैं। इनमें आर्थिक संप्रभुता उनकी रक्षा नहीं कर पाई है, क्योंकि अफ्रीकी देशों की जहाँ 46 भाषाएँ नष्ट हुई हैं, लेकिन इसकी वजह संभवत: यह रही है कि यूरोप के बहुत बड़े क्षेत्र में अंग्रेजी और लैटिन ही प्रचलित रही है और अफ्रीकी या प्रशांत क्षेत्रों की तरह वहाँ बहुत सारी भाषाएँ प्रचलित नहीं रहीं। इथेनोलॉग के अनुसार आज लगभग ढाई सौ भाषाएँ खत्म होने की कगार पर हैं। संभव है अगले 5-10 वर्षों में उनका अस्तित्व पूरी तरह से मिट जाए। तब क्या तमिल, तेलुगु, पश्तो, पंजाबी, उर्दू और डोगरी जैसी हमारी भाषाएँ भी आने वाले पचास वर्षों में नष्ट हो जाएँगी? पावलो कोएलो इस भविष्यवाणी से सहमत नहीं हैं। वह कहते हैं कि आने वाले दिनों में एथनिक और स्थानीयतावादी प्रवृत्तियों की बहुत तेजी से वापसी होगी। अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए लोग अपनी भाषाओं की ओर और अधिक कट्टरता से लौटेंगे। ऐसे में स्थानीय भाषाएँ फिर से जीवित हो उठेंगी।

एक बार गणेश शंकर विद्यार्थी ने कहा था, "मुझे देश की आजादी और भाषा की आजादी में किसी एक को चुनना पड़े तो मैं निस्संकोच भाषा की आजादी चुनूँगा, क्योंकि मैं फायदे में रहूँगा। देश की आजादी के बावजूद भाषा की गुलामी रह सकती है, लेकिन अगर भाषा आजाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता।" उनका यह कथन किसी भी देश की भाषा को जीवित रखने में आज भी अपना महत्व रखता है।

– 1/5569, बलबीर नगर विस्तार, शाहदरा, दिल्ली-110032

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

हिंदी की शब्द संपदा और उसके अन्यतम भाषाशिल्पी तुलसीदास

डॉ. दादूराम शर्मा

हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी सतत विकासशील जीवंत भाषा है। विकास के रास्ते में ज्यों-ज्यों दुनिया आगे बढ़ रही है, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और मानवीय चिंतन उपलब्धियों के नित्य नए द्वार खोल रहे हैं तदनुसार हिंदी भी उन्हें लिपिबद्ध करने के लिए नए-नए शब्द गढ़ती जा रही है। इन शब्दों का स्रोत या तो हमारी आकर भाषा संस्कृत है, अन्य भारतीय भाषाएँ हैं, इतर विदेशी भाषाएँ हैं या उससे जुड़े चिंतकों और विशेषज्ञों द्वारा आवश्यकतानुसार गढ़े गए शब्द हैं। हिंदी ने उदारतापूर्वक प्रत्येक स्रोत से प्राप्त शब्दों को आवश्यकतानुसार या तो यथावत् या अपनी ध्वनियों और व्याकरणिक नियमों में ढालकर आत्मसात् किया है और अपनी शब्द संपदा को सतत समृद्ध किया है। हमारी भाषा को निरंतर सजाने-सँवारने और परिष्कृत करके समृद्ध बनाने में जिन महान भाषा शिल्पियों का योगदान है, उनमें तुलसी अन्यतम हैं।

हिंदी के शब्द भंडार में पाँच प्रकार के शब्द पाए जाते हैं- तत्सम, तद्भव, देशज, देशी और विदेशी।

1. तत्सम शब्द :- 'तत्सम' का अर्थ है- उसके अर्थात् मूलभाषा के समान। हिंदी की मूलभाषा संस्कृत है। उसमें सहस्रों शब्द संस्कृत से ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिए गए हैं उन्हें 'तत्सम शब्द' कहा जाता है। यथा- पुरुष, महिला, माता, पिता, पुत्र, भौतिक, लौकिक, पत्र, पुष्प, वारि, जल, निर्झर आदि। अधिकांश विद्वान और भाषाविद् ये मानते हैं कि 'महिला' शब्द बंगला भाषा का है 'उपन्यास' की तरह। किंतु यह उनका भ्रम है। 'महिला' शब्द संस्कृत से ही बंगला में और फिर उससे हिंदी में लिया गया है। महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के पंचम अंक के 26वें श्लोक में अपने लोक विश्रुत चरित्र की दुहाई देने वाले राजा दुष्यंत को फटकारती हुई शकुंतला कहती है-

यूयमेव प्रमाणं जानीथ धर्मस्थितिं च लोकस्य।
लज्जा विनिर्जिता जानन्ति न किमपि महिला:?

क्या आप लोग (पुरुष वर्ग) ही धर्म की मर्यादा को जानते हैं और महिलाएँ कुछ नहीं जानतीं ? क्या आप लोगों को ही प्रमाण माना जाए, महिलाओं को नहीं ?

2. तद्भव शब्द :- 'तद्भव' शब्द का शाब्दिक अर्थ है- उससे अर्थात् मूलभाषा से उत्पन्न। जो शब्द मूलभाषा के शब्दों से परिवर्तित होकर आए हैं, उन्हें 'तद्भव शब्द' कहते हैं।

मूल भाषा संस्कृत के शब्द	परिवर्तित हिंदी शब्द
सूर्य	सूरज
संध्या	साँझ
अद्‌र्ध	आधा
प्रस्तर	पत्थर
शिर	सिर
मुख	मुँह
हस्त	हाथ
अक्षि	आँख
पाद	पैर
नासिका	नाक
कर्ण	कान
जिह्वा	जीभ

झटिति	झट से, (जल्दी से) आदि।
अँगुली	उँगली
अंगुष्ठ	अँगूठा
छिद्र	छेद
युवन्, युवा	जवान
वृद्धि	बाढ़, बढ़ना
वृद्ध	बुड्ढा, बूढ़ा
कर्म	काम
उज्ज्वल	उजला
चर्म	चाम, चमड़ा
उत्पत्ति	उपज

(इस शब्द का पूर्णत: अर्थादेश हो गया हैं यह 'पैदावार' (विशेषरूप से फसल की) के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा हैं किंतु 'उपजना' क्रिया पद पैदा होने का अर्थ ही दे रहा है- "उपजहि अनत, नत छवि लहहीं" (मानस))

हृदय	हिया, हिय (पिय हिय की सिय जाननिहारी)
प्रिय	पिय, पिया
मत्स्य	मच्छ, मछली
पत्र	पत्ता ('पत्र' तो चिट्ठी के अर्थ में रूढ़ हो गया है)
पर्ण	पान ('पर्ण' जहाँ पत्ता मात्र का बोधक है वहाँ 'पान' तांबूल का अर्थ देने लगा है)
पक्ष	पंख ('पक्ष का अर्थ पखवाडा और, तरफ, स्वपक्ष, विपक्ष, वामपक्ष
अंधकार	अँधेरा
अंगुलीयक, अंगुरीयक	अँगूठी
सर्प	साँप
मातुल	मामा
घट	घड़ा
भ्राता	भाई
भाभी, भातृजाया	भौजी, भौजाई
शूकर	सुअर
मातुली	मामी
महिष	भैंस (यह शब्द स्त्रीलिंग हो गया है और पुल्लिंग में 'भैंसा' बन गया है)
कुमार	कुँअर
गो, गौ	गाय
घोटक	घोड़ा
व्याघ्र	बाघ
हरिण	हिरन
प्रतिवेशी	पड़ोसी

(प्रतिवेशी शब्द बंगला में यथावत ग्रहण कर लिया गया है किंतु हिंदी में वह पड़ोसी बनकर ही प्रचलित है)

भागिनेय	भानजा
उद्वर्त्प	ऊभट (मार्ग से हटकर)
भागिनेया	भानजी
नप्ता	नाती
नप्त्री	नातिन
पौत्र	पोता
पौत्री	पोती

3. देशज शब्द :- 'देशज' शब्द का अर्थ है- देश में जन्मा। ऐसे शब्द जो क्षेत्रीय प्रभाव के कारण आवश्यकतानुसार गढ़े गए हैं, 'देशज शब्द' कहलाते हैं। ध्वनिवाचक शब्द भी देशज हैं। जैसे- फटाफट, फटफटी, खटपट, घटबढ़, गड़बड़, ताबड़तोड़, झटपट, टाँग, लोटा, लुटिया, ठेठ, ठाठ, पेट, पगड़ी, गिरमा (पशुओं को गले से बाँधने की रस्सी), तिबाव (जिस पर खड़े होकर भूसा उड़ाते थे और भूसे से अनाज अलग करते थे किंतु आज के मशीनीयुग में यह शब्द विलुप्त हो गया है, इसी तरह दाँए, खलिहान के बीचोंबीच लकड़ी का खंभा, जिसे मेढ़ी कहते थे, गाड़कर गेहूँ, चने आदि की फसल फैला देते थे और रस्सी के द्वारा कई बैलों को समानांतर जोतकर आसपास घुमाते थे यह क्रिया 'दाँय' कहलाती थी। पाँच-छह घंटे बाद पौधों के डंठल भूसा बन जाते थे और अनाज अलग हो जाता था। फिर उड़ाकर भूसा से दाना अलग करते थे।) लोग, लुगाई,

तरकारी, लुच्चा, छिटुआ (टोकना), चँगेरा (बहुत बड़ी डलिया), मड़का, डकार, खर्राटा, ऊँटपटाँग, भोंदू, टक्कर, धक्का, बकबक, डीलडौल, पों-पों, काँव-काँव, चवड़-चवड़ आदि।

4. देशी शब्द या देशी भाषाओं से लिए गए शब्द :- बंगला से हमने 'उपन्यास' शब्द लिया है। 'गल्प' भी बँगला का है जो 'कहानी' का अर्थ देता है। बीच में मध्यप्रदेश में शालेय पाठ्यक्रम में एक पुस्तक लगाई गई थी- 'गल्पद्वादशी'। किंतु गल्प शब्द हिंदी में प्रचलित नहीं हो पाया हाँ, 'गप्प' बनकर जरूर चलन में आ गया है। 'चालू' शब्द मराठी से लिया गया है। 'चहा' शब्द भी मराठी का है, जिसे देहात के लोग प्रयोग में लाते हैं इसी से मुहावरा बना है- 'जहाँ चाह है, वहाँ राह है' यहाँ 'चाह' का मूलत: अर्थ 'चाय' ही है क्योंकि चाय पिलाकर काम बनने या बनाने की राह आसान हो जाती है- "जहाँ चाय है, वहाँ राय है" मुहावरा इसी से बना है। किंतु आजकल लोग 'चाह' का अर्थ चाहना, प्रेम या तज्जन्य मतैक्य करने लगे हैं। इडली, डोसा, साँभर आदि शब्द तमिल से आए हैं। अँग्रेजी के स्टेंड और स्टेशन को मराठी में 'स्थानक' कहा जाता है- बस स्थानक, रेल स्थानक। पुलिस स्टेशन, पुलिस थाना- पोलिस स्थानक (मराठी)। आगे चलकर हिंदी में भी इस शब्द का प्रयोग होने लगेगा।

5. विदेशज या विदेशी शब्द :- हिंदी में अनेक शब्द विदेशी मूल से आए हैं और हिंदी में प्रचलित हो गए हैं। अन्य देश की भाषा से आए हुए या ग्रहण किए गए शब्द विदेशज शब्द कहलाते हैं। अधिकांश शब्दों को तो हमने यथावत् ले लिया है और कुछ को पर्याप्त परिवर्तन करके अपनी ध्वनियों में या व्याकरणिक नियमों में ढालकर ग्रहण किया है। यथा- आफीसर, अफसर, लैनटर्न से लालटेन, हॉस्पिटल से अस्पताल, कैप्टेन से कप्तान, आर्डरली से अर्दली आदि। डॉक्टर, स्टेशन, बस, ट्रेन, आदि शब्द हमने अंग्रेजी से यथावत् लिए तो हैं किंतु इन्हें पूर्णत: अपने व्याकरणिक नियमों में ढाल लिया है। इसलिए आज डॉक्टरों ने हड़ताल कर दी है, होगा- 'डॉक्टर्स' ने नहीं। नर्सें मरीजों की समुचित देखभाल करती हैं। ('नर्सेज' नहीं) छुट्टियों में बसों और ट्रेनों में बहुत भीड़ रहती है। (बसेज और ट्रेंस में नहीं)।

उसी तरह 'अरबी' से 'ख़त' को हमने नुक्ता हटाकर हिंदी में लिया है- 'खत'। उसका बहुवचन भी हिंदी में खुतूत नहीं 'खतों' ही होता है। उदाहरण- आपके मुझे कई खत मिले। ('खुतूत' नहीं)

उन खतों का मैंने तत्काल जबाव दे दिया था। (खुतूत का नहीं) तथा, हम अपने हकों की लड़ाई लड़ रहे हैं (यहाँ 'हक' का बहुवचन हकों होगा 'हुकूक' नहीं)

इसी तरह 'बासी' फारसी में सदैव स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है। 'प्रसाद' ने 'कामायनी' में इसे यथावत् ग्रहण किया है, अपने व्याकरणिक नियमों में नहीं ढाला है-

प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल।

जबकि यहाँ 'बासे' होना चाहिए था। बासा भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। उसी तरह 'आज की ताजा खबर' के स्थान पर 'आज की ताजी खबर' होना चाहिए। 'ताजी सब्जियाँ', 'ताजे फल', 'ताजी हवा' की तरह।

उक्त उदाहरणों में 'बासी' और 'ताजा' शब्द विशेषण हैं जो विशेष्य के अनुसार लिंग या वचन ग्रहण कर रहे हैं। आकर भाषा की तरह ये हिंदी में अव्यय या अविकारी (जिनमें कोई परिवर्तन नहीं होता) शब्द नहीं हैं। किंतु 'कागज' का बहुवचन 'कागजात', 'दस्तावेज' (डाक्यूमेंट्स) के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है।

हिंदी में अधिक प्रचलित विदेशज शब्द

अँग्रेजी शब्द - अपील, कोर्ट, मजिस्ट्रेट, जज, पुलिस, टैक्स, आर्डर, कलक्टर, वोट, पेंशन, कापी, रजिस्टर, पेंसिल, पैन, पिन, पेपर, लाइब्रेरी, स्कूल, कालेज, अस्पताल, डॉक्टर, कंपाउंडर, नर्स, आपरेशन, आपरेशन थियेटर, वार्ड, वार्ड ब्वॉय, मलेरिया, निमोनिया, कैंसर, हार्निया, डिप्थीरिया, कोट, पेंट, कालर, हैट, टाई, बुशर्ट, स्वेटर, बूट, सूट, ब्लाउज, कप, प्लेट, जग, लैंप, गैस, माचिस, केक, टोस्ट, टाफी, बिस्कुट, चाकलेट, जैम, जैली, ट्रेन, रेल, बस, स्टैंड, स्टेशन, कार, स्कूटर, मोटर, साइकिल, बैंक, इंजन, यूनियन, टिकिट, पार्सल, पोस्टकार्ड, मनीआर्डर, आफिस, इंस्पैक्टर, क्लर्क, गार्ड, पंप, प्रेस, रेडियो, मीटिंग, पाउडर, डीजल, पैट्रोल, पैट्रोलिंग (गश्त), सिलेंडर, सरेंडर, टेंशन, ब्लड प्रेसर, बी.पी., शुगर आदि।

अरबी शब्द– अजब, अजीब, अदालत, अक्ल, अल्लाह, आखिर, असर, आदमी, इनाम, इंसान, इंसानियत, ईमान, ईमानदार, ईमानदारी, इलाज, इजलात, इज्जत, उम्र, उज्र, उसूल, एहसान, एकतरफा, औरत, औसत, कब्र, कमाल, कयामत, कर्ज, किस्मत, कीमत, किताब, कुदरत, कुर्बान, कुर्बानी, कुर्सी, खत, खता, खिदमत, खयाल, खून, खूबी, जिस्म, जुलूस, जलसा, जवाब, जहाज, दुकान, जिक्र, तमाम, तकदीर, तकिया, तारीख, तरक्की, दवा, दावा, दिमाग, दुनिया, नतीजा, नहर, नकल, फकीर, फिक्र, फैसला, बहस, बाकी, मुहावरा, मदद, मजबूर, मुकदमा, मुश्किल, मौसम, मौलवी, मुसाफिर, यतीम, राय, लिफाफा, वारिस, लावारिस, शराब, हक, हजम, हाजिर, हिम्मत, हुक्म, हुजूर, हैजा, हौसला, हकीम, हलवाई इत्यादि।

फारसी शब्द– अफसोस, अदा, आबरू, आमदनी, कबूतर, कमीना, कुरती, किशमिश, खुराक, खरगोश, खामोश, खुश, खाक, खुद, खुदा, गरम, गिरफ्तार, गोश्त, गिर्द, गुलाब, गुबार, गर्द–गुवार, चाबुक, चरखा, चालाक, चश्मा, चेहरा, जलेबी, जहर, जुरमाना, जोर, जिंदगी, जागीर, जादू, तबाह, तमाशा, तनख्वाह, तीर, दीवार, देहात, दिल, दरबार, पलंग, पैमाना, पैदावार, बीमार, बहरा, बेहूदा, भला, भलाई, मुर्दा, मुर्गा, मत्रा, मुफ्त, याद, लेकिन, लगाम, शादी, शोर, दफ्तर, दिल, नापसंद, चपाक, पाजामा, पर्दा, पैदा, पुल, पेश, वारिस, बुखार, मकान, मजदूर, मोर्चा, याद, यार, रंग, राह, लगाम, लेकिन, वापिस, शादी, सितार, सरदार, साल, सरकार, हफ्ता, हजार आदि।

तुर्की शब्द– उर्दू, बहादुर, तुर्क, कुरता, कलमी, कैंची, काबू, चाकू, गलीचा, चकमक, चिक, तमगा, तमंचा, ताश, तोप, तोपची, दारोगा, बावर्ची, बेगम, चम्मच, मुचलका, लाश, सौगात, बीवी, चेचक, सुराग, बारूद, कुर्ता, नागा, कूच, कुमुक, कुर्क, खच्चर, सराय, गनीमत, चोगा, लफंगा, आदि।

पश्तो शब्द– पठान, मटरगश्ती, गुंडा, तड़ाक, खर्राटा, तहस–नहस, अखरोट, चखचख, पटाखा, डेरा, गटागट, गुलगपाड़ा, कलूटा, गड़बड़, हड़बड़ी, अकाल, बाड़, भड़ास आदि।

पुर्तगाली शब्द– अनन्नास, अचार, आलपिन, आया, कमीज, काजू, कमरा, कर्बल, कनस्तर, गमला, काज, काफी, गोभी, गिरजा, गोदाम, फीता, चाबी, तंबाकू, तौलिया, पपीता, नीलाभ, पादरी, बाहरी, बोतल, मिस्त्री, संतरा, परात, पिस्तौल, इस्पात आदि।

फ्रांसीसी या फ्रेंच शब्द– कारतूस, अँग्रेज, कूपन, कर्फ्यू, लाम, फ्रांस, फ्रांसीसी, बिगुल आदि।

चीनी शब्द– चामा, चीनी, चीकू, लीची आदि।

रूसी शब्द– रूबल, जार, मिग, सोवियत, स्पूतनिक आदि।

जापानी शब्द– रिक्शा, सायोनारा

संकर शब्द –दो भिन्न स्रोतों से आए या दो भिन्न भाषाओं के शब्दों से मिलकर बने शब्द 'संकर शब्द' कहलाते हैं यथा–

अश्रु (संस्कृत)	+ गैस (अंग्रेजी) =	अश्रुगैस
बम (अंग्रेजी)	+ वर्षा (संस्कृत) =	बमवर्षा
टिकिट (अंग्रेजी)	+ घर (हिंदी) =	टिकिटघर
गिरह (फारसी)	+ कट (अंग्रेजी) =	गिरहकट
छाया (संस्कृत)	+ दार (फारसी) =	छायादार
फल (संस्कृत)	+ दार (फारसी) =	फलदार
पान (हिंदी)	+ दान (फारसी) =	पानदान
मान (संस्कृत)	+ दान (फारसी) =	मानदान
रेल (अंग्रेजी)	+ गाड़ी (हिंदी) =	रेलगाड़ी
सील (अंग्रेजी)	+ बंद (हिंदी) =	सीलबंद

नव निर्मित शब्द :– आकाशवाणी, दूरदर्शन, संगणक (कंप्यूटर), गणक (कैलकुलेटर), दूरभाष (टेलीफोन), चलित दूरभाष (मोबाइल फोन), चलित न्यायालय (मोबाइल कोर्ट), रज्जु मार्ग (रोडवे), अनुभाग (सैक्शन), पर्यवेक्षक (सुपरवाइजर), लिपिक (क्लर्क), आरक्षक (कांस्टेबल), निरीक्षक (इंस्पैक्टर), अभियंता (इंजीनियर), पत्राचार (कॉरस्पांडेंस), प्रवर (सीनियर), अवर (जूनियर), मुद्रण (प्रिंटिंग), मुद्रणालय (प्रिंटिंग प्रेस), गुरूत्वाकर्षण (स्पैसिफिक ग्रेविटी), प्रक्षेपास्त्र (बम), हिंदी में आवश्यकतानुसार नित्य नए–नए शब्द गढ़े जा रहे हैं और हिंदी की शब्द संपदा में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हो रही है।

हिंदी के अन्यतम भाषाशिल्पी महाकवि तुलसीदास :– तुलसी ने महाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना की और वैंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुंबई और गीता प्रेस गोरखपुर ने हिंदी भाषियों के घर–घर में उसकी मुद्रित प्रतियाँ पहुँचाकर राम कथा के माध्यम से

धर्म का, नैतिकता का, लोकाचार ओर लोकव्यवहार का जन-जन को पाठ पढ़ाया है। हिंदी भाषी क्षेत्रों में घर-घर से होने वाले 'मानसगान' का मधुर स्वर गुँजरित होकर वातावरण को सरस और भक्तिमय बना देता है। हिंदी भाषियों का अधिकांश भाषाज्ञान तुलसी की देन है। तुलसी ने बड़ी कुशलता के साथ अपने 'रामचरितमानस' और अन्य ग्रंथों में प्रयुक्त अवधी और ब्रजभाषा में संस्कृत के ही नहीं, अरबी-फारसी के शब्दों को भी इस तरह पिरोया है कि वे उनमें पूरी तरह घुल-मिल गए हैं- दूध में शक्कर की तरह।

संस्कृत पदावली का प्रयोग :- तुलसी ने 'रामचरितमानस' के मंगलाचरणों की रचना तो संस्कृत श्लाकों में ही की है और अन्यत्र भी कई स्तुतियाँ संस्कृतवृत्तों में लिखी हैं यथा- 'अरण्यकांड' में मुनिवर अत्रि द्वारा की गई राम की स्तुति "नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलम्।। प्रफुल्ल कंज लोचनम्। मदादिदोष मोचनम्।। आदि बारह छंदों में है। इसी तरह भक्तप्रवर सुतीक्ष्ण मुनि की 'राम-स्तुति' के साढ़े ग्यारह पदों में से दूसरे "श्याम तामरस दाम शरीरम्, जटामुकुट परिधन मुनिचीरम" से लेकर आठवें पद "धर्म वर्म नर्मद गुण ग्राम:, संतत शं तनोतु मम राम:" तक सात पद संस्कृत में ही हैं किंतु इनमें कुछ शब्दों को छंद की मात्राओं के आग्रह से परिवर्तित कर दिया गया है यथा- 'परिधान' का 'परिधन' और 'नमामि' का 'नौमि'- "नौमि निरंतर श्री रघुवीरम्" तथा "नौमि राम उरवाहु विशालम्" तो त्रातु सदा नो भव खग बाज: में 'बाज' शब्द का संस्कृतीकरण कर दिया गया है। हुतात्मा जटायु ने अपने नश्वर शरीर को राम के सम्मुख त्यागकर श्रीहरि का चतुर्भुज रूप पाकर 'राम की स्तुति' जिन चार छंदों में की है उनमें बीच-बीच में संस्कृत की दीर्घ समासांत पदावली है यथा "पाथोदगात सरोजमुख राजीव आयत लोचनं", किंतु अगली पंक्ति "नित नौमि रामु कृपाल बाहु विसाल भव भय मोचनम्" में "नित्य को 'नित', 'नमामि' को 'नौमि', 'राम' को 'रामु', 'कृपालु' को 'कृपाल', 'विशाल' को 'बिसाल' करके इन शब्दों का अवधीकरण कर दिया गया है। इसी तरह दूसरे छंद की प्रथम पंक्ति में सभी सात शब्दों को संधि करके एक शब्द बना दिया गया है- "बलम प्रमेयम नादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं" किंतु द्वितीय पंक्ति में पुन: शब्दों का अवधीकरण कर दिया गया है- 'गोविंद' का 'गोबिंद', 'विज्ञान' का 'बिग्यान' क्योंकि अवधी में 'व' अक्षर प्रारंभ में तो आता ही नहीं 'व' का 'ब' हो जाता है और बीच में भी बिरल ही आता है, 'गोबिंद' में नहीं आया अन्यत्र "देखउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पदकंज" में 'बिरंचि' और 'सेब्य' में 'व' नहीं है किंतु 'सिव' में आया है। 'ज्ञ' (ज् + ञ) भी अवधी में नहीं होता- 'ग्य' ही होता है जैसे ऊपर के उदाहरण में 'त्रिग्यान' में अन्यत्र "मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी" तथा "पाएहुँ ग्यान, भगति नहिं तजहीं'' में। 'लंकाकांड' के दोहा क्रमांक 120 के बाद ब्रह्मा जी द्वारा की गई श्रीराम की स्तुति में भी अवधी का संस्कृतीकरण और संस्कृत का अवधीकरण स्पष्ट दिखाई देता है-

जन रंजन भंजन सोक (शोक) भयं। गत क्रोध सदा प्रभु बोधमयं।

अवतार उदार अपार गुनं (गुणम्)। महिभार विभंजन ग्यान (ज्ञान) घनं।।

अज ब्यापक (व्यापक) मेक मनादि सदा। करुनाकर (करुणाकर) राम नमामि मुदा।। आदि।

आगे इंद्रकृत रामस्तुति में भी कमोबेश ऐसी ही भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु गोस्वामी जी ने 'गुरु' शब्द को उकारांत से कई स्थानों पर अकारांत कर दिया है यथा- बंदऊँ गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि और बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।। में तो 'गुरु' शब्द आया है

किंतु "श्री गुर पद नख मनि गन जोती" और "गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा", "गुर समीप गवने सकुचि" आदि में 'गुरु' के स्थान पर 'गुर' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है जबकि अवधी में अकारान्त शब्दों को बिलावजह उकारांत कर दिया गया है- "वचनु न आब नयन भरे वारी" इसी तरह 'दयालु' शब्द को 'दयाल' और 'कृपालु' को 'कृपाल' कर दिया गया है- "दीनदयाल बिरिदु संभारी', "भए प्रगट कृपाला, दीनदयाला''। इसी तरह "तब तव बदन पैठिहहुँ आई'' का 'बदन' आगे "जोजन भरि तेहि बदनु पसारा'', "जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा'' में 'बदनु' हो गया है। 'सिर' का 'सिरू', 'मरम' का 'मरमु', 'सब' का 'सबु', 'विभीषण' का 'विभीषणु', 'राम' का 'रामु' कर दिया गया है। 'निरखना' क्रिया अवधी की है जिसका संस्कृतीकरण देखिए -

"अम्भोज नयन विसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे।" (उत्तरकांड 11 वें दोहे के बाद का छंद क्रमांक

2)। 'पदादपि' = पदात् (पद से) + अपि (भी) शुद्ध संस्कृत है- "ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखतहरी" तो आगे 'स्मरामहे' का अवधीकरण देखें- जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे।

उक्त पंक्ति में 'तव' (तुम्हारा) सर्वनाम शब्द युष्मद् का षष्ठी एकवचन यथावत् है उसमें 'व' का 'ब' नहीं किया गया है। अन्यत्र- ''तब तव बदन पैठिहऊँ आई" अवतै रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।" "नित नव मंगल कोसलपुरी"।

'सपदि' (शीघ्र, तुरंत) शब्द यथावत् ग्रहण किया गया है- "आयउ सपदि सिंधु एहि पारा" 'हेला' शब्द खेल, सरलता यहाँ खेल-खेल में, सरलता के अर्थ में देखें- जेहि बारीस बंधायउ हेला।

'उत्तरकांड' में वेदों और भगवान् शिव द्वारा की गई 'राम-स्तुतियाँ' भी संस्कृत-शब्द बहुला हैं, उनमें कई शब्द तो यथावत् हैं और कुछ का अवधीकरण कर लिया गया है यथा- अजमद्बैतमनुभवगम्य, भवदंघ्रि (भवद् + अंध्रि = आपके चरण) पदादपि, चारूतरं, निषंगवर भजे, जपामि, नमामि आदि हैं तो दच्छ (दक्ष), रच्छ (रक्ष), पर्न (पर्ण), सदगुनाकर (सद्गुणाकर), करुनायतन (करुणायतन), जे (ये), सरेन (शरेण), प्रनमामि (प्रणमामि), बिलोकय (विलोकय) भी हैं।आगे उत्तरकांड में काकभुशुंडि के शाप शमन के लिए उनके गुरुदेव द्वारा की गई शिव स्तुति 'रुद्राष्टक' तो पूर्णत: संस्कृतमय ही है।

गोस्वामी जी ने अनेक स्थानों पर संस्कृत शब्दों और शब्द समूहों का निर्बाध (धड़ल्ले से) प्रयोग किया है- इदमित्थं कहि जात न सोई, 'नेति-नेति' नित वेद निरूपा, 'सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा' (सोऽहमस्मि) आदि।

अप्रचलित शब्द प्रयोग :- गोस्वामी जी ने 'रामचरितमानस' में ऐसे कई संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है, जो प्राय: हिंदी में अप्रचलित हैं यथा- 'वन' शब्द के तीन अर्थ होते हैं- "वने सलिल-कानने" (अमरकोष)। जल (सलिल) और जंगल (कानन) 'अटव्यरण्यं (अटवी + अरण्य) गहनं काननं वनम्'' (अमरकोष) तीसरा समूह। 'जय रघुवंस वनज वन भानू'' यहाँ 'वनज' का अर्थ 'जलज' है और 'वन' का अर्थ समूह। जब रावण ने सुना कि राम ने समुद्र पर पुल (सेतु) बना लिया है तो घबराहट में उसके दसों मुखों से एकसाथ समुद्र के दस नाम निकल पड़े-

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि उदधि सिन्धु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति जलधि पयोधि नदीस।।

यहाँ 'बन निधि' (वन निधि) = जलनिधि होता है।

'कंपति' में कम् का अर्थ 'जल' होता है। इसी से कंज = कमल शब्द बनता है, जो हिंदी में प्रचलित है- "नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम्" इस संदर्भ में एक मजेदार श्लोक को उद्धृत करने के लोभ का मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ, वह श्लोक है-

केशवं पतितं दृष्ट्वा द्रोणा: हर्षमुपागता:।
रुदन्ति कौरवास्तत्र हा केशव हा केशव कथं गत:?

केशव को गिरा देखकर द्रोण प्रसन्न हो गए और कौरव यह कहकर रोने लगे कि हाय केशव कैसे गया, हाय ! केशव कैसे गया ?

यहाँ 'केशवं' का अर्थ कृष्ण को नहीं, के = जले और शवं = मुर्दा होता है। 'द्रोणा:' अर्थ बहुत से द्रोणाचार्य नहीं (जो कि सही नहीं) अपितु 'कौए' होता है और 'कौरवा:' दुर्योधन, दु:शासन आदि सौ कौरवों का नहीं अपितु 'सियारों' या 'गीदड़ों' का अर्थ देता है।

'जीवन' = जिंदगी ही नहीं 'जल' का अर्थ भी देता है-

पय: कीलाल ममृतं जीवनं भुवनं वनम्।।
{पय: (पय्स्) कीलाल, अमृत, जीवन, भुवन, वन} पय: से 'पयोधि' समुद्र बना है।

"होइ जलद जग जीवन दाता" (यहाँ जीवन के दोनों अर्थ हैं- जल और जीवन।

महाकवि घनानंद ने भी 'जीवन' को दोनों अर्थों में लिया है- "घन आनंद जीवनदायक है।"

"ताहि निपाति ताहि सन बाजा" में 'निपाति' = निपात्य (मारकर)- अव्ययभूत कृदंत 'ल्यय्' प्रत्यय। "अवनिप अकनि राम पगुधारे" में 'अकनि' = 'आकर्ण्य' = सुनकर अव्यय भूत कृदन्त है। 'ल्यय्' प्रत्यय। "सिव अनवद्य अकाम अभोगी" में अनवद्य = दोषरहित होता है। "होइ घुणाक्षर (घुनाच्छर) न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक'' में "घुणाक्षर न्याय'' संस्कृत की कहावत (लोकोक्ति) है। जैसे घुनों द्वारा लकड़ी को काटते-काटते यदि कुछ अक्षर बन जाते हैं तो इसे संयोग ही कहेंगे,

घुनों को कोई साक्षर नहीं कहेगा। जहाँ संयोग से या अकस्मात् कोई काम हो जाए, जिसे हिंदी में "अंधे के हाथ बटेर लगना'' कहेंगे, वहाँ इस न्याय वाक्य का प्रयोग होता है। इसी तरह 'प्रत्यूह' = विघ्न- ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। क्षत्रबन्धु (छत्रबंधु) = अधम क्षत्रिय- छत्रबंधु तैं विप्र बोलाई घालै लिए सहित समुदाई।।

मनाक् (मनाग) = थोड़ी भी, जरा भी- अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा। हेला = खेल-खेल में, सरलता से- जेहि बारीस बँधायउ हेला। बहुब्रीहि समास से बने शब्द :- भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्व बास प्रगटे भगवाना।। में 'विश्ववास'- विश्व का हो वास जिसमें वह- विश्वस्य वासः यस्मिन् सः। विराट रूप परमात्मा, जिनमें समस्त ब्रह्मांड अवस्थित है। पतिदेवतासुतीय मँह मातु प्रथम तव रेख। में पतिदेवता- पति हो देवता जिसका वह (पतिर्देवता यस्याः सा) = पतिव्रता, पतिपरायणा 'राय'- शब्द का प्रयोग 'राजा' के अर्थ में ही सर्वत्र हुआ है- राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा तथा रानी राय कीन्ह भल नाहीं'' किंतु भई मुदित सब ग्राम बधूटीं। रंकन्ह रायरासि जनु लूटीं।। 'राय' वैदिक शब्द है, सामण ने अपने भाष्य में लिखा है- रायम् = धनम्। 'पतंग' के तीन अर्थ होते है-1. पतिंगा, शलभ 2. गुड़ी या कन कौआ (उडाने वाली) 3. सूर्य। "जरहिं पतंग मोहवस" में पतंग का अर्थ शलभ या पतिंगा है। "उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग में पतंग का अर्थ सूर्य है। 'आराम' = बगीचा, उद्यान- परम रम्य आराम यह जो रामहि सुख देत। आरामः स्याद् उपवनं कृत्रिमं वनमेवच (अमर कोश)

हंस- ''हंस बंस राकेस कलंक" में हंस = सूर्य हंसगमनि 'तुम्ह नहिं बनजोगू' में हंस = मराल (पक्षि विशेष) "काक पिकउ बक होहि मराला" पायक (पायिक) =पदाति या पैदल सैनिक - ''जाके हनुमान से पायक" तुक मिलाने या अवधीकरण करने के लिए तुलसी ने 'पायिक' का 'पायक' कर दिया है।

"छतज नयन उर बाहु विसाला" में क्षतज = घाव से उत्पन्न =रक्त या रुधिर होता है। किंतु यहाँ लक्षणा शक्ति से उसका अर्थ होगा- रक्तिम, रतनारे।

तुलसी की भाषा विषयक उदार दृष्टि :- तुलसी की भाषा में संस्कृत के तत्सम, तद्भव, देशी तथा देशज शब्द तो बहुलता से हैं ही उन्होंने अन्य स्रोतों से भी बड़ी उदारता से शब्द ग्रहण करके अपनी ही नहीं हिंदी भाषा की ग्राह्यता में उल्लेखनीय अभिवृद्धि की है। वीरगाथा काल की 'डिंगल भाषा' भी उन्होंने वीर रस की चर्वणा में प्रयुक्त की है- खप्परिन्ह खग्गा अलुज्झि, जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं। जम्बुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं।। (मानस) तथा डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर। ब्याल वधिर तेहि काल विकल दिगपाल चराचर।। दिग्गयंद लरखरत परत दासकंधु मुख्खभर - यहाँ द्वित्व युक्त शब्द यथा पब्बै (पर्वत) दिग्गयंद, मुख्खभर (मुँह भर = औंधे मुँह) ही डिंगल से प्रभावित नहीं है, उस काल का छंद छप्पय भी गोस्वामी जी ने प्रयुक्त किया है।

अरबी-फारसी के शब्द :- "तेऊ गरीब नेवाज नेवाजे', "सत्रु सु साहेब सील सराहै, कियो अंगीकार ऐसे बड़े 'दगाबाज' को, समुझत मनु मुदित गुलाम को, मरालु होत खूसरो भयो न निहालु को, उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए आदि सैकड़ों शब्द मिलते हैं।

लोकोक्तियाँ (कहावतें) और मुहावरे :- गोस्वामी जी ने 'रामचरितमानस', 'कवितावली', 'गीतावली' और 'दोहावली' आदि ग्रंथों में सैकड़ों लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग करके हिंदी के भंडार की अभिवृद्धि की है। हिंदीभाषी लोग बात-बात में इन मुहावरों और लोकोक्तियों का उपयोग करके अपनी बात को प्रामाणिक और प्रभावशाली बनाने का प्रयास करते हैं। यथा-

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं, मिलत एक दारून दुख देहीं।

गुन अवगुन जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेही सोइ।

जा कर मन रम जाहि सन, तेहि-तेही सन काम।

संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।

साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी।

जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरू माता।।

जद्यपि जग दारून दुख नाना। सबतें कठिन जाति अबमाना।।

अस नहिं कोउ जनमा जग माँही। प्रभुता पाइ जाहि मद नाही।।

का बरसा सब कृषि सुखाने। समय चुकें पुनि का पछिताने।।

बाँझ कि जान प्रसव की पीरा?

मुँए करइ का सुधा तड़ागा?

बररै बालक एक सुभाऊ। इनहिं न संत विदूषहिं काऊ।।

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।।

लैवे को एकन दैवे को दोऊ आदि सैकड़ों उक्तियाँ जन-जन के जिह्वाग्र पर नाचती हैं।

– महाराज बाग, भैरवगंज सिवनी, जिला-सिवनी (म. प्र.) 480661

❑❑❑

भाषा का लोक स्वरूप- हिंदी की लोकोक्तियाँ तथा कन्नड के गादेगलु

डॉ. मैथिली प्र. राव

सामाजिक जीवन के निर्वहण का मुख्य साधन है भाषा। संवहन एवं प्रसारण के संदर्भ में भी यह संस्कृति के साथ अनेक जटिल स्वरूपों में संबद्ध है। भाषा वो सशक्त माध्यम है जो सांस्कृतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। एक समुदाय के सदस्य, एक भाषा के माध्यम से, न सिर्फ अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं वरन् भाषा के माध्यम से अनुभवों को निरूपित भी करते हैं। अभिव्यक्ति के लिए जो माध्यम चुना जाता है वह भी उस संप्रेषण को एक विशेष अर्थ प्रदान करता है। एक समय में यह मात्र आमने-सामने हुआ करता था, फिर टेलिफोन आया और अब मोबाईल तथा ईमेल ने इस संप्रेषण तथा अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को नया स्वरूप प्रदान किया है। विशेषत: वक्ता ध्वनि, हाव-भाव, बोलने की रीति, शाब्दिक एवं शारीरिक - अनेक भंगिमाओं से भी संप्रेषित करता है जो इस प्रक्रिया को जटिल बना देता है। वक्ता अपने-आप को, तथा दूसरों को, भाषा के प्रयोग के माध्यम से पहचानता है; इसी भाषा के सहारे वो अपने सामाजिक अस्तित्व को भी स्थापित / निर्धारित करता है । लिखित भाषा का भी निरूपण तथा सामूहीकरण संस्कृति के माध्यम से ही होता है। किसके लिए, किस संदर्भ में, कैसे लिखा जाए आदि इन्हीं सांस्कृतिक परंपराओं द्वारा निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार से भाषा का स्वरूप, बातचीत तथा व्याख्याएँ, इस अदृश्य पद्धति का अंग हैं जो उस भाषा का उपयोग करने वालों पर, संस्कृति द्वारा, आरोपित होता है। इस दृष्टिकोण से भाषा चिह्नों की एक व्यवस्था है जिसमें सांस्कृतिक मूल्य निहित हैं। अत: मानव जीवन तथा सामाजिक अर्थ में संस्कृति तथा भाषा अन्योन्याश्रित हैं ।

लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति का एक मुख्य साधन है भाषा। यद्यपि अभिव्यक्ति की भाषाएँ अलग-अलग हैं, विभिन्न क्षेत्रों के लोक साहित्य कीं सामग्री तथा शिल्प में अनेक समानताएँ परिलक्षित हैं। टायलर एवं लैंग जैसे सांस्कृतिक विकासवादियों के अनुसार मानव-संस्कृति में बहुत-सी बातें समानांतर रूप में विकसित होती रही हैं। मानव प्रकृति में एक सार्वभौमिकता होती है जिसे देश या काल की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। अत: इसका निष्कर्ष यह है कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवेश के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया समान होती है। इस आलेख में हिंदी की लोकोक्तियाँ तथा कन्नड के गादेगलु के अध्ययन के माध्यम से इस तथ्य को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

लोकोक्ति का अर्थ है “लोक या समाज में प्रचलित उक्ति” । कन्नड में इसे ‘गादे’ कहते हैं । संस्कृत की ‘गाथा’ से यह शब्द प्राकृत में ‘गाहे’ बना और कन्नड में आकर ‘गादे’ बन गया। अंग्रेजी में प्रयुक्त ‘प्रोवर्ब’ लैटिन के ‘प्रोवर्बिअम’ का एक सरल परंतु ठोस वाक्य है जो लोकप्रिय है तथा दोहराया जाता है तथा सामान्य ज्ञान या अनुभव द्वारा प्राप्त एक सत्य को प्रकट करता है। वे प्रतीकात्मक तथा रूपकात्मक भी होते हैं। आक्सफोर्ड कोंसाइस डिक्शनरी के अनुसार “सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त संक्षिप्त एवं सारपूर्ण उक्ति को लोकोक्ति कहते हैं। चेंबर्स डिक्शनरी कहती है कि

लोकोक्ति वह संक्षिप्त और लोकप्रिय वाक्य है जो एक कल्पित सत्य या नैतिक शिक्षा को अभिव्यक्त करती है"। सर्वेंटीज ने कहा है कि "ये वे छोटे वाक्य हैं जिनमें लंबे अनुभव का सार हो"। जी. ए. केल्सो ने कहा है कि, "विवेकशीलता, संवेदनशीलता, तिक्तता तथा जनप्रियता इनकी विशेषता है।" लोकोक्ति यदि तत्सम स्वरूप है तो कहावत इसका तद्भव रूप, जो मुख्यत: ग्रामीण परिवेश को सूचित करता है। होमर के अनुसार ये वो "शब्द हैं जिनके पंख होते हैं"। समाज एवं एक समुदाय की परंपराओं तथा विश्वासों को यदि कोई समझना चाहता हो तो ये लोकोक्तियाँ उसका एक सशक्त माध्यम बन सकती हैं। यद्यपि सभी संस्कृतियों के पास लोकोक्तियों की अपनी धरोहर है, तथापि विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में डॉ. बासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति प्राकृत के 'कहप' शब्द से हुई है जिसमें 'त्र' प्रत्यय को जोडकर भाववाचक संज्ञा बना दिया गया ।

लोकोक्तियों की ऐतिहासिकता की खोज करना बहुत कठिन है लेकिन इस बात में कोई संदेह नहीं कि अनादि काल से इनका अस्तित्व स्पष्ट है। यहाँ तक कि, मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही इनका अस्तित्व माना जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सार्वभौमिकता एवं विविधता इनके आधार-स्तंभ हैं। विश्व की अनेक संस्कृतियों की जड़ों में ही समाहित इन लोकोक्तियों का प्रयोग अनेक कालों में, अनेक व्यक्तियों द्वारा, किया गया है। इनका निरंतर विकास भी स्पष्ट परिलक्षित है।

ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से, सीजर तबर्सिया के अनुसार इनका अस्तित्व ईसा पूर्व 3-4 शताब्दी के मिस्र में भी देखा जा सकता है। बाईबल में भी दो प्रमुख एवं महत्वपूर्ण पुस्तकें समर्पित हैं- प्रोवर्ब्स एवं एक्कलेसिअस्टेस जिनमें मुख्यत: अपने जीवन को व्यावहारिक तथा बुद्धिमत्तापूर्वक जीवन के निर्वहण के लिए नीति वचन बताए गए हैं। विश्व में सांस्कृतिक केंद्र के रूप में प्रस्तुत, भारत के पौराणिक एवं दार्शनिक साहित्य में, ईसा पूर्व 1000 - 600 के लगभग, इस प्रकार के सूत्र मिलते हैं। यूनान में भी विशेषत: कहावतों की परंपरा रही है जिन्हें होमर, सुकरात, पैथागोरस, प्लेटो, अरस्तु जैसे लेखकों ने प्रयोग किया है। लातिन में रोट्टरडेम ने प्राचीन लातिन से लगभग 800 नीति वाक्यों का एक संकलन प्रस्तुत किया। अंग्रेजी में लोकोक्तियों का प्रथम संकलन सन् 1546 ई. में जोन हेवुड द्वारा लिखित एक पुस्तक से माना जाता है जिसका शीर्षक है 'प्रोवर्ब्स इन इंग्लिश टंग'। स्पेन में सन् 1552 ई. तथा सन् 1555 ई. में दो किताबें बनीं। 18वीं शताब्दी में तर्क को अधिक महत्व प्राप्त होने के कारण इनका प्रयोग तथा विकास अवरुद्ध हो गया परंतु 19वीं शताब्दी में, साहित्यिक अभिव्यक्तियों में आधिक्य के कारण कई संकलन तथा सैद्धांतिक कार्य हुए। 20वीं शताब्दी में संस्कृति एवं भाषा के प्रति विशेष मोह के कारण लोकोक्तियों के प्रति जागृति अधिक हुई तथा इन पर व्यवस्थित रूप में कार्य तथा शोध भी शुरु हुआ। लार्ड जान रसल, जर्मन संकलनकर्ता इसालियन, एस. जी. चांपियन, डॉ. रामेगौड, टी. वी. वेंकटरमणय्य, ए. के. रामानुजम कुछ ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने इस विषय पर बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है।

विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सभी परिभाषाओं तथा लोकोक्तियों के विन्यास तथा प्रकृति पर विचार करें तो इसके विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है -

1. वे संक्षिप्त होते हैं ।
2. बोलचाल में आने वाले वाक्य हैं जो चमत्कार पैदा करते हैं।
3. अनुभव या तथ्य पर आधारित जीवन सत्य होते हैं।
4. इनमें कुछ उपदेश या नैतिक शिक्षा अवश्य होती है।
5. इनमें अधिकांशत: अभिधेयार्थ कम और लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ अधिक होता है।
6. ये अपने आप में पूर्ण वाक्य भी हो सकते हैं।

लोकोक्तियों के सार्वभौमिक होने का तात्पर्य यह है कि ये सभी संस्कृतियों में विद्यमान हैं तथा सभी समुदायों की भाषा का एक अभिन्न अंग हैं। लोक साहित्य की झलक दिखाने वाली ये लोकोक्तियाँ, एक समुदाय की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक मूल्यों एवं परंपराओं को अभिव्यक्त करती हैं। लोगों के व्यवहार तथा विवेक को हास्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। लोकोक्तियाँ लोगों की संस्कृति एवं भाषा, उनके विवेक एवं कौशल की अभिन्न धरोहर हैं - मानव भाषा की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। लोकोक्तियाँ जीवन के विविध पक्षों की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति हैं, सामाजिक

भाषा ISSN 0523-1418

अनुभव, दृष्टिकोण, कलात्मक मनोभावों की मौलिकता, बौद्धिक, नैतिक तथा सौंदर्यात्मक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

प्रस्तुत प्रपत्र में कन्नड तथा हिंदी की लोकोक्तियों पर एक चर्चा है। सामाजिक-राजनैतिक कारणों से, इनकी अभिव्यक्ति में अंतर है जिससे इन भौगोलिक क्षेत्रों की सामाजिक आकृति तथा लोगों की जीवन शैलीयों पर चिंतन प्रस्तुत करने का प्रयास है, जो लगभग समान हैं।

● गद्य-पद्य शैली में लिखी जाने वाली लोकोक्तियाँ या गादे में छंदबद्धता, प्रासबद्धता, आलंकारिक अभिव्यक्ति सामान्यत: परिलक्षित होते हैं। यद्यपि आलंकारिक प्रयोग अनायास ही हो जाता है, प्राय: सरलता से याद रखने के दृष्टिकोण से इन्हें प्रासबद्ध बनाया जाता है -

जोरु न जांता अल्लाह मियां से नाता, ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों भारी हो, चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाय। उसी प्रकार कन्नड में : अंगरक्के हसिइल्ल सोसेगे बिसिइल्ल, आगुववरेगे अगनिगुंट, आगायते बगसेगुंट कण्णु काणुवतनक, बेन्नु बागुवतनक

काव्यांशों की भांति दिखने वाली ये लोकोक्तियाँतथा गादे के सभी तत्वों में एक पूर्णता दिखाई देती है। यद्यपि इनमें अनेक अलंकार, जैसे उत्प्रेक्षा, उपमा, अतिशयोक्ति आदि का प्रयोग स्पष्ट दिखाई देता है, तथापि यह अनिवार्य नहीं कि प्रत्येक लोकोक्ति या गादे में ये पाए जाएं। इनकी भाषा में रूपक एवं बिंबों के आधिक्य के कारण ये संकेतार्थक होते हैं। इस तथ्य का प्रमाण आगे आने वाले अंशों में स्पष्ट होगा।

● डिसरेली का कहना है कि लोकोक्तियाँया गादे प्राचीनतम पुस्तकों से भी प्राचीन हैं। मानव सभ्यता में लेखन-कला का प्रारंभ भी नहीं हुआ था जब सामान्य जन-जीवन में इनका प्रयोग होता था। पूर्वजों के अनुभवों के आधार पर रचित ये लोकोक्तियाँ कल्पना के उपमान, अनेक दृष्टांतों को लिए हास्य-व्यंग्य शैली में प्रयुक्त किए गए वाक्य हैं। अनेक लोकोक्तियाँ किसानों, कारीगरों तथा ग्रामीण जनता और अन्य अशिक्षित समुदायों के अनुभवों पर आधारित हैं। इसलिए उनके व्यवहार क्षेत्र से जुड़े तत्व इनमें आ जाते हैं। अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत, कोल्हू का बैल, अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे, अंधा सिपाही कानी घोड़ी, विधि ने खूब मिलाई जोड़ी, अधजल गगरी छलकत जाए, सौ सुनार की एक लोहार की, उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान, बेलि यद्दु होल मेयतु/बाड़ ही खेत को चर जाए, कुंबारनिगे वरुष, दोण्णेगे निमिष/कुम्हार के लिए एक वर्ष तो डंडे के लिए एक क्षण; अगसन बडिवार वेल्ल हेररबट्टे मेले/धोबी की पिटाई, पहनने वाले के कपडों की; अगसर कत्ते कोंडु होगि, डोंबरिगे त्याग हाकिद हागे / धोबी के गधे को ले जाकर मदारी को दे देना एत्तु / एरिगेल्तु, कोणनीरिगेलितु (बैल पानी से बाहर आया तो भैंस पानी के अंदर गई; एत्तिगे ज्वर बंदरे एम्मेगे बरे हाकिदरंते / बैल को आया बुखार तो भैंस पर लगाया डाम (अर्थात् बुखार किसी को तो इलाज किसी और का) अरमनेय मुंदिरबेडी, कुदरेय हिंदिरबेडी / महल के सामने मत रहो, घोड़े के पीछे मत रहो, अरसन कुदेरे लायदल्ले मुप्पायितु/ राजा का घोड़ा घुड़साल में ही बुड्ढा हो गया। परंतु स्पष्ट है कि मात्र उनके या कार्य का चित्रण न होकर उसमें भी प्रतीकात्मकता के माध्यम से मानव समुदाय के लिए एक संदेश छुपा हुआ है।

● लोकोक्तिकारों या गादे की रचना करने वालों ने समाज में व्याप्त अन्याय, अधर्म, सामाजिक कुरीतियाँ तथा असमानताएँ जैसे ऊँच-नीच, हेर-फेर आदि सभी को बड़े साहस के साथ प्रस्तुत किया है । इसका मुख्य उद्देश्य प्राय: इतना ही है कि एक संस्कारयुक्त, स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके। उदाहरणार्थ - अमीरी गरीबी पर व्यंग्य कसते हुए कन्नड में एक गादे है - बल्लिदरु माडिदरे व्यवहार, बडवरु माडिदरे व्यभिचार (सशक्त करे तो व्यवहार गरीब करे तो व्यभिचार) जिसके समानांतर में हिंदी में एक लोकोक्ति है गरीब तेरे तीन नाम, झूठा पाजी बेईमान, चोर उचक्का चौधरी, कुटनी भई प्रधान; जुत-जुत मरें बैलवा, बैठे खाए तुरंग (परिश्रम करे कोई और लाभ उठाए कोई और विशेषत: गरीब तथा पूंजीपति के संदर्भ में) कमजोर की जोरू सबकी सरहज, गरीब की जोरू सबकी भाभी, गरीब की लुगाई, सबकी भौजाई, आचार्यरिगे मंत्रक्किंता उगुलुहेच्चु/ आचार्य के मुँह में मंत्र से ज्यादा उनकी थूक है में आडोदु मडि उंबोदु मैलिगे / बोलते हैं शुद्धि की बातें, खाते हैं अपवित्र जिसका इशारा उन लोगों की ओर है जो मात्र दिखावे के लिए शुद्धि करते हैं परंतु वास्तव में / हृदय से अशुद्ध हैं।

● प्राणियों, जीव-जंतुओं के दृष्टांतों के द्वारा लोकोक्तियाँ मनुष्य की विवेकशक्ति को जागृत करने का प्रयास करती हैं -

गिरगिट की तरह रंग बदलना / गोसुंबे तरह बण्णा बदलाएसोदु,

बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद / कत्ते बल्लदे कस्तूरी घमाना (गधा क्या जाने कस्तूरी की सुगंध);

खोदा पहाड़ निकली चुहिया / बेट्ट अगेदरु इली हिडिदरू;

भैंस के आगे बीन बजाना / कोणन मुंदे किंदरी बारसोदु, घोडा घास से यारी करे तो खाए क्या?;

बेक्किगे चेल्लाट इलिगे प्राण संकट (बिल्ली के लिए जो है खेल चूहे के लिए है प्राणों का भय)

बेक्कु कण्मुच्चि हालु कुडिदरे जगत्तिगे गोत्तागल्वा? (बिल्ली आँख बंद कर दूध पीए तो क्या दुनिया को पता नहीं चलेगा?) नदी में रहकर मगरमच्छ से बैर, भेड़ जहाँ जाएगी वहीं मुँडेगी, अंधे के हाथ बटेर, जिसकी बंदरी वही नचावे और नचावे तो काटन धावे, जिसकी लाठी उसकी भैंस, जल की मछली जल ही में भली, हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और, ऊँट घोड़े बहे जाएँ गधा कहे कितना पानी, ऐसे बूढ़े बैल को कौन बाँध भुस देय आदि तथा उसी प्रकार कन्नड में आने मेट्टिद्दे संदु, सेट्टि कट्टिद्दे पट्टण / हाथी जहाँ चले वही रास्ता, बनिया जहाँ रहे वही शहर, आनेयंथदू मुग्गिरिस्तदे / हाथी भी मुँह के बल गिर सकता है आदि प्राणियों पर आधारित उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लोकोक्तिकारों ने अपने ही परिसर को ज्ञान का आधार बनाया । इससे यह भी बोध हो जाता है के उनको मानव-प्रकृति का गंभीर ज्ञान है। प्राणियों के दृष्टांतों द्वारा मनुष्य में अपनी कमियों का बोध कराते हुए उन्हें परिवर्तित होने की सीख देने का प्रयास स्पष्ट होता है। प्राणियों में कुत्ता, बिल्ली, बैल, कौआ, गधा, बंदर, चिड़िया, मुर्गा, छछुंदर, हंस, गिरगिट, मगरमच्छ, मक्खी आदि प्रत्येक प्राणि का लोकोक्तियों में प्रयोग उनके चरित्र की किसी विशेष प्रवृत्ति के माध्यम से मानव सहज स्वभाव का उद्घाटन करने की चेष्टा करती हैं ये कहावतें।

● किसी भी संस्कृति के लोकसाहित्य की दो परतें होतीं हैं - पहली, बाह्य प्रयोगसिद्ध, स्पष्ट तथा सुलभ और दूसरी अतीन्द्रिय, गहरा एवं जो उनके लिए उपलब्ध जो इसके लिए जीते हैं तथा इसमें उनकी मान्यताएँ, मूल्य और विवेक शामिल हों। जब भी इनका प्रयोग, किसी भी रूप में होता है, तब इनमें निहित ज्ञान, विवेक तथा अनुभव संचारित होते हैं। यह स्पष्ट है कि समुदाय की अवधारणा को निश्चित तथा दृढ़ करने के लिए लोक साहित्य का प्रयोग किया जाता है जिससे कि वह समुदाय अपने लिए एक सीमा भी निर्धारित कर देता है। परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि समय तथा अन्य बाह्य प्रभावों के कारण इनमें परिवर्तन नहीं आते। बल्कि लोक साहित्य इस बाह्य, नवीन प्रभावों को वो उनका रूपांतरण कर अपने भीतर समाहित कर लेता है। इस प्रकार से अन्य संस्कृतियों के संपर्क में आने पर नई लोकोक्तियों / गादे भी रचित हो जातीं हैं । यथा - ईद का चाँद होना, जुम्मा-जुम्मा आठ दिन की पैदाइश, अक्लमंद के लिए इशारा काफी है, गए थे रोजा छुड़ाने नमाज गले पड़ी, सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली खेल खिलाड़ी का, पैसा मदारी का, गवाह चुस्त मुद्दई सुस्त आदि तथा इसी प्रकार कन्नड में - इमाम्गू गोक्लाष्टमीगू येन संबंध (इमाम तथा गोकुलाष्टमी में क्या संबंध है); सहाया माडोक्के होगी मसीदीने तलेगे बीलिस्कोंडनंते (मदद करने गए और पूरी मस्जिद को अपने सर पर गिरा लिया)

सांस्कृतिक प्रभावों में धार्मिक विश्वास तथा भाषागत विशेषताएँ शामिल हैं जो इन कहावतों में स्पष्ट परिलक्षित हैं।

● नीतिपरक विचारों की काव्यमय अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से लोकोक्तियाँ / गादे मानव प्रकृति को सुदृढ़ बनने की चेष्टा से एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना करते हैं। यथा -

अब पछताए का होत जब चिड़िया चुग गई खेत /मिंचिहोद कालक्के चिंतिसि फलविल्ल (जो समय बीत गया उसकी चिंता करने का कोई फायदा नहीं), अपनी फूटी न देखे दूसरे की फूली निहारे / तन्न बेन्नु तनगे काणिसदु अन्नोद अरितव्ने जाण (अपनी पीठ किसी को दिखाई नहीं देती, जो यह समझ ले वही बुद्धिमान); अडिकेगे होद मान आने कोट्टरु बरल्ला / जो इज्जत सुपारी के लिए चली जाए उसे हाथी देने पर भी नहीं मिलेगी, हेण्णिगे हटविरबारदु, गंडिगे / स्त्री में जिद नहीं होनी चाहिए पुरुष में बुरी आदत नहीं होनी चाहिए; मातुबेल्लि, मौन बंगार / वचन चांदी तो मौन सोना है;

भाषा ISSN 0523-1418

मातु मनि मुरितु, तूतु ओले केडिसितु / बात से घर टूटा और छेद से चूल्हा बिगड़ा; माडोदेल्ला अनाचारा, मने मुंदे बृंदावन / काम हो गलत घर के सामने बृंदावन अर्थात् तुलसी का पौधा जिसका हिंदी में समानांतर सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को गई हो सकता है; तुम्बिद कोड तुलुकुवुदिल्ला / जो घड़ा पूरा भरा हो वो छलकता नहीं) अर्थात् अधजल गगरी छलकत जाए जो उसी अर्थ को एक दूसरी तरह से प्रेरित करता है; जाणनिगे मातिन पेट्टु, दड्डनिगे दोण्णे पेट्टु / समझदार के लिए बात काफी मूर्ख के लिए चोट / समझदार के लिए इशारा काफी है; बेल्लगिरोदल्ला हाल्ला, होलेयोदल्ला चिन्नाअल्ला/ जो भी सफेद दिखता है वो दूध नहीं होता, चमकने वाली सभी चीजें सोना नहीं होतीं, बायल्ले बसप्पा होट्टेयल्लि विषप्पा (मुँह में भगवान का नाम पेट में विष) बायल्लि बेल्ल करुलु कत्तरि मुँह में गुड़, पेट में कैंची - इन दोनों कहावतों के लिए हिंदी में तात्पर्य मुँह में राम बगल में छुरी हो सकता है।

● लोकोक्तियों / गादे में जनजीवन से जुड़े अनेक विश्वास हैं, जो कभी-कभी अंधविश्वास भी हो जाते हैं। इन संक्षिप्त वाक्यों में किसी भी समाज-विशेष की परंपराओं को भी देखा जा सकता है । जैसे : सीटिगालु इद्दमने हालु दाटगाल इद्द तोट हालू - यह एक मान्यता है कि स्त्रियों द्वारा पैर घसीटकर चलने पर घर का भला नहीं होता और धड़धड़ाते हुए चलने पर बागान का भला नहीं होता, होसल मेले कूतरे साल जास्ति आगुत्तदे (दहलीज पर बैठो तो कर्जा ज्यादा होगा), मुच्चन्जेयल्ले अक्कि तिन्न बरदु (गोधूली में कच्चा चावल नहीं खाना चाहिए) दीप हच्चिद मेले कसगुडुस बारदु (दिया जलाने के बाद झाड़ू नहीं करना चाहिए), प्रदिक्षणे हाकिदरे प्रयोजनविल्ल, दक्षिणे हाकिदरेये तीर्थ सिगोदु तथा रामेश्वरक्के होदरू, शनीश्वरन काट तप्पलिल्ल जैसी कहावतें एक तरफ अंधविश्वासों में हमारी मूर्खता का उद्घाटन करते हैं तो दूसरी तरफ हमारी धार्मिक व्यवस्था के पाखंड को दर्शाते हैं। उसी प्रकार हिंदी में - काली बिल्ली का रास्ता काटना, छज्जे पर कौए का आवाज लगाना आदि जन-जीवन की झाँकियों के साथ-साथ प्रथाओं-रूढ़ियों-परंपराओं का उल्लेख इनमें पाया जाता है। कुछ ऐसी कहावतें भी हैं जो जन-जागृति की चेष्टा करती हैं जैसे माटा माडिदोन मने हालु अर्थात् जो जादू-टोना करता है उसका घर बरबाद होगा।

● लोकोक्तियों / गादे का रूप प्राय: अपरिवर्तनीय होता है। इनका उपयोग हमेशा अपने मूल रूप में ही होता है। इनके मूल शब्दों के स्थान पर उनके पर्याय का प्रयोग अथवा क्रम भंग करने से इनकी शक्ति तथा प्रभाव दोनों नष्ट हो जाते हैं । जैसे- ये मुँह और मसूर की दाल में मसूर के स्थान पर अन्य किसी भी दाल (जैसे चने की दाल) लिख दें तो यह अपनी अर्थवत्ता खो देगा। 'राम नाम को आलसी, भोजन में होशियार' में राम के नाम पर भगवान या भोजन के स्थान पर खाना लगा दें तो इस लोकोक्ति का व्यंग्यार्थ नष्ट हो जाता है। कन्नड में उसी प्रकार 'कत्ते बल्लदे कस्तूरी घमा न' (गधे को क्या पता कस्तूरी की सुगंध) में कत्ते (गधे) के स्थान पर किसी अन्य प्राणि को लगा देने से उसका चमत्कार समाप्त हो जाएगा।

समय के साथ भी इसलिए इनके अंशों की सार्थकता भी कभी-कभी कम हो जाती है - घर की मुर्गी दाल बराबर - शायद ये लोकोक्ति जब बनी तब दाल का भाव बहुत कम होता था परंतु आज दाल के भाव को लेकर सत्ताएँ बदल जातीं हैं। इस दृष्टिकोण से यह लोकोक्ति आज के संदर्भ में प्राय: पूर्ण: प्रासंगिक नहीं बैठती।

● इन लोकोक्तियों / गादे के प्रत्यक्ष अनुवाद दिखने वाले इस संक्षिप्त वाक्यांशों का लक्ष्यार्थ तथा दृष्टांत समान हैं - गोसुंबे तरह बण्ण बदलाइसोदु - गिरगिट की तरह रंग बदलना (व्यक्ति के अवसरवादी होने का संकेत देते हैं), कोणन मुंदे किंदरी बारसोदु - भैंस के आगे बीन बजाना (उस परिस्थिति के सूचक हैं जहाँ इन्सान पर किसी भी चीज का कोई असर नहीं पड़ता) कन्नड में इसी अर्थवत्ता के लिए एक और गादे है।

गोरकल्ल मेले मले सुरिदंते - पत्थर के ऊपर वर्षा होना; बेट्टा अगेदु इलि हिडिदरू - खोदा पहाड निकली चुहिया; हासिगे इद्दष्टु कालु चाचू - चादर के जितना पैर फैलाना; कुरुड कन्निनवनिगिन्त मेल्लगण्णिनवने लेसु - अंधों में काना राजा; ऐदु बेरलु ओन्दे सम अल्ल - पाँचों उंगलियाँ बराबर न होना

बेंकिइल्लदे होगेइल्ल - आग के बिना धुँआ नहीं होता; तन्नकाल मेले ताने कोडली हाकोण्डा - अपने पैरों पर कुल्हाडी मारना; हित्तल गिडा मद्दल्ल (पिछवाड़े में उगने वाला हर पौधा औषधि नहीं) का हिंदी समानांतर

है आंगन का बैंगन; दड्ड मनुष्य नेलक्के भार, अन्नक्के खारा - काम का न काज का ढाई सेर अनाज का कहावत का लक्ष्यार्थ तो समान है परंतु प्रस्तुति भिन्न है।

कन्नड में एक कहावत है वेद सुल्लादरु गादे सुल्लागदु अर्थात् वेद झूठे सिद्ध हो सकते हैं परंतु गादे (कहावत) नहीं । मृत्यु, जीव, जीवन, जगत, ब्रह्म आदि अनेक विषयों को समेटते हुए लोकोक्तियाँ, गंभीर दर्शन एवं अध्यात्म के भी परिचायक हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दर्शन, ज्ञान और अध्यात्म सामान्य लोक जीवन का एक अभिन्न अंग हैं। जहाँ एक तरफ ये कहावत / गादे लोक जीवन की दैनंदिन भाषा का अंग हैं वहीं साहित्य में इनका प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करने के लिए होता है।

लोक साहित्य के अंतर्गत गीत एवं भाषा तो आते ही हैं साथ ही लोकोक्ति, मुहावरा, पहेली तथा कन्नड में गादे सम्मिलित हैं। जनमानस की कलेक्टिव अनुभूतियों से सृजित ये लोकोक्तियाँ अपने भीतर जीवन-ज्ञान को समाहित किए हुए हैं। ग्रामीण परिवेश में जन्मे होने के कारण वहाँ की भाषा, जनजीवन, समाज, कर्म, प्रकृति, धर्म, दर्शन, जीवंतता, चिंतन-मनन के चित्रण के माध्यम से चरित्र-निर्माण तथा नैतिकबल को विशेष महत्व देने वाली साहित्यिक विधा है। हिंदी एवं कन्नड का लोकोक्ति/ गादे का कोश अत्यंत विशाल तथा व्यापक है। लोक जीवन तथा ज्ञान से संबंध रखने के कारण भाषाएँ अलग हैं परंतु उनमें प्रकट भाव एक हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से लोक साहित्य जीवन की सर्वांगीण अनुभूति प्रस्तुत करते हैं जिन्हें सामूहिक और क्षेत्रीय रूप से सभी क्षेत्रों, गतिविधियों और आकांक्षाओं में साझा करते हुए प्रत्येक जीव को एक विशिष्ट सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहचान प्रदान करते हैं।

परंपरागत अंतर्दृष्टि और सामूहिक ज्ञान लोकोक्तियों के मानकों और मूल्यों को प्रमाणित करते हैं। यह परंपरा मौखिक रूप से या कुछ अन्य प्रभावी और अतुलनीय माध्यम से प्रसारित होती है। लोगों के अनुभव को, ज्ञान के, प्राप्त, सूत्रों के साथ इसे एकीकृत करने पर ही लोक साहित्य एवं संस्कृति का सार प्राप्त होगा। अनुभूतिपरक अभिव्यंजना की ये उक्तियाँ एक विनोदात्मक स्थिति प्रस्तुत करते हैं ।

जीवन के अनुभवों का सार, लोकोक्तियाँ, सामान्यत: सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक तथ्यों से संपृक्त होती हैं । उनका उपयोग साक्षर तथा निरक्षर दोनों समान रूप से करते हैं। लोक साहित्य के शलाका पुरुष पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने इसकी विवेचना का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है- "आधुनिक हिंदी के जन्मदाता गाँव वाले हैं और उनका साहित्य इस भाषा को पढ़ने के लिए टकसाल का काम दे रहा है। संस्कृत के शब्द किस प्रकार साधारण जन के लिए उपयोग सुलभ हुए हैं, ये सब इसी टकसाल का ही परिणाम है।" एक लोकोक्ति अपने भीतर अनेक भाव, विषय तथा अभिव्यक्ति के विविध आयामों एवं तत्वों को समाहित किए हुए रहती है। सामान्य जन-जीवन की उपज, इस लोकोक्तियों में, किसी भी देश या समाज की सांस्कृतिक विविधता के भी अंश परिलक्षित हैं। अत: इनकी एक सामान्य चर्चा करना कठिन है। लोकोक्तियों में जीवनानुभव की अभिव्यक्ति है - कुछ संदर्भों में, देश, काल या वातावरण यद्यपि अलग हैं तथापि लोग समान भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं - हर्ष, उल्लास, दुख, चिंता आदि कई क्रियाएँ भी समान होतीं हैं जैसे जन्म-मृत्यु, मौसम, ऋतु आदि जो उस संस्कृति में परिलक्षित हैं । लोकोक्तियाँ भाषाई सीमाओं या कई लोगों के माध्यम से, अक्सर विस्थापित होते हुए विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों को जोड़ती हैं। ये जितनी सार्वभौमिक होती हैं उतना ही इनमें विविधता के या विरोधी अंश भी दिखाई देते हैं । यह प्राय: इसलिए क्योंकि कई लोकोक्तियों का आधार उस समुदाय विशेष की संस्कृति होती है। प्रचलित विवेक की संपत्ति ये लोकोक्तियाँ पुरातन तत्वज्ञान की धरोहर हैं। अनादि काल से ही इनके अस्तित्व का परिचय प्राप्त है तथा विविध लोगों की सामूहिक अवचेतना में समाहित हैं। अनेकता एवं एकता के गुणों द्वारा विशिष्टता प्राप्त, लोकोक्तियों को आज के समय में अनेक चुनौतियों का सामना करना है। विशेषत: मातृभाषा को सीखने की तत्परता कम होते हुए अंग्रेजी को अपनाने की इच्छा में भारतीय जन-मानस से, धीरे-धीरे, लुप्त हो जाने की संभावना एवं खतरा भी है। साहित्यिक अभिव्यक्तियों में भी इनका प्रचलन कम होता जा रहा है। लोकप्रिय अभिव्यक्तियों में यदि देखा जाए तो, सीमित रूप में इनका प्रयोग दोनों भाषाओं की फिल्मों में अवश्य हो रहा है परंतु एक परंपरा, एक धरोहर, के रूप में इनका संरक्षण करना हमारा दायित्व है।

भाषा ISSN 0523-1418

संदर्भ

BRADEANU, LIGIA From Centre to Margins: Multicultural Aspects of the Origins

ACTA IAASSYENSIA COMPARATION IS, 5/2007,

www.academia.edu/1589557/

https://shivappa.wordpress.com/kannada-proverbs

Krikmann, A. PROVERBS ON ANIMAL IDENTITY: TYPOLOGICAL MEMOIRS

ISSN 1406-0949 is available from http://haldjas.folklore.ee/folklore

Lauhakangas, O. USE OF PROVERBS AND NARRATIVE THOUGHT

https://www.folklore.ee/folklore/vol35/lauhakangas.pdf

Mieder, W. Origin of Proverbs - De Gruyter

https://www.degruyter.com/downloadpdf books/...2/9783110410167.2.xml

Shariati, Mohammad (PDF) A Comparative Study of Proverbs' Characteristics of Mesopotamian Language, and a Local Dialect of Persian. Available from:

https://www.researchgate.net/publication/266886422

डॉ. बदरीनाथ कपूर, हिंदी मुहावरे और लोकोक्तिकोश, लोकभारती प्रकाशन, 2009

– संकायाध्यक्ष-भाषा निकाय, प्रोफेसर-हिंदी विभाग, जैन विश्वविद्यालय, बेंगलूरू

❑❑❑

त्रिपुरा की जमातिया जनजाति की जीवन धारा

डॉ. मिलन रानी जमातिया

त्रिपुरा राज्य की जनजातियों में अपनी विशिष्ट समाज-व्यवस्था, रीति-रिवाज एवं धार्मिक मान्यताओं के कारण 'जमातिया जनजाति'[1] की खास पहचान है। यह जनजाति मुख्य रूप से त्रिपुरा के उदयपुर, अमरपुर, सोनामुरा, तेलियामुरा, जंपुई जला आदि क्षेत्रों में निवास करती है। इस जनजाति का मुख्य उपास्य देवता 'बाबा गॉरिया'[2] है। जमातिया जनजाति की समाज-व्यवस्था को 'हॉदा' के नाम से जाना जाता है। समाज-व्यवस्था पर नियंत्रण रखने के लिए दो हॉदा अकरा निर्वाचित या मनोनीत किए जाते हैं। एक खामा[3] अंचल के लिए, जिसके अंतर्गत उदयपुर के पश्चिमांचल, सोनामुड़ा, जंपुई जला एवं बिलोनिया के क्षेत्र आते हैं। दूसरे साका[4] अंचल के लिए, जिसके अंतर्गत उदयपुर के पूर्वांचल एवं अमरपुर आते हैं। जमातिया हॉदा के अंतर्गत एक और क्षेत्र है, जिसे कल्याणपुर कहा जाता है। यह क्षेत्र पाँचाई[5] के अधीन है। जमातिया जनजाति में दोनों अकरा सर्वेसर्वा होते हैं। समाज में किसी भी प्रकार के वाद-विवाद उत्पन्न होने पर अकराओं के निर्णय ही अंतिम होते हैं। हॉदा में किसी भी प्रकार के सामाजिक अपराध के लिए कठोर दंड का (अर्थ दंड, छड़ी दंड, समाज से बहिष्कार आदि) प्रावधान हैं।

जमातिया जनजाति में ग्राम-समाज को 'लुकू' कहा जाता है। प्रत्येक लुकू के लिए एक व्यक्ति चुना जाता है, जिसे 'लुकूचकदिरी' कहा जाता है, जो ग्राम में व्यवस्था बनाए रखता है। वर्तमान में इस जनजाति के 329 (तीन सौ उनतीस) लुकू हैं। पाँच से दस या उससे अधिक गाँवों को मिलाकर एक और संगठन बनाया जाता है, जिसे 'मयाल' कहा जाता है, प्रत्येक मयाल के लिए भी दो व्यक्तियों का मनोनयन किया जाता है, जिसे 'मयाल पाँचाई' कहा जाता है, जिन्हें मयाल को सुचारू रूप से चलाने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। वर्तमान में जमातिया हॉदा के अंतर्गत 18 (अट्ठारह) मयाल हैं। पूर्व में विवाह-विच्छेद, नारी समस्याएँ एवं छड़ी दंड से संबंधित निर्णय केवल हॉदा अकरा ही लेते थें, किंतु आजकल विवाह-विच्छेद एवं नारी समस्याओं से संबंधित निर्णय लुकूचकदिरी एवं मयाल पाँचाई भी लेते हैं, लेकिन छड़ी दंड की सजा केवल हॉदा अकरा ही सुना सकते हैं। हॉदा अकरा और मयाल पाँचाई पाँच साल के लिए चुने जाते है। विशेष परिस्थितियों में यह अवधि बढ़ाई भी जा सकती है। अवधि समाप्त होने पर एक ही व्यक्ति का चयन दोबारा नहीं किया जाता है। लुकूचकदिरी तीन से पाँच साल के लिए चुना जाता है। हॉदा अकरा, मयाल पाँचाई और लुकूचकदिरी दंपत्ति ही चुने जाते हैं, जिनका विवाह चौदह देवता को साक्षी बनाकर किया गया हो। इन पदों के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन नहीं किया जाता हैं, जिन्होंने भागकर या माता-पिता के विरुद्ध जाकर शादी की हो। यह जनजाति आज भी अपने धर्म, परंपरा, नियम और कानून के प्रति बहुत सजग है।

प्रत्येक समाज में विश्वासों एवं मान्यताओं के आधार पर कुछ संस्कारों का निर्धारण होता है, जिसे व्यवहार में लाकर लोग सामाजिक नियमों की संज्ञा देते हैं। जमातिया समाज में भी जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न अवसरों के लिए कुछ सामाजिक नियम बनाए गए हैं। इन सामाजिक नियमों ने जमातिया समाज को

 भाषा ISSN 0523-1418

संगठित कर मजबूती प्रदान की है साथ ही त्रिपुरा राज्य के अन्य जनजातीय समुदाय में विशिष्ट पहचान भी दी है। यहाँ मुख्य रूप से जमातिया समाज में प्रचलित तीन यथा-जन्म, विवाह एवं मृत्यु संस्कारों की बात की जाएगी।

(क) जन्म-संस्कार

जमातिया जनजाति के अनुसार 'व्यक्ति का धरती पर मनुष्य रूप में जन्म उसके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह जन्म व्यक्ति को बार-बार नहीं मिलता है, इसलिए शिशु-जन्म को परिवार में उत्सव की तरह मनाया जाता है, परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्य, रिश्तेदार एवं आस-पड़ोस के लोग नवजात शिशु का स्वागत बड़े धूमधाम से करते हैं। आजकल नवजात शिशु के जन्म होने पर पिता, दादाजी एवं नानाजी परिवार के सदस्यों एवं पड़ोसियों को मिठाई आदि खिलाते हैं। पूर्व में मुर्गे या बकरी आदि से छोटा-सा भोज का आयोजन किया जाता था। चूँकि वर्तमान में यह समाज पुरुष प्रधान है इसलिए संतान पैदा होते ही अपने पिता के कुल, जाति आदि को स्वभाविक रूप से ग्रहण करता है। इस समाज में पुत्र एवं कन्या संतान में कोई भेद नहीं किया जाता है। दोनों का समान रूप से पालन-पोषण किया जाता है। विवाह-बंधन में बंधे बिना संतान-उत्पन्न करना स्त्री के लिए पाप माना जाता है। ऐसी संतान को समाज में 'फा कोरोई सा' (अवैध संतान) की संज्ञा दी जाती है और उसे जीवन भर अपमानित होना पड़ता है।" शिशु-जन्म से संबंधित निम्नलिखित रीति-रिवाज जमातिया समाज में निभाए जाते हैं-

1. चोराई आचाइया सोकांग (शिशु-जन्म से पूर्व)

गर्भवती होने के बाद से ही जमातिया समाज में स्त्रियों को मान्यताओं एवं विश्वासों के आधार पर कुछ नियमों का पालन करना होता है, जैसे-

(i) गर्भकाल के दौरान स्त्री को दोपहर एवं संध्या के समय घर से बाहर निकलने की मनाही है। यह समय प्रेतात्माओं का समय माना जाता है, इससे होने वाले बच्चे पर बुरी नजर पड़ने का अंदेशा रहता है।

(ii) गर्भवती महिला को 'मिरका मछली' खाने की मनाही है। इस दौरान गर्भवती स्त्री के मिरका मछली खाने से होने वाले शिशु को मिर्गी रोग होने का खतरा रहता है।

(iii) गर्भवती महिला को पूर्व या दक्षिण दिशा में ही सिर रखकर सोने की हिदायत दी जाती है। मान्यता है कि केवल मृत व्यक्ति का सिर ही उत्तर या पश्चिम दिशा में रखा जाता है।

(iv) गर्भवती स्त्री को सूर्यग्रहण एवं चंद्रग्रहण नहीं देखना होता है। इसे होने वाली संतान के लिए अशुभ माना जाता है।

(v) होने वाले पिता को जीव-हत्या, शिकार पर जाना आदि मना है। ऐसा करने से होने वाली संतान का अंग भंग होने की आशंका रहती है। इसके अतिरिक्त पुरुष को 'बारुवा' अर्थात् सहयोगी पुजारी होना भी मना है।

(vi) गर्भकाल में स्त्री को 'आफि फल-फकरा' यानी जोड़ फल खाने की मनाही है, कहते हैं कि ऐसा करने से स्त्री जुड़वा बच्चे पैदा करती है, जिससे माँ की परेशानी दुगुनी हो जाती है।

(vii) गर्भवती स्त्री को विपत्ति, बाधा आदि से बचाने के लिए गर्भ धारण के पाँच महीने बाद लांप्रा पूजा की जाती है। यह पूजा विशेष तौर पर गर्भवती स्त्री की मंगल कामना के लिए रखी जाती है।

(viii) इसके अलावा गर्भवती स्त्री को अपने व्यवहार को संतुलन में रखने एवं साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखने के लिए निर्देश दिया जाता है।

अन्य सारे कार्य, जैसे-पारिवारिक, सामाजिक या कृषि कार्य को करने की स्वतंत्रता स्त्री-पुरुष दोनों को है। इस दौरान गर्भवती स्त्री के काम करते रहने को स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा माना जाता है। मान्यता है कि इससे शिशु को जन्म देने में माँ को ज्यादा तकलीफ का सामना नहीं करना पड़ता है।

गर्भवती स्त्री को प्रसव पीड़ा शुरू होने से पहले ही अन्य घर या घर के किसी अलग कमरे में उसके रहने की व्यवस्था कर दी जाती है और घर के सारे लोग मिलकर उसके देखभाल की जिम्मेदारी उठाते हैं।

2. चोराई आचाइमा (शिशु-जन्म)

जमातिया परिवार में जब नवजात शिशु का जन्म होता है तो उसका स्वागत महिलाएँ उलू-लू-लू की ध्वनि द्वारा करती हैं। इसे स्थानीय भाषा में 'जगा लू' कहा जाता है। किसी भी शुभ कार्य में उलू-लू-लू की

आवाज निकालने की परंपरा इस जनजाति की अपनी परंपरा नहीं है, यह बंगला भाषी समाज से अपनाई गई है, यह परंपरा कब, कैसे उनके दैनिक जीवन में आकर घुलमिल गई, कहना मुश्किल है किंतु आज प्रत्येक शुभ कार्य में, जैसे किसी का स्वागत करते समय, ईश्वर का आह्वान करते समय, शादी-ब्याह, उत्सव-समारोह से लेकर नवजात शिशु के जन्म अवसर और व्यक्तिगत, पारिवारिक या ग्राम-सुरक्षा हेतु पूजा-अर्चना के समय स्त्रियों द्वारा शुभ कार्य को शुरू करने की संवद्र्धना में उलू-लू-लू की ध्वनि निकाली जाती हैं।

स्त्री को प्रसव पीड़ा शुरू होते ही गाँव की अनुभवी पाँच-छह महिलाओं को बुला लिया जाता है। वे आते ही आपस में तय कर लेती हैं कि कौन कुमाजोक[7] एवं लकमाजोक[8] होगी। कुमाजोक एवं लकमाजोक गाँव की कोई भी अनुभवी महिला हो सकती है। शिशु-जन्म के बाद उसके नाभि-नाल को काटकर चप्रा/चप्री (टोकरी) में रखा जाता है। कॉकबरक में इसे 'बादुक एवं फं' कहा जाता है। नाभि-नाल काटने की यह क्रिया 'वामथा' अर्थात् बाँस के धारधार टुकड़ों से किया जाता है। इसी बीच लकमाजोक गर्म पानी की व्यवस्था करती है। पानी को कच्ची हल्दी डालकर ही गरम किया जाता है। उसके बाद नवजात शिशु और माँ को गुनगुने पानी से नहलाया जाता है और आगे की रस्म के लिए शिशु को लकमाजोक (सहयोगी दाईमा) को दे दिया जाता है। लकमाजोक नवजात शिशु को गोद में लेने के बाद एक दाव को बगल में दबाकर जमीन पर तीन बार पैर ठोककर/मारकर "अमो आनि अङखा, आनि अङखा, नोनो तेई चोंग याकालिया" अर्थात् (यह अब मेरा हुआ, मेरा हुआ, अब हम तुम्हें कहीं नहीं जाने देंगे) कहती है। उसके ऐसा कहते ही बाकी स्त्रियाँ भी एक साथ कहती हैं "ई ताबकले अमो चिनि अङखा, चिनि अङखा" (हाँ, अब यह हमारे हुए, हमारे हुए)। इसके बाद लकमाजोक नवजात शिशु के लड़के या लड़की होने की घोषणा करती है। इसके बाद इसकी सूचना तुरंत शिशु के पिता एवं घर के अन्य सदस्यों को दी जाती है। साथ ही दो-तीन औरतें घर के आंगन में जाकर उलू-लू-लू की ध्वनि निकालती हैं। इस रस्म से पहले शिशु का लड़के या लड़की घोषणा करना या बताना मना है। उसी समय साल (सूर्य), ताल (चंद्रमा), नकबार (पवन), हा (धरती), तोयबुकमा (जल देवी) आदि को साक्षी बनाकर कुमाजोक (दाईमा) द्वारा शिशु का नामकरण किया जाता है। यही नवजात शिशु का असली नाम माना जाता है, यह नाम शिशु के माता-पिता के अलावा किसी अन्य को नहीं बताया जाता है, सबसे गुप्त रखा जाता है। मान्यता है कि इस नाम की जानकारी अन्य को होने पर नवजात शिशु पर बुरी आत्माएँ हावी रहती हैं।

3. बादुक तेई फं खिबिमा (नाभि-नाल फैंकना)

शिशु के औपचारिक नामकरण के बाद चप्रा/चप्री (टोकरी), जिसमें बादुक एवं फन (कटी हुई नाभि के टुकड़े) रखे गए थे, उसे आबादी से दूर ले जाकर जमीन में गाड़ दिया जाता है और उसके चारों तरफ सुचूबोचोलोई[9] छिटका दिया जाता है। उसके बाद सभी औरतें नदी-घाट या पोखर में जाकर नहाती हैं और नवजात शिशु के घर लौट आती हैं। आते ही लकमाजोक (सहयोगी दाईमा) नवजात शिशु के हाथों एवं पैरों में काले धागे बाँधती है, फिर घर के चारों तरफ सुचूबोचोलोई छितराती है, उसके बाद माँ की शारीरिक स्वस्थता के लिए उसी घर में आग जलाई जाती है, उस आग में भी सुचूबोचोलोई डाली जाती है। जब तक शिशु का अमथाई (नार/नाभि) नहीं टूट जाता है तब तक यह आग जलाई जाती है, उसके राख को भी बाहर फैंकना निषिद्ध है। थोड़ा-सा सुचूबोचोलोई कपड़े में बाँधकर नवजात शिशु के सिरहाने में भी रख दिया जाता है। यह माँ और शिशु को बुरी नजर एवं प्रेतात्माओं से बचाने के लिए किया जाता है।

शिशु-जन्म के बाद स्त्री और पुरुष को अलग ही रहना पड़ता है। स्त्री को 'आबूर' अर्थात् अपवित्र माना जाता है, उसका रसोई घर और अन्य कमरे विशेषतौर पर जहाँ देवी-देवता स्थापित हैं, में जाना निषिद्ध है, घर के अन्य सभी सदस्य प्रसूति वाले घर/कमरे में आ-जा सकते हैं किंतु पुरुष प्रायः ऐसे कमरे में नहीं जाते हैं। इस दौरान प्रसूति माँ के लिए खाने-पीने की अलग व्यवस्था की जाती है, इसकी जिम्मेदारी घर की सभी महिलाएँ मिलकर उठाती हैं। ध्यातव्य है कि कुमाजुक-लकमाजुक (दाईमा-सहयोगी दाईमा) भी इस दौरान अशौच मानी जाती है। यह नियम तब तक चलता है, जब तक बच्चे का अमथाई (नार/नाभि) नहीं टूट जाता है।

भाषा ISSN 0523-1418

4. अमथाई काकमा (नार्ता टूटना)

बच्चे का अमथाई (नार/नाभि) टूटते ही कुमाजुक एवं लकमाजोक को पुनः घर बुलाया जाता है। उनके घर आते ही बच्चे की माँ अब तक जलाई गई आग के सारे राख और अमथाई (नार/नाभि) को चप्रा/चप्री में रखती है और उसे आबादी से दूर जंगल ले जाकर गाड़ देती है। अमथाई (नार) गाड़ने से पहले उस जमीन की साफ-सफाई अच्छी तरह की जाती है। बच्चे स्वस्थ रहें, उसे खुजली आदि न हों इसलिए यह सफाई की जाती है। सफाई के बाद उस स्थान के चारों ओर सुचूबोचोलोई छितरा दिया जाता है। यह सारा कार्य बच्चे की माँ ही संपन्न करती है, कुमाजोक-लकमाजोक केवल उसका साथ देती हैं। इसके बाद सभी घर लौट आते हैं।

इस दिन घर की साफ-सफाई की जाती है। माँ के सारे कपड़ों को धोया जाता है और माँ को प्रसूति घर से मुख्य घर में लाया जाता है, पर बच्चे की माँ का रसोई घर में प्रवेश निषेध ही रहता है, किंतु घर के अन्य सभी काम वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर सकती है, जैसे अपने लिए खाना बनाना, पानी भरना, कपड़े धोना आदि। इस प्रक्रिया के बाद कुमाजोक एवं लकमाजोक सुचिता के बंधन से मुक्त हो जाती है। इस रस्म से पहले उनका भी दूसरों के घरों में जाना निषिद्ध हैं, जाने से भी उनका दूसरों के मुख्य घर एवं रसोई घर में जाना मनाही हैं।

5. लांप्रा पूजा

बच्चे का अमथाई (नार/नाभि) टूटने के बाद जब घर की साफ-सफाई अच्छी तरह हो जाती है, तब अचाई[10] बुलाकर 'लांप्रा पूजा' की जाती है। यह पूजा माँ और बच्चे की स्वस्थता के अतिरिक्त घर की शुद्धिकरण के लिए भी की जाती है। इसी दिन बच्चे को पहली बार सूर्य दर्शन कराया जाता है, कॉकबरक भाषा में इसे 'चोराई नखला कारिमा' कहा जाता है। इस दिन के बाद बच्चे को हर जगह ले जाने की अनुमति मिलती है। उल्लेख्य है कि 'लांप्रा पूजा' से पहले बच्चे को प्रसूति घर से बाहर निकालना मना है। इसे बच्चे के लिए अशुभ माना जाता है।

6. आबूर सुमा/त्वोराई हा कारोमा (अन्न प्रशन)

बच्चे के जन्म का यह अंतिम एवं महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। यह संस्कार माँ के पूर्ण रूप से स्वस्थ एवं शुद्ध होने के बाद किया जाता है। इस संस्कार को पूर्ण करने के लिए बच्चे के पिता या घर का अन्य कोई समझदार व्यक्ति कच्ची हल्दी, मुट्ठी भर चावल एवं वाथोई बाँस में देशी शराब लेकर अचाई (पुजारी) के घर जाता है और बच्चे एवं माँ की स्वस्थता की पूरी सूचना उसे देते हुए इस अंतिम संस्कार के लिए उसे निवेदन करता है। इसे स्थानीय बोली में 'अचाई बातेमा' कहते हैं। तिथि तय होने के बाद घर भर की साफ-सफाई अच्छी तरह की जाती है। निर्धारित तिथि में अचाई बच्चे के नाम पर नदी घाट जाकर बकरी या बकरे की बलि द्वारा तोयसोकाल (जलदेवी) की पूजा करते हैं। इस दिन शिशु के घर एक बड़े भोज का आयोजन किया जाता है। सारे रिश्तेदार एवं गाँव वालों को बच्चे को आशीर्वाद देने एवं भोज के लिए निमंत्रण दिया जाता है। कुमाजोक एवं लकमाजोक विशेषतौर पर आमंत्रित किए जाते हैं क्योंकि उनके बिना यह संस्कार पूरा नहीं माना जाता है। तोयसोकाल (जलदेवी) की पूजा के बाद पवित्र जल छिड़ककर घर को शुद्ध किया जाता है। इसी बीच बच्चे को नहलाकर नए कपड़े पहनाए जाते हैं, माँ भी नहा धोकर तैयार हो जाती है। नदी पूजा के बाद अचाई घर के आँगन में सूर्य, चंद्रमा, पवन, धरती एवं चौदह देवताओं का आह्वान करते हैं और सभी देवी-देवताओं से शिशु एवं शिशु की माँ को आशीर्वाद देने के लिए निवेदन किया जाता है। पूजा के बाद अचाई का आशीर्वाद लेने के लिए माँ और उसके बच्चे को बाहर बुलाया जाता है। बच्चे को बाहर निकालने से पहले कुमाजोक द्वारा द्वार पूजा की जाती है, पूजा के बाद उत्तर, दक्षिण, धरती एवं आसमान की ओर देखकर चार बार तीर चलाया जाता है और मशाल जलाकर चारों तरफ दिखाने के बाद बच्चे को बाहर निकाला जाता है। यह प्रक्रिया प्रेतात्माओं को भगाने के लिए की जाती है। बच्चे का स्वागत बड़ी उमंग एवं उत्साह के साथ उलू-लू-लू की ध्वनि द्वारा किया जाता है। बच्चे के पैरों को पहली बार धरती से छुवाया जाता है। इस क्रिया के बाद तुरंत पवित्र जल से बच्चे के पैरों को शुद्ध किया जाता है। सभी देवताओं से आशीर्वाद लेने के बाद माँ और बच्चे अचाई का आशीर्वाद लेते हैं। अचाई दोनों को शारीरिक स्वस्थता एवं लंबी उम्र के लिए आशीर्वाद देता है। उसके बाद बच्चे को कुमाजोक-लकमाजोक को दे दिया जाता है।

7. हामजोक कासोमा/कन्या आतक

बाहर की सब विधियों को पूरा करके जैसे ही सारे लोग घर के भीतर प्रवेश करते हैं। अन्य आत्मीय स्वजन के द्वारा सभी को द्वार पर ही वाथोई बाँस[11] के माध्यम से रोक लिया जाता है। इसी क्रिया को जमातिया समाज में हामजोक कासोमा/कन्या आतक आदि कहा जाता है। एक बोतल देशी शराब देकर भीतर प्रवेश करने की प्रथा है। आजकल कुछ रुपए भी दिए जाते हैं। भीतर प्रवेश करने के बाद लकमाजोक एक थाल में कच्ची हल्दी, दूब-घास, कपास, दाव, हा (मिट्‌टी) और हलङ (पोता-जिससे मिर्ची या मसाला पीसा जाता है) सजाकर लाती है। कुमाजोक बच्चे को गोद में लेकर हर एक वस्तु को बच्चे के माथे से छुवाते हुए आशीर्वाद देती है। यहाँ प्रत्येक वस्तु अलग-अलग अर्थ को उद्‌घाटित करते हैं, जैसे-हल्दी-यहाँ पवित्रता, शुद्‌धता और जीवन के सभी रंगों की प्रतीक है। दूब-घास-ऐश्वर्य, धन्य-धान्य के प्रतीक है। कपास-उज्ज्वलता और अनुभव का प्रतीक है। दाव- सक्रियता, ताकत एवं साहस के प्रतीक हैं। हा (मिट्‌टी)-उदारता, सहनशीलता आदि की प्रतीक हैं। हलङ- गम्भीरता, दृढ़ निश्चय एवं स्थिर व्यक्तित्व का प्रतीक हैं। बच्चे लंबी उम्र तक जिएँ और उपर्युक्त सारे गुण बच्चे में हों इसका आशीर्वाद बच्चे और माँ दोनों को दिया जाता है।

कुमाजुक एवं लकमाजोक उस दिन घर में बने सारे व्यंजन पदार्थों से औपचारिक रूप से बच्चे का मुंह जूठा करती हैं। इसी दिन सभी रिश्तेदारों एवं गाँव वालों के सामने बच्चे का पुन: नामकरण किया जाता है। रिश्तेदार एवं गाँव वाले सभी भोज में शामिल होते हैं और बच्चे एवं माँ को भरपूर आशीर्वाद देते हैं। औपचारिक रूप से नाई बुलाकर बच्चे का नाखून, बाल आदि कटवाया जाता है। अंत में कुमाजोक, लकमाजोक एवं अचाई को नए कपड़े एवं एक-एक देशी शराब की बोतल देकर विदाई दी जाती है। इस विधि को 'अचाई एवं कुमाजोक-लकमाजोक मोमा' कहा जाता है।यह कार्य उसी दिन या अन्य शुभ दिन में भी किया जा सकता है। इस क्रिया के बाद जन्म-संस्कार प्राय: समाप्त माना जाता है।

(ख) विवाह-संस्कार

इस समाज में विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक बंधन माना जाता है, जिसमें केवल दो-आत्माओं का मिलन ही नहीं, दो परिवार भी सामाजिक बंधनों में बंध जाते हैं। इस जनजाति में एकविवाही प्रथा प्रचलित है। बहुविवाह को समाज में सामाजिक अपराध माना जाता है। पूर्व में जमातिया जनजाति में बाल-विवाह चलन में था, विशेषतौर पर लड़कों का बाल-विवाह ही किया जाता था। इस प्रथा के पीछे मान्यता यह थी कि गृहस्थी का आधार अथवा नीव स्त्रियाँ हैं, वे ही घर-परिवार को संभालती है, इसलिए उसका समझदार और प्रौढ़ होना ज्यादा जरूरी है, न कि लड़के का, किंतु जैसे-जैसे इस समाज में शैक्षणिक चेतना आई वैसे-वैसे इसमें बदलाव आता गया और आज यह प्रथा आमतौर पर देखी नहीं जाती है। जमातिया समाज में विवाह संबंध सामाजिक बराबरी और आर्थिक सुरक्षा देखकर ही तय किए जाते हैं। विवाह के बाद लड़की को पिता की चल-अचल संपत्ति में हिस्सा दिया जाता है। शादियाँ प्राय: एक ही कुल में की जाती हैं। कुल से यहाँ तात्पर्य खून के रिश्तों से नहीं है, जाति से है। इससे जाति या कुल में नजदीकियाँ बनी रहती है, साथ ही कुल की शुद्‌धता एवं मजबूती भी।

जमातिया जनजाति में प्राय: वैशाख (मार्च-अप्रैल), अगहन (अक्तूबर-नवंबर), माघ (जनवरी-फरवरी) एवं फाल्गुन (फरवरी-मार्च) के महीने में शादी-विवाह के कार्य संपन्न होते हैं। इस समाज में चैत्र (अप्रैल-मई), भाद्र (अगस्त-सितंबर) और पौष (दिसंबर-जनवरी) के महीनों में विवाह निषिद्‌ध है, किंतु जमातिया ईसाई धर्मावलंबियों पर यह बात लागू नहीं होती है। इस जनजाति में मुख्यत: तीन प्रकार के विवाह प्रचलित हैं

1. रांग रवोई काइजाकमा (वधू-मूल्य विवाह)

लड़के की सेवा से यदि लड़की के परिवार वाले नाखुश या असंतुष्ट हैं तो उसे घर से निकाल दिया जाता है, ऐसी स्थिति में लड़के के परिवार वाले अन्य जनजाति की लड़की के परिवार वालों को कुछ निश्चित राशि देकर अपने बेटे का विवाह कराते हैं। यह विवाह उन लोगों के लिए भी हैं, जिनकी किसी कारणवश शादी नहीं हो पाती है अथवा जो शारीरिक रूप से विकलांग, अशक्त आदि हैं।

2. खारोई काइजाकमा (भागकर किया जाने वाला विवाह)

यह अधुनिक प्रेम विवाह का ही एक रूप है। अगर कोई लड़का किसी लड़की को पसंद करता है तो

भाषा ISSN 0523-1418

किसी समझदार व्यक्ति को लड़की के माता-पिता के पास विवाह-प्रस्ताव लेकर भेजा जाता है, यदि माता-पिता मान जाते हैं तो इस प्रेम को सामाजिक सहमति मिल जाती है, विवाह कर दिया जाता है। अन्यथा लड़का और लड़की कहीं भागकर चले जाते हैं और साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं। जमातिया जनजाति में इसे सामाजिक अपराध माना जाता है। लुकूचकदिरी द्वारा लड़के और लड़की सहित उनके माता-पिता को भी दंडित किया जाता है। इस तरह के विवाह को आजकल मान्यता मिलने लगी है, किंतु जिनके विवाह को सामाजिक स्वीकृति मिलती है अर्थात् जिनका विवाह पूरी रस्मों-रिवाजों के साथ होता है, वे ही लुकूचकदिरी, मयाल पाँचाई और हॉदा अकरा चुने जाते हैं। अन्यथा उन्हें अयोग्य माना जाता है।

3. कॉक सोंगवोई काइजाकमा (माता-पिता द्वारा तय किया गया विवाह)

माता-पिता द्वारा तय किया जाने वाला विवाह जमातिया जनजाति में सर्वाधिक मान्य एवं प्रचलित विवाह है। इसमें विवाह का प्रस्ताव लड़के वालों की ओर से लड़की वालों को भेजा जाता है, जिसे स्वीकारने या अस्वीकारने की उन्हें पूरी छूट हैं। जमातिया जनजाति में लड़की देखने का चलन नहीं है। दहेज आदि की बुराइयाँ भी अभी नहीं हैं। उल्लेख्य है कि आज से लगभग 80-90 साल पहले अन्य कॉकबरक भाषियों की तरह जमातिया जनजाति में भी 'चामोरोई अम्पा कावोई काइजाकमा (सेवा के आधार पर विवाह) प्रथा प्रचलित थी। इसमें विवाह-योग्य लड़के को शादी से पहले दो या तीन साल के लिए माता-पिता द्वारा चुनी हुई लड़की के घर जाकर सेवा करनी पड़ती थी। सेवा की यह अवधि लड़की एवं उसके परिवार वालों की इच्छानुसार बढ़ाई भी जा सकती है। इस दौरान लड़के को होने वाले ससुर एवं सास द्वारा बताए गए सारे काम करने पड़ते है। लड़के की सेवाओं से संतुष्ट होने पर ही लड़की के माता-पिता विवाह के लिए सहमति देते थे अन्यथा विवाह नहीं हो पाता था। विवाह की सहमति मिलने पर लड़का अपने घर लौटकर परिवार वालों को यह शुभ समाचार देता है। इसके बाद दोनों पक्ष के लोग मिलकर विवाह की तारीख एवं समय तय कर लड़के-लड़की का विवाह करा देते हैं। जमातिया समाज में इसे 'चामोरोई अम्पा कावोई काइजामा' कहते हैं।

वर्तमान में विवाह दो प्रकार से किया जाता है-

(i) चामोरोई तिसावोई काइमा (घर जमाई बनाना)

यदि लड़की के परिवार वाले आर्थिक रूप से अत्यंत समर्थ है या लड़की इकलौती संतान है तो वे प्राय: बेटियों के लिए घर जमाई बनने के लिए इच्छुक लड़के की ही खोज करते हैं। ऐसे में विवाह की शुभघड़ी आने पर लड़के की अपने घर से विदाई कराई जाती है। इस प्रकार के विवाह में शादी की पूरी रस्म तो निभाई जाती है, किंतु लड़के की विदाई से लेकर उसके लड़की के घर पहुँचने तक बैंडबाजे नहीं बजाए जाते हैं, केवल बाँसुरी बजाई जाती है और विवाह संबंधित सभी मुख्य रीति-रिवाज लड़की के घर पूरे किए जाते हैं।

(ii). हांजोक नाहई काइमा

इसी विवाह पद्धति का नीचे विस्तार से वर्णन किया जाएगा। विवाह के दौरान जमातिया जनजाति में कई प्रकार के रीति-रिवाज, संस्कार एवं परंपराएँ निभाई जाती हैं, यथा-

(1) कॉक सोङमानी (सगाई)

जमातिया जनजाति में भी अन्य जनजातियों की तरह विवाह 'आंदारी' (बिचौलिया) तय करवाता है। 'आंदारी' को ही देबबर्मा जनजाति में 'राइबा' कहा जाता है। 'आंदारी' नजदीकी रिश्तेदार या पड़ोसी अथवा गाँव का कोई भी व्यक्ति हो सकता है। दोनों पक्षों के सहमत होने के बाद शुभ दिन तय कर लड़के वाले 'आंदारी' सहित लड़की वालों के यहाँ जाते हैं। लड़की वाले रिश्तेदार, लुकूचकदिरी एवं अन्य बुजुर्ग गाँव वालों के साथ लड़के वालों का स्वागत करते हैं। उस रात लड़की वालों के यहाँ छोटे-से भोज का आयोजन किया जाता है। सामान्य तौर पर रिश्तेदारों, लुकूचकदिरी एवं अन्य बुजुर्गों से राय लेते हुए लड़की वाले लड़के वालों को रिश्ते के लिए हाँ कह देते हैं। विवाह संबंधित इस प्रक्रिया को जमातिया समाज में 'कॉक सोङमानी' कहा जाता है। इस दिन के बाद लड़की अपने परिवार एवं गाँव वालों के लिए पराई मानी जाती है।

'कॉक सोङमानी के दिन लुकूचकदिरी का लड़की के घर जाना या उपस्थित होना अनिवार्य नहीं है, लेकिन इन सब बातों की सूचना उसे अनिवार्य रूप से दी जाती

है। इसके अलावा 'कॉक सोङमानी' अर्थात् सगाई के दिन जमातिया जनजाति में लड़के या लड़की का घर में उपस्थित होना जरूरी नहीं है। इसे बड़े-बुजुर्ग ही मिलकर तय करते हैं। आजकल सगाई के अवसर पर लड़की को एक जोड़ी रिगनाई-रिसा (पारंपरिक पोशाक) एवं घर वालों को मिठाई या फल दिए जाते हैं, सगाई के इस अवसर पर लड़के वाले लड़की वालों के यहाँ बकरी या मुर्गे और देशी शराब आदि ले जाते हैं। लड़की वाले वर पक्ष द्वारा लाई गई सामग्री में अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्य सामग्री मिलाकर प्राय: भोज का आयोजन करते हैं।

(2) तक चामाई चालाइमानी

कॉक सोङमानी अर्थात् सगाई के बाद लड़के वाले उमंग एवं उत्साह के साथ अपने गाँव लौट आते हैं। गाँव की सीमा पर पहुँचते ही वे बाँस के दो टुकड़ों से तीन बार आवाज निकालते हैं, यह आवाज लड़के वालों के घर पहुँचते ही फिर (तीन बार) निकाली जाती हैं। यह ध्वनि वधु प्राप्ति की सूचना है। आजकल पटाखे आदि फोड़कर इसकी सूचना गाँव वालों को दी जाती है। इसके बाद शुभ दिन तय करके लड़की के माता-पिता और उनके अन्य आत्मीय स्वजनों को लड़के वाले अपने यहाँ बुलाते हैं। जिस दिन लड़की वाले लड़के के घर आते हैं, उसी दिन लड़के वाले अपने गाँव के लुकूचकदिरी, रिश्तेदार एवं गाँव के अन्य बुजुर्गों के लिए प्रीति-भोज का आयोजन करते हैं। विवाह से संबंधित यह भोज 'तॉक चामाई चालाइमा' कहलाता है। इस प्रीति भोज का सारा खर्च लड़के वाले ही वहन करते हैं। कॉकबरक में 'तक' का मतलब मुर्गा और 'चामाई' का अर्थ समधी होता है। इसके बाद चूँकि दोनों प्रीति-भोज 'कॉक सोङलाईमा' (सगाई) एवं 'तक चामाई चालाइमा' (समधियों का भोज) में दोनों तरफ के लुकूचकदिरी आत्मीयजन एवं गाँव के अन्य बुजुर्ग साक्षी होते हैं, इसलिए यदि किसी कारणवश अगर विवाह नहीं हो पाता है तो जो पक्ष विवाह तोड़ना चाहता है, उसे अब-तक किए गए विवाह-संबंधित खर्चे के साथ सजा के तौर पर कुछ आर्थिक दंड भी उठाना पड़ता है।

(3) पांदा साल चङलाइमा (विवाह-दिन तय करना)

'तक चामाई चालाइमा' (समधियों का प्रीति-भोज) के बाद दोनों पक्ष के लोग मिलकर शादी की तारीख और समय तय करते हैं। इसकी सूचना दोनों गाँव के 'लुकूचकदिरी' को दी जाती है। गौरतलब है कि जमातिया जनजाति में एक ही समय में एक गाँव से दो बेटियों की विदाई और शादी कराना दोनों निषिद्ध हैं। उदाहरण के लिए अगर एक ही दिन में गाँव से दो बेटियों की विदाई होनी हो तो एक की विदाई सुबह कराई जाएगी, दूसरी की शाम को। इसी तरह यदि गाँव में बेटी की विदाई और बेटे का विवाह होना तय है और जिनका विवाह होना है, उनके लिए बाराती लड़की विदाई कराकर गाँव पहुँच जाते हैं तो उन्हें गाँव की सीमा में ही रुकने का आदेश दिया जाता है। गाँव से बेटी की विदाई होने के बाद ही उन्हें गाँव में प्रवेश की अनुमति दी जाती है। इस जनजाति की मान्यता है कि नियम पालन न किए जाने पर जिस दंपत्ति की राशि कमजोर है, उनका वैवाहिक जीवन असफल हो जाता है, इसलिए हर कार्यक्रम की सूचना लुकूचकदिरी को दी जाती है। ऐसी स्थिति में जो बाद में तारीख की सूचना देते हैं, प्राय: उसकी तारीख को ही थोड़ा पीछे कर दिया जाता है। इसे बुरा नहीं माना जाता है, लुकूचकदिरी के आदेश या निर्णय को सब खुशी-खुशी स्वीकार कर लेते हैं। इससे गाँव वालों को भी दो-दो कार्यक्रम को संभालने में सुविधा होती हैं।

(4) हांजोक नाहइमा (बारातियों का दुल्हन के घर जाना)

शादी की तारीख एवं समय तय होने के बाद दोनों पक्ष लांप्रा पूजा[12] द्वारा अपने घर का शुद्धिकरण करते हैं। परिवार में किसी आत्मीय स्वजन का पिंड दान या वार्षिक श्राद्ध संस्कार शेष हो तो इन संस्कारों को तुरंत पूरा किया जाता हैं। उसके बाद सुपारी अथवा लौंग घर-घर निमंत्रण के रूप में बाँटा जाता है। आजकल पढ़े-लिखे लोग निमंत्रण-पत्र छपवाकर बाँटने लगे हैं। लांप्रा पूजा के दौरान प्रेतात्माओं आदि की नजर से नव दंपत्ति को बचाने और देवी-देवताओं की कृपा बनाए रखने के लिए प्रार्थना की जाती है, अगर लड़के या लड़की की राशि में कोई दोष या बाधा हो तो उसे भी लांप्रा पूजा के माध्यम से ही दूर किया जाता है, साथ ही पारिवारिक विपत्ति को भी।

भाषा ISSN 0523-1418

जमातिया जनजाति में लांप्रा पूजा अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। यह प्राय: सारे शुभ अवसरों पर की जाती है, जैसे–शादी, गृह–प्रवेश, जन्म, अन्न प्रशन, शुद्धिकरण अथवा किसी बाधा को टालने के लिए आदि। सभी कॉकबरक भाषा–भाषी समुदायों में यह पूजा खासतौर पर मान्य है।

विवाह के शुभ दिन या उससे एक दिन पहले कुछ आभूषण, पारंपरिक पोशाक एवं शृंगार की वस्तुओं के साथ लड़के वाले बैंडबाजे के साथ लड़की वालों के यहाँ जाते हैं। लड़की के घर बारात पहुँचने के बाद छह से आठ–नौ साल के दो बच्चे (लड़के या लड़की दोनों हो सकते हैं), जिन्हें 'आयो' कहते हैं, बैंडबाजे के साथ दो नए घड़े लेकर नदी घाट पर जाते हैं। घाट पर पहुँचकर अचाई (पुजारी) द्वारा 'तोयबुकमा' (जलदेवी) की पूजा की जाती है, फिर 'आयो' दोनों घड़े पानी से भरकर घर लाते हैं, जिनसे दुल्हन को नहलाया जाता है, इसके बाद वर पक्ष द्वारा लाए गए वस्त्र लड़की को पहनाकर, आभूषण एवं शृंगार की वस्तुओं से उसे सजाया जाता है। यह कार्य 'रांदिनीजोक' (लड़के वालों की ओर से भेजी गई, विवाहित एवं जिम्मेदार महिला) द्वारा ही संपन्न किया जाता है। यह कोई आत्मीयजन या गाँव की कोई समझदार स्त्री भी हो सकती है। लड़की की साज–शृंगार के बाद अचाई (पुजारी) द्वारा द्वार पूजा की जाती है। इसके बाद विदाई की रस्म पूरी की जाती है। लड़की द्वारा सबसे पहले अचाई, फिर माता–पिता एवं अन्य बुजुर्गों के पाँव छूकर आशीर्वाद लिया जाता है। इसके बाद लड़के वाले बैंडबाजे के साथ लड़की की विदाई कराके ले जाते हैं, साथ में तीस से चालीस की संख्या में लड़की के रिश्तेदार एवं गाँव वाले भी जाते हैं। विदाई के समय लड़के वालों की ओर से लड़की के सारे परिवार–परिजनों एवं गाँववालों को लड़के के यहाँ दिए जाने वाले प्रीति–भोज के लिए निमंत्रण दिया जाता है। विदाई के दिन लड़की वाले भी सामर्थ्य के अनुसार लड़के वालों की ओर से आने वाले बारातियों एवं अपने सारे रिश्तेदार और गाँव वालों के लिए भोज का आयोजन करते हैं। इसकी जिम्मेदारी सारे गाँव वाले ही मिलकर उठाते हैं। गौरतलब है कि जमातिया जनजाति में चूंकि विवाह लड़के के घर किया जाता है इसलिए यहाँ दो तरह के बाराती होते हैं, एक जो लड़के वालों की ओर से लड़की का विदाई कराने लड़की के घर आते हैं, उन्हें 'हांजोक नाफाइनाइरंग' कहा जाता है। दूसरे बाराती वे होते हैं जो लड़की को उसके ससुराल पहुँचाने जाते हैं। वे 'हांजोक तुनाइरग' कहलाते हैं।

(5) हांजोक नखला सकफाइमा (बारातियों का लड़के के घर पहुँचना)

बारातियों के लड़के के गाँव पहुँचते ही पूरे गाँव में खुशियों की लहर दौड़ पड़ती है। लोग बारातियों के स्वागत में जुट जाते हैं। बारातियों के लड़के के घर पहुँचने पर लड़के के घर से एक घर छोड़कर दूसरों के घर में होने वाली दुल्हन एवं उसके साथ आने वाले आत्मीयजनों को ठहराया जाता है। यदि विवाह का शुभमुहूर्त या लग्न उसी दिन का है तो अचाई (पुजारी) के निर्देशानुसार लड़के और लड़की दोनों को विवाह–मंडप ले जाने की तैयारी तुरंत की जाती है। इसके लिए सबसे पहले लड़के वालों की ओर से चुने गए 'आयो' बैंडबाजे के साथ दो नए घड़े लेकर नदी के घाट पर जाते हैं। घाट पहुँचकर अचाई द्वारा 'तोयबुकमा' (जलदेवी) की पूजा की जाती है, फिर 'आयो' दोनों घडों में पानी भर लाते हैं। जिनसे दूल्हे एवं दुल्हन को नहलाया जाता है। उसके बाद दूल्हा–दुल्हन को अलग–अलग घर या कमरे में ले जाकर आगे की रस्म के लिए तैयारी की जाती है। वर पक्ष की ओर से ही दुल्हे को पारंपरिक पोशाक एवं दुल्हन को पारंपरिक पोशाक के साथ आभूषण दिए जाते हैं। विवाह के दौरान दूल्हा धोती–कुर्ता पहनता है एवं सिर पर पगड़ी बाँधता हैं। दुल्हन रिगनाई-रिसा (पारंपरिक पोशाक) पहनती है, सिंदूर लगाती है तथा सोने–चाँदी के गहनों के साथ शंख के बने कंगन और गले में फूलों की माला पहनती है।

(6) हाया कामा (फेरे लेना)

विवाह मंडप जाने से पहले दूल्हा–दुल्हन कोथार चिब्रुई मोताई (चौदह देवता) के आशीर्वाद लेते हैं। जमातिया जनजाति में कोथार चिब्रुई मोताई (चौदह देवता) की स्थापना मुख्य घर के द्वार के सामने ही की जाती है। प्रतीक रूप में चौदह वाथोई[13] बाँस के छोटे–छोटे टुकड़े द्वार के सामने गाड़े जाते हैं। चौदह देवताओं की स्थापना से पहले स्थान या जगह को पवित्र किया जाता है। जगह पवित्र करने के बाद उसे वाथोई

बाँस से बेड़ा बनाकर सुरक्षित किया जाता है और उसके दो प्रवेश द्वार बनाए जाते हैं। दूल्हा-दुल्हन के तैयार होने के पश्चात् अचाई के निर्देशानुसार वे इसी बेड़ा के अंदर सबसे पहले आते हैं, उनके बेड़ा के भीतर आते ही अचाई द्वारा चौदह देवताओं की पूजा की जाती है। उसके बाद दूल्हा-दुल्हन चौदह देवताओं का आशीर्वाद लेते हैं। इसके बाद दूल्हा-दुल्हन 'हाया' की ओर आगे बढ़ते हैं। जमातिया समाज में 'हाया' (विवाह-मंडप) सीढ़ीनुमा बनाया जाता है। ऊँची सीढ़ी पर दूल्हे और निचली सीढ़ी पर दुल्हन को फेरों के बाद खड़ा किया जाता है। 'हाया' के भी दो द्वार बनाए जाते हैं। ये द्वार चौदह देवताओं के लिए बनाए गए बेड़े के द्वार के ठीक सामने होने चाहिए। मान्यता है कि इन्हीं द्वारों के माध्यम से दूल्हा-दुल्हन को देवताओं का सीधा आशीर्वाद प्राप्त होता है। 'हाया' के चारों तरफ सात वाथोई[15] बाँस की चोटियाँ गाड़ी जाती हैं। जो कि साल (सूर्य), ताल (चंद्रमा), नकबार (पवन), तुईमा (जल देवी), हा (धरती), कोथार चिबरोई मोताई (चौदह देवता) एवं जाइति-गुस्ति (वंश) के प्रतीक होते हैं। जिन्हें साक्षी मानकर दूल्हा एवं दुल्हन सामाजिक बंधन में बँधते हैं अर्थात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं। फेरों के बाद आशीर्वाद के रूप में पवित्र जल दूल्हे-दुल्हन पर छिड़का जाता है। पानी छिड़कने का यह अनुष्ठान शादीशुदा जोड़ी से ही आरंभ किया जाता है। जिसकी शुरुआत प्रायः वर एवं वधू के माता-पिता से होती है, यदि वे जोड़े में न हों तो किसी अन्य जोड़े से यह अनुष्ठान आरंभ किया जाता है। अनुष्ठान का अंत भी तीन शादीशुदा जोड़े के आशीर्वाद से ही होता है। दूल्हा-दुल्हन हमेशा जोड़े में ही रहें, उन पर बुरा साया न पड़े इसलिए यह विधि अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया के बाद 'हाया' अर्थात् विवाह-मंडप की पूजा की जाती है। पूजा समाप्त होते ही 'हाया' को गिरा दिया जाता है। ऐसा नवदंपत्ति को बुरी नजर एवं बुरी आत्माओं से बचाने के लिए किया जाता है। गौरतलब है कि पूर्व में जमातिया जनजाति रात को विवाह नहीं कराते थे, कारण अनेक हैं, जैसे बिजली की व्यवस्था न होना, चोरी, डकैती आदि, किंतु मान्यता यह है कि चूंकि रात अंधकार, विपत्ति, बाधाओं की प्रतीक है, जबकि विवाह उज्ज्वल भविष्य के लिए किया जाता है, जिसके साक्षी साल (सूर्य) हैं, इसलिए विवाह दिन में ही संपन्न कराया जाता था।

(7) नक मुताई रमा (लक्ष्मी की स्थापना)

फेरों के बाद वर-वधू को अलग-अलग कमरों में ले जाया जाता है। इसी बीच दूल्हे की माँ अचाई (पुजारी) के कहे अनुसार घर के सारे द्वारों पर जल छिड़ककर घर को पवित्र करती है और मुख्य घर जहाँ फेरों के बाद दुल्हन के ठहरने की व्यवस्था की जाती है, वहाँ नक मोताई (लक्ष्मी) की स्थापना करती है और छोटे-छोटे तीन नए घड़ो को धान से भरकर उसे कपास और दूब से सजाकर अखंड ज्योति जलाती है। यह ज्योति शादी के दिन से लेकर सातवें दिन तक जलाई जाती है। इसका बुझना अत्यंत अशुभ माना जाता है। अखंड ज्योति की देखभाल दूल्हे की माँ ही करती है। उल्लेख्य है कि शादी के दिन दूल्हा या दुल्हन में से किसी एक का व्रत रखना अनिवार्य है, जब तक शादी की सारी रस्म पूरी नहीं हो जातीं तबतक वह खाना नहीं खाता है। यह व्रत दूल्हा-दुल्हन दोनों एक साथ भी रख सकते हैं। विवाह के दिन दूल्हे का अपने घर में रात बिताना अशुभ माना जाता है इसलिए वह खाना खाने के बाद अपने मित्र के यहाँ सोने चला जाता है।

(8) रि सुमा (फेरे के दौरान पहने गए कपड़ों को धोना)

दूसरे दिन अचाई के निर्देशानुसार दूल्हे की माँ अपनी हमउम्र स्त्रियों के साथ दूल्हा-दुल्हन को लेकर नदी-घाट या पोखर में जाती है और फेरों के वक्त दूल्हा-दुल्हन द्वारा पहने गए कपड़े धोती है और फूलों की मालाओं को पानी में बहा देती है या वहीं किनारे जमीन खोदकर गाड़ देती है, ताकि किसी की बुरी नजर नव दंपत्ति पर न पड़े। ये सारे कार्य दूल्हे की माँ ही संपन्न करती है। उसी दिन एक बड़े भोज का आयोजन लड़के वालों के यहाँ किया जाता है, जिसमें दोनों तरफ के लोग साथ-साथ भोजन करते हैं। भोजन के बाद दूल्हा-दुल्हन को सारे बड़े-बुजुर्ग सुखी दांपत्य जीवन के लिए आशीर्वाद देते हैं। इस रिवाज के बाद ही विवाह संपन्न माना जाता है।

जमातिया जनजाति में तलाक एवं विधवा विवाह दोनों मान्य हैं। तलाक को कॉकबरक भाषा में 'काक लाइमा' कहते है। पति-पत्नी दोनों को तलाक लेने का

समान अधिकार प्राप्त है। जिस व्यक्ति को तलाक लेना होता है, पहले वह अलग होकर रहने लगता है। इस जनजाति में लुकूचकदिरी को एक बोतल देशी शराब और दस रुपए देकर शिकायत दर्ज कराने का रिवाज है। इसके बाद लुकूचकदिरी गाँव वालों की बैठक बुलाता है और सबकी राय इस संबंध में जानने के बाद चकदिरी दिन तय करता है और इसकी सूचना दूसरे पक्ष के लुकूचकदिरी को दी जाती है। सूचना मिलने के बाद वह भी अपने गाँव में बैठक बुलाता है और दूसरे पक्ष को बुलाकर पूछताछ करता एवं करवाता है। बात पक्की होने पर वह निर्धारित दिन एवं समय में उस गाँव में समझदार तीन-चार बुजुर्गों को आरोपी व्यक्ति के साथ सभा में अथवा बैठक में उपस्थित होने का निर्देश देता है। बात पेचीदा होने पर स्वयं लुकूचकदिरी बैठक में शामिल होता है। इस तरह एक निर्धारित तिथि एवं समय पर दोनों पक्ष के लोग एक जगह इकट्ठे होते हैं और दोनों पक्ष को सुनने के बाद लुकूचकदिरी द्वारा फैसला दिया जाता है। आरोप सिद्ध होने पर आरोपी पक्ष को कुछ आर्थिक जुर्माना भी अदा करना पड़ता है। दोनों पक्ष में से यदि कोई एक पक्ष लुकूचकदिरी के फैसले से संतुष्ट न हो तो वह पाँचाई के यहाँ अपनी शिकायत दर्ज कर सकता है। शिकायत की प्रक्रिया एक ही है, एक बोतल देशी शराब और कुछ रुपए। पाँचाई के फैसले से भी खुश न हो तो वह हॉदा अक्रा के पास जाकर शिकायत कर सकता है। हॉदा अक्रा द्वारा लिए गए निर्णय को कोई टाल नहीं सकता है, उसे स्वीकारना ही पड़ता है। ऐसा न करने पर व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

यदि विवाह विधवा और विधुर या तलाकशुदा लोगों के बीच होना हो तो अचाई द्वारा केवल 'लांप्रा पूजा' की जाती है, उसमें फेरे की रस्म नहीं होती है, बैंडबाजे आदि नहीं बजाए जाते हैं किंतु विधुर या तलाकशुदा आदमी का विवाह अगर कुंवारी लड़की के साथ होता है तो शादी की पूरी रस्म निभाई जाती है। तलाक की व्यवस्था होने के बावजूद इसे सामाजिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता है।

(ग) मृत्यु-संस्कार

जन्म और मत्यु जीवन का अंतिम सत्य है, जिस पर मनुष्य का वश नहीं चलता है अर्थात् जो दुनिया में आया है तो उसे एक दिन अवश्य जाना है। जमातिया समाज में मृत्यु की खबर सुनते ही रिश्तेदार एवं गाँव वाले तुरंत मृतक के घर जाते हैं, वे मृतक के परिवार वालों को धीरज बँधाते एवं सांत्वना देते हैं, साथ ही सारे लोग दाह-संस्कार में मदद करते हैं। जमातिया परिवार में जब किसी की मृत्यु होती है, तब समाज की मान्यता के अनुसार निम्नलिखित संस्कार कर्म किए जाते हैं, यथा-

(i) कोथोई नखला कारिमा (मृतक को आंगन में निकालना)

मृत्यु होते ही उत्तर या दक्षिण की तरफ सिर करके मृतक को जमीन पर लिटा दिया जाता है। रिश्तेदार एवं सगे-संबंधी मृतक को तेल आदि लगाते हैं। तेल मालिश के बाद मृतक को हल्दी मिश्रित गरम पानी से नहलाया जाता है। उसे नए वस्त्र पहनाकर तैयार किया जाता है। इसी बीच बड़े-बुजुर्गों एवं अचाई के निर्देशानुसार गाँव वाले 'तलाई' (अर्थी) तैयार करते हैं। 'तलाई' तैयार होने के बाद मृतक को घर से बाहर निकालकर तलाई पर लिटा दिया जाता है। इसके बाद 'मायखोलाई पूजा'[16] की जाती है। जमातिया जनजाति में दो मायखोलाई दी जाती है, एक मृतक के लिए, दूसरा लपति[17] के लिए। यह पूजा अचाई के निर्देशानुसार मृतक के बेटे और बेटियाँ करते हैं। पूजा के दौरान मृतक और देवदूत को भोजन के लिए निवेदन किया जाता है। मृतक के सारे संतान देवदूत को इस बात के लिए भी निवेदन करते हैं कि वे रास्ते में किसी प्रकार का दुख-कष्ट मृतक को न दें, उसे सुरक्षित अपने साथ ले जाएँ आदि। पूजा के बाद सारे लोग मृतक को अपनी ओर से फूल-फल, रुपए, कपड़े आदि चढ़ाते हैं। यह क्रिया समाप्त होने के बाद 'तलाई' (अर्थी) को कंधा देने के लिए बेटों को बुलाया जाता है। मृतक को कंधा बेटों द्वारा ही दिया जाता है। बेटे न होने की स्थिति में भाई, भतीजा, पोते आदि देते हैं। वे 'तलाई' (अर्थी) को उठाकर बाएँ से दाएँ तीन बार उसी जगह घुमाते हैं। उसके बाद हरि कीर्तन के साथ श्मशान यात्रा की जाती है। रास्ते में सिक्कों को अर्थी के ऊपर से फैंके जाने की प्रथा है। उल्लेख्य है कि यदि घर में कोई बुजुर्ग व्यक्ति है तो वह परिवार पहले से ही सिक्कों को इकट्ठा करना शुरू कर देता है।

(ii) कोथोई सकमा (दाह-संस्कार)

श्मशान पहुँचने के बाद अचाई (पुजारी) द्वारा श्मशान पूजा की जाती है। इसी बीच मृतक को पुनः

नदी में नहलाया जाता है। मृतक को नहलाने के बाद श्मशान में अर्थी को बाएँ से दाएँ तीन बार घुमाया जाता है। उसके बाद मृतक को उसके लिए बनाए गए 'बरुङ' (चिता) पर उत्तर दिशा की ओर सिर करके लिटा दिया जाता है। मृतक को चिता पर लिटाए जाने के पश्चात् दो मशाल तैयार किए जाते हैं, यदि मृतक के एक से अधिक बेटे हों तो बेटे ही मशाल पकड़ते हैं, न हो तो भाई, भतीजा, पोते आदि को यह अधिकार दिया जाता है। मशाल तैयार होने के बाद सारे रिश्तेदार, गाँव वाले मिलकर चिता का चक्कर लगाते हैं। मशालों को पकड़ने वाले बेटे या अन्य कोई बीच में खड़े होते हैं, एक चक्कर पूरा होते ही मशालों को एक-दूसरे से छुआने का रिवाज है, इस तरह तीन बार बाएँ से दाएँ सारे लोग चिता का चक्कर लगाते हैं। यह क्रिया समाप्त होते ही बड़े बेटे के द्वारा चिता को मुखाग्नि दी जाती है। चिता को मुखाग्नि देने के बाद सारे लोग नदी में नहाते हैं और कुछ लोगों को छोड़कर सारे लोग मृतक के घर वापस आते हैं। चिता के साथ कोई छेड़छाड़ न कर सके इसलिए मृतक के जलकर राख होने तक कुछ लोग वहीं रहते हैं। मृतक के घर वापस आकर सारे लोग आंगन में रखे हुए तुलसी पत्ते से खुद पर पानी छिड़ककर, कच्ची हल्दी को शरीर के जोड़ों पर लगाकर दाव को दाँतों से छुआते हैं और घर में प्रवेश करने से पहले आग तापते हुए थोड़ा-सा नमक चखते हैं। जो लोग मृतक के घर वापस नहीं आते हैं वे अपने घर जाकर यह क्रिया करते हैं। गौरतलब है कि मृतक के घर पहुँचने से पूर्व या श्मशान में ही सभी लोग दो घासों या दो छोटी डालियों की गाँठ बाँधकर मृतक को इस दुनिया के सारे बंधनों से मुक्त कर दिया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार यह गाँठ इसलिए भी बाँधी जाती है, जिससे मृतक को दूसरी दुनिया में जाकर नए संबंध मिलें। घर लौटते वक्त पीछे मुड़कर देखना निषिद्ध है।

उल्लेख्य है कि सुहागन स्त्री का संस्कार पति द्वारा पूरा किया जाता है। अविवाहित युवक-युवतियों का दाह-संस्कार केले के पेड़ के साथ किया जाता है। दस से कम उम्र के बच्चे को मुखाग्नि नहीं दी जाती है बल्कि उन्हें दफनाया जाता है।

(iii) बेरा हामा (बेड़ा-घुसना[18])

दाह-संस्कार के दिन ही सारे आत्मीय-स्वजन और गाँव के बड़े-बुजुर्ग मिलकर यह निर्णय लेते हैं कि बेड़ा[19] के अंदर कौन रहेगा। मृतक के सारे बेटों को बेड़ा/घेरा के अंदर रहना अनिवार्य है, बेटे न होने की स्थिति में भाई, भतीजा एवं पोते बेड़ा के अंदर रहते हैं। इसके अतिरिक्त परिवार के बाहर से अन्य व्यक्ति किंतु रिश्तेदार, जो तेरह पीढ़ी के अंतर्गत आते हों, उसका चयन किया जाता है। जो तेरह दिन तक बेड़ा के अंदर रहकर मृतक के बेटों का, उनके खाने-पीने एवं सोने का ख्याल रखेंगे। मृतक के सारे बेटे अगले तेरह दिन तक केवल फलाहार करते हैं। बेड़ा/घेरा के अंदर रहने वाला रिश्तेदार तेरह दिन तक निरामिष भोजन करता है। उसका भोजन बेड़ा के अंदर ही बनता है, भोजन बनने के बाद प्रत्येक दिन मृतक को भोग लगाया जाता है, इसे जमातिया समाज में 'बेकेरेंग बारकमा' कहा जाता है। मृतक के सारे बेटे भी फलाहार बेड़ा के अंदर ही करते हैं। मृतक की कोई अविवाहित बेटी है तो उसे भी तेरह दिन तक फलाहार का अधिकार दिया जाता है। श्राद्ध से पहले बेटों का खाट, पलंग आदि पर सोना निषिद्ध हैं। उन्हें जमीन पर ही बैठना एवं सोना होता है। बाकी सारे रिश्तेदार तेरह पीढ़ी वाले तेरह दिन एवं तीन पीढ़ी वाले तीन दिन तक मृतक के नाम पर निरामिष खाते हैं और जब तक यह संस्कार चलता है तब तक उनके लिए किसी भी सामाजिक एवं धार्मिक पूजा स्थलों में जाने की मनाही हैं।

दाह-संस्कार के दूसरे दिन मृतक के बेटे एवं गाँव के बड़े-बुजुर्ग श्मशान जाकर हड्डियाँ चुनते हैं। हड्डियाँ चुनने के बाद श्मशान की सफाई कर राख को पानी में बहा दिया जाता है। कॉकबरक में इस क्रिया को 'थापला हुकमा एवं बेकेरेंग खलमा' कहा जाता है। हड्डियों को वाथोई बाँस के चोंगे में भरकर बाँस से बने हुए बेड़ा/घेरा में बाँध दिया जाता है। जमातिया समाज में मृत्यु के दिन से तेरह दिन तक मृतक के नाम पर लगातार कीर्तन किया जाता है। इसे समाज में अत्यंत शुभ माना जाता है और इसकी जिम्मेदारी गाँव वाले ही मिलकर उठाते हैं। ध्यातव्य है कि इसी दिन बेटों को मृतक के कफन से बनाया हुआ 'दरा' अर्थात् पोइदा पहनाया जाता है।

(iv) श्राद्ध-संस्कार

जमातिया समाज में श्राद्ध-कार्य तीन प्रकार से किया जाता है-

भाषा ISSN 0523-1418

(अ) तीन

मृत्यु के तीसरे दिन पर किए जाने वाले श्राद्ध को 'तीन' कहा जाता है। यह श्राद्ध-कर्म मृतक की बेटियाँ एवं मृतक की माँ के रिश्तेदार करते है। अट्ठारह महीने से कम उम्र के बच्चे की मृत्यु पर भी त्रि-रात्रि श्राद्ध ही किया जाता है। यही सामाजिक रीति है। हर प्रकार के श्राद्ध कर्म में कीर्तन करवाया जाता है।

(आ) हरसिनि

मृत्यु के सातवें दिन पर किया जाने वाला श्राद्ध 'हरसिनि' कहलाता है। पूर्व में जमातिया समाज में 'हरसिनि श्राद्ध' ही सबसे ज्यादा प्रचलित था। उल्लेख्य है कि 'हरसिनि श्राद्ध' एवं 'तेरो दिन श्राद्ध' विधि में कोई अंतर नहीं है।

(इ) तेरो दिन

मृत्यु के तेरहवें दिन पर किया जाने वाला श्राद्ध 'तेरो दिन' कहलाता है। इस दिन मृतक के रिश्तेदार एवं गाँव वाले मृतक के घर आकर श्राद्ध कार्य में मदद करते हैं। सारे रिश्तेदार अपनी सामर्थ्य के अनुसार रुपए-पैसे की मदद करते हैं, गाँव के प्रत्येक परिवार से एक-दो किलो चावल, निर्धारित रकम और एक बोतल देशी शराब मृतक के परिवार वालों को दिए जाने की प्रथा है। सामान्य तौर पर यह रकम गाँव की जनसंख्या पर निर्भर करती है। यदि मृतक का परिवार आर्थिक रूप से कमजोर है तो लुकूचकदिरी के आदेश पर यह राशि बढ़ाई भी जा सकती है।

बारहवें दिन पूरी रात मृतक के नाम पर कीर्तन किया जाता है। दूसरे दिन अर्थात् तेरहवें दिन मृतक के नाम पर भोर में 'तखा मायखोलाई' यानी पशु-पक्षियों को भोजन-दान दिया जाता है। यह क्रिया साँझ ढलने के बाद एक बार फिर की जाती है। मान्यता है कि तेरहवें दिन मृतक किसी भी रूप में आकर भोजन करता है, इसलिए इस दिन पशु-पक्षियों को मारना या भगाना निषिद्ध हैं। दोपहर में अचाई के आने के बाद 'नखला' (आंगन) में 'गिरि' की स्थापना की जाती है, यह गिरि मृतक के प्रतीक हैं। जो काठ से बनाए जाते हैं। 'गिरि' स्थापना के बाद 'बेकेरेंग' (बाँस के चोंगे जिसमें हड्डियाँ हैं) को 'गिरि' में बाँध दिया जाता है। इसके बाद अचाई द्वारा गिरि की पूजा की जाती है। पूजा के दौरान बेटों एवं बेटियों द्वारा मृतक को भोजन के लिए निवेदन किया जाता है। इसे जमाजिया जनजाति में 'मायखोलाई रमा' कहा जाता है। सारे रिश्तेदार इस पूजा से पहले मृतक के घर आकर अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार दान-दक्षिणा देते हैं, सारी दान-दक्षिणा को 'मायखोलाई' के साथ ही 'गिरि' के सामने रखा जाता है। मृतक द्वारा जीवित रहते हुए व्यवहार में लाए जाने वाले वस्तुओं को भी दान में दिया जाता है। जिसे पूजा के बाद रिश्तेदारों एवं गाँव वालों में बाँट दिया जाता है। बेटे, बेटियाँ एवं बहुएँ भी पूजा के बाद कुछ वस्तुओं को मृतक के स्मृति-चिह्न के रूप में रख सकती हैं। भोजन-दान में दिए गए खाने, फल-फूल आदि को पानी में ही बहाए जाने का रिवाज है। इसे खाना इन्सानों के लिए मनाही है। पूजा के बाद 'दरा' अर्थात् पोइदा को तोड़ा जाता है और सारे बेटे सिर मुंडवाते हैं। इसके बाद सभी तेरह पीढ़ी वाले रिश्तेदार एक-एक करके अचाई के सामने आते हैं और अपने पिता एवं परपिता आदि के नाम अचाई को बताते हैं। वंश या खानदान की जानकारी के बाद अचाई हलङ (पोता) को उनके सर के ऊपर रखकर दाव के आघात से हल्की आवाज निकालते हैं। इस विधि को जमातिया समाज में 'हलङ तकजाकमा' कहा जाता है। इस विधि के बाद सभी मृतक के नाम से दिए गए भोज में शामिल होते हैं। इस दिन सभी आमिष भोजन करते हैं। मृतक के बेटे इस दिन व्रत तोड़ते हैं अर्थात् निरामिष भोजन करते हैं।

(v) गिरि कारिमा/लामगमा

चौदहवें दिन सुबह पुनः गिरि[21] की पूजा की जाती है। पूजा के बाद 'बेकेरेंग'[22] को मुख्य घर के 'तिकार' (बराम्दा) में बाँध दिया जाता है। इसके बाद कीर्तन एवं ईश्वरीय लीला-गीतों के साथ गिरि को बेटे एवं रिश्तेदार मिलकर घर के आंगन से उठाकर ले जाते हैं। उसे आस-पास के पोखर आदि में गाड़ दिया जाता है। गिरि को पोखर आदि में गाड़ने से पहले उस स्थान की पूजा की जाती है। 'दरा' (पोइदा) को उसी समय पानी में बहा दिया जाता है। इस प्रक्रिया को कॉकबरक में 'गिरि लामकमा' कहते हैं। इसके बाद सारे लोग घर वापस आते हैं, अचाई द्वारा पवित्र जल से घर को शुद्ध किया जाता है। इस दिन मृतक के सभी बेटे आमिष भोजन करते हैं।

(vi) बुइसू मायखोलाई रमा (मृतक के नाम अंतिम भोज देना)

मृतक के नाम पर बुइसू अर्थात् गॉरिया पूजा के दिन मायखोलाई यानी भोग देने की प्रथा है। इसे जमातिया समाज में 'बुइसू मायखोलाई' देना कहते हैं। इस दिन भी लांप्रा पूजा की जाती है। घर की साफ-सफाई के बाद लांप्रा पूजा के जल से घर को शुद्ध किया जाता है। इसके बाद मृतक के परिवार वाले सुचिता के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

ध्यातव्य है कि 'बुइसू मायखोलाई' देने से पहले एक और संस्कार किया जाता है। जिसे 'बेकेरेंग खिबिमा' (अस्थि विसर्जन) कहा जाता है। यह कार्य प्रायः पौष संक्रांति के दिन किया जाता है। इस दिन मृतक के बेटे और बेटियाँ अस्थि विसर्जन के लिए तीर्थ यात्रा पर जाते हैं। यात्रा से पूर्व आत्मीय स्वजन द्वारा मृतक के लिए भोजन तैयार किया जाता है, इसके बाद लांप्रा पूजा करके मृतक को मायखोलाई (भोग) दिया जाता है। भोग के बाद तीर्थ पर जाने वालों को आत्मीयजन द्वारा कीर्तन करते हुए ग्राम-सीमा तक विदाई देने की प्रथा है। तीर्थ से लौटने के बाद तीर्थ यात्रियों का स्वागत ग्राम-सीमा पर ही किया जाता है, वहीं उनका शुद्धिकरण किया जाता है। उस दिन घर को भी पुनः शुद्ध किया जाता है। अस्थि विसर्जन किसी भी पवित्र नदी में किया जा सकता है। त्रिपुरा में मुख्य रूप से दुंबूर, बुरिमा नदी, मेलाघर आदि में किया जाता है।

(vii) वार्षिक श्राद्ध

इस प्रकार का श्राद्ध एक साल के बाद मृत्यु तिथि में ही किया जाता है। इस दिन भोर में उठकर 'तखा मायखोलाई' (भोग) दिया जाता है। दोपहर को भी 'दिपर मायखोलाई' (दिन का भोज) मृतक के नाम पर दिया जाता है। पूजा के दौरान कीर्तन दिए जाने की प्रथा है। इस दिन मृतक के नाम पर सभी के लिए एक बड़े भोज का आयोजन किया जाता है। यही अंतिम मृत्यु संस्कार माना जाता है। लांप्रा पूजा द्वारा वार्षिक श्राद्ध के दिन भी घर को शुद्ध किया जाता है। वैष्णव और ईसाई धर्मावलंबी जमातिया अपने-अपने धर्म-नियमानुसार इन संस्कारों को पूरा करते हैं।

जमातिया जनजाति के पारंपरिक जन्म-संस्कार, विवाह-पद्धति एवं मृत्यु-संस्कार में कई रीति-रिवाज एवं पूजाओं का चलन था पर अब शिक्षा, आधुनिकता, शहरीकरण, भूमंडलीकरण एवं बाह्य संस्कृति के प्रभाव से धीरे-धीरे इसमें काफी बदलाव आ गया है। ये सभी संस्कार जमातिया जनजाति को जातीय एवं सामाजिकता की पहचान देते हैं। जिनके अनुपालन से समाज और अधिक संगठित होता है तथा सभी व्यक्ति अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक होते हैं। इन सारे संस्कारों एवं रीति-रिवाजों की जानकारी मैंने श्री कीरिट किशोर जमातिया, पित्रा कामि[23], श्रीमती ज्योतत्स्ना रानी जमातिया, खुमपोईलोंग कामि, श्रीमती नलिनी कन्या जमातिया, श्रीमती कर्णरानी जमातिया, रायो कामि एवं श्रीमती मालती कन्या, हदराई कामि, श्री रबिसादन जमातिया, कुवार कामि, श्री सुबर्ण जमातिया, आथरोबोला कामि, श्री बिनंदो जमातिया, तेलियामुरा आदि से ली हैं।

संदर्भ

1. यह जनजाति 'बरक' समुदाय के अंतर्गत आती है, जिसमें मुख्य रूप से आठ जनजातियाँ आती हैं, यथा- त्रिपुरी/देबबर्मा, रियांग, जमातिया, नोवातिया, कलई, उचई, मुरासिंह एवं रूपिनी।

2. लोक देवता

3. दक्षिण एवं पश्चिम क्षेत्र

4. उत्तर एवं पूर्व क्षेत्र

5. हॉदा अकरा के बाद का ओहदा

6. शुद्धिकरण, विपत्ति निवारण आदि के लिए की जाने वाली पूजा

7. दाईमा

8. सहयोगी दाईमा

9. मंत्रोच्चारित कच्चे हल्दी के टुकड़े, सरसों के बीज एवं चावल के कुछ दाने।

10. पुजारी

11. मान्यताओं के अनुसार यह बाँसों का राजा है, सबसे पवित्र एवं श्रेष्ठ, इसलिए हर शुभ कार्य में इसी बाँस का प्रयोग किया जाता है।

12. बाधाओं एवं विपत्तियों को दूर करने के लिए यह पूजा की जाती है।

13. बाँसों के प्रकारों में से एक है। जिसे जमातिया जनजाति बाँसों का राजा मानती है, इसे सबसे अधिक पवित्र माना जाता है। हर पूजा में इसी बाँस का प्रयोग किया जाता है।

भाषा ISSN 0523-1418

14. विवाह-मंडप, जो कि सात पहाड़ों की मिट्टी से बनाया जाता है।

15. पवित्र बाँस, जिसे जमातिया जनजाति बाँसों का राजा मानती है। हर शुभ अवसर पर परइसी बाँस का प्रयोग किया जाता है।

16. मृतक को दिया जाना वाला भोजन

17. देवदूत

18. मृतक के बेटों के लिए बाँस द्वारा बनाया गया घेरा।

19. मृतक के पुत्र एवं रिश्तेदारों के लिए आँगन में बनाए गए बाँस का बेड़ा/घेरा, मृतक के बेटों को तेरह दिन तक इसी बेड़ा के अंदर खाना-पीना करना होता है।

20. मृतक के पुत्र एवं रिश्तेदारों के लिए आँगन में बनाए गए बाँस का बेड़ा, मृतक के बेटों को तेरह दिन तक इसी बेड़ा के अंदर खाना-पीना करना होता है।

21.यह मृतक के प्रतीक हैं, जो आँवला या फिर चंदन के पेड़ से बनाया जाता है।

22. अस्थियाँ

23. जनपद

– सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, त्रिपुरा

❑❑❑

संस्कृत साहित्य में कुंभ और प्रयाग

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

'कुंभ' का अर्थ है- घट, घड़ा। इस घट में अनेक प्रतीकार्थ समाहित हैं।

यह घट है - ज्ञान का, समृद्धि का, संस्कृति का, जीव की परम सत्ता का, सृष्टि के उपादानों का, भारतीय तत्व ज्ञान के अंगीभूत उपादानों का। यही नहीं यह सृष्टि के सभी और अज्ञेय तत्वों का पूंजीभूत भी है। दूसरे शब्दों में यह सत्य है और ऋत भी। यह पंच महाभूत है। दिक् है। काल है। त्रिपाद है। यज्ञ-गर्भ है। सर्वभूत तत्व है। त्रिदेव हैं। वाक् है और वाक् की समस्त सत्ताएँ इसमें समाहित हैं। 'किम् न कुंभे' है।

कुंभ की ये समस्त शब्द-संज्ञाएँ पाठकों के मन में कौतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न कर सकती हैं। इन्हीं जिज्ञासाओं का उन्मोचन इस विमर्श का लक्ष्य है।

इसके स्रोत हमारे वैदिक, औपनिषदक, पौराणिक और लौकिक साहित्य में उपलब्ध हैं।

हमारा पुराण साक्ष्य यह कहता है-

देव दानव संवादे मध्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽस्तिदा कुंभ विधृतो विष्णुना स्वयम्।।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवा: सर्वे त्वयि स्थिता:
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणा: प्रतिष्ठिता:
ब्रह्मणा निर्मितस्त्वं हि मंत्रैश्चैवामृतोपमै:
पार्थयामि च त्वां कुंभ वाच्छितार्थ प्रयच्छमे।।

तात्पर्य यह कि कुंभ विष्णु की सर्वमयी सत्ता का द्योतक और समस्त समीहा का पूरक है।

यह हरिण्यगर्भ जल-कुंभ है। सृष्टि का सारभूत है। हमारे मंत्रों में आगत 'कस्मै' पद सुख रूप इसी जल को इंगित करता है। इसी को तीर्थ (=जल) कहा गया। इसी में अपनी शैय्या बनाकर नारायण समस्त विश्व का विधान करते हैं।

संस्कृत में अपा: या जल को 'नार' कहा गया है, यह नार ही जिनका 'अयन' गति या अधिष्ठान है, वह है 'नारायण'। इन्हीं नारायण की त्रिपाद विभूति से हरिद्वार, नासिक एवं उज्जैन में तथा विश्वोतीर्ण चतुर्थ चरण में प्रयाग में तीनों पदों का पुंजीभूत सिद्ध जी का प्राकट्य हुआ। कहने का तात्पर्य यह कि यही स्वर्ण गर्भा, ज्ञानगर्भा वरदावागधीश्वरी है। यही हमारी आस्तिकता का आधार भी है।

श्रुत्यानुसार 'हिरण्य गर्भ' ही हमारी सृष्टि का आधार है। इसी का संकेत ईशावास्योपनिषद में मिलता है-

हिरण्य मयेनपात्रेण सत्यस्यापहितो मुखम्।

यहाँ 'पिहित' का अर्थ 'निहित' अथवा 'अधिष्ठित' है। वह यही कुंभ है।

इसी के लिए यह उद्घोष किया गया- 'पात्रं पूर्णतरं कुरु'। यजमान प्रार्थना करता है-

देवनाथो गुरोस्वामिमन् देशिक स्वात्मनायक।
पाहि पाहि कृपासिन्धो पात्रं पूर्णतरं कुरु।।

ऋग्वेद के मंत्रों में इसका स्तवन मिलता है- मही द्यौ: पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभि: (1-12-13) अर्थात् महती पृथिवी और द्यौ के अधिदेव हमारे इस यज्ञकर्म को मेहन रूप सिंचन से सफल करें। महानारायणोपनिषद में इसकी स्पष्ट मीमांसा की गई है-

 भाषा ISSN 0523-1418

'ओं आपो वा इदं सर्व विश्वा भूतान्याप: प्राणा वा आप: पशव आपोऽन्नमापोऽमृतमाप: सम्राडापो: विराडाप: स्वराडापश्छन्दां स्यापो ज्योतीष्यापो यजूंष्यप:

सत्यमाप: सर्वा देवता आपो भूर्भुवस्युवराप ओइम्।

उपर्युक्त मंत्र के द्वारा कुंभकाल में चेतना को उर्ध्वमुखी करने की प्राचीन परंपरा का निदर्शन किया गया है।

समुद्रमंथन के पौराणिक आख्यान इसके स्रोत हैं। श्रीमद्भागवत और मत्स्य पुराण (249-251) विष्णुपुराण (1.9) हरिवंश पुराण (30-31) वायुपुराण (अध्याय 192) स्कंदपुराण (अध्याय 9,10,11) पद्मपुराण (अध्याय 8,9,10) और वाल्मीकि रामायण बालकांड के अध्याय 15 में इसका विशद विवेचन हुआ है। महाभारत के आदि पर्व (अध्याय-17-18) में भी इसका वृत्तांत मिलता है। इस अमृत कुंभ की रक्षा में सूर्य, चंद्रमा, बृहस्पति और शनि की महत्वपूर्ण भूमिका रही -

चन्द्र: प्रस्रवणाद्राक्षां सूर्यो विस्फोटनाद् दधौ।
दैत्येभ्यश्च गुरू रक्षां शौरिर्देवेन्द्रजं भयात्।।

अमृत कुंभ के संरक्षण की कालावाधि में सूर्य और अन्य ग्रह जिन राशि में थे, उन्हीं में उन ग्रहों के उपस्थित होने पर कुंभ (पर्व) योग घटित होता है। पूर्वोक्त देवों के बारह दिन मनुष्यों के बारह वर्ष होते हैं। इस प्रकार बारह वर्षों में बारह कुंभ होते हैं - इनमें से आठ 'देव-कुंभ' अन्य लोकों में होते हैं। और चतु: स्थानीय चार कुंभ मनुष्यों के हेतु (पृथिवी) पर अर्थात् भारतवर्ष में होते हैं।

देवानां द्वादशाहोम्भिर्मर्त्यैर्द्वादशवत्सरै:।
जायन्ते कुंभपर्वाणि तथा द्वादशसंख्यया।।
भारते भुवि तुर्य्या: स्युर्नृणां कल्याणहेतवे।
अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवै: गम्या न चेतरै:।।

पृथिवी पर (भारत में) जिन चार स्थानों पर अमृतकुंभ छलका या गिरा अथवा रखा गया, वे हैं- हरिद्वार, प्रयाग, उज्जयिनी और नासिक-

चतु: स्थले निपतनात् सुधाकुंभस्य भारते।
गङ्गाद्वारे प्रयागे चोज्जयिन्यां नासिके तथा।
कलशाख्यो हि योगोऽयं प्रोच्यते शङ्करादिभि:।।

इन चारों स्थानों पर प्रत्येक बारह वर्ष में एक बार कुंभपर्व घटित होता है ।

मेष राशि में सूर्य और कुंभ राशि में गुरु के होने पर हरिद्वार में कुंभयोग होता है-

पद्मिनीनायको मेषे कुंभराशिगतो गुरु: ।
गङ्गाद्वारे भवेद्योग: कुंभ नामा तदोत्तम: ।।

सूर्य, गुरु और चंद जब एक साथ तुला राशि में होते हैं, तब उज्जयिनी (धारा) में कुंभयोग होता है-

घटे सूरि: शशी सूर्य: कुह्वा दामोदरो यदा ।
धारायां च तदा कुंभो जायते खलु मुक्तिद: ।।

और भी-

तुलाराशौ शशी सूर्यो मेषे सिंहे गुरुर्यदा ।
उज्जयिन्यां भवेत् कुंभ: 'सिंहस्थ:' स च मुक्तिद:।।

उज्जयिनी में घटित कुंभ पर्व को 'सिंहस्थ पर्व' भी कहा जाता है । जब गुरु सिंह राशि में आता है तब नासिक में कुंभयोग होता है-

यस्यां तिथौ मृगेन्द्रेण युक्तो देवगुरुर्भवेत् ।
तस्यां तु गौतमी स्नानं कोटि जन्मौघनाशनम् ।।

उपर्युक्त चारों स्थानों में घटित होने वाले कुंभ पर्वों में सर्वाधिक माहात्म्य प्रयाग में घटित कुंभपर्व का स्वीकार किया गया है। हरिद्वार में गंगा, उज्जयिनी में शिप्रा और नासिक में गोदावरी के पवित्र जल में यह अमृत स्नान होता है। प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों के पावन त्रिवेणी संगम के कारण प्रयाग की महिमा 'तीर्थराज' के रूप में विख्यात है। यही कारण है कि प्रयागस्थ कुंभ का सर्वाधिक महत्व है।

जब मकर राशि में सूर्य और मेष या वृष राशि में बृहस्पति होते हैं, तिथि अमावस्या होती है, तब प्रयाग में कुंभ योग घटित होता है-

प्रयागे भास्कर क्षेत्रे मकरस्थे रवौ सति।
मेषे जीवे मृगे चन्द्रे कुंभाख्यो योग उच्यते ।।
मकरे च दिवानाथे वृषराशिगते गुरौ ।
प्रयागे कुंभयोगो वै माघमासे विधुक्षये ।।

प्रयागस्थ कुंभपर्व के संबंध में एक प्राचीन श्लोक इस प्रकार है-

यदा स्यातां वक्रे दिनकर निशेशौ खगरवौ
सुमन्त्री देवनां रविसुतयुतोऽमी खलु यदा।
श्रुतिर्विश्वं माघे शमयति च विश्वाघमखिलं।
त्रिवेणी कुंभोऽस्मिन् ननु नरकपातश्च न भवेत्।।

एतदनुसार, प्रयाग कुंभ के लिए माघी अमावस्या मेष या वृष राशि का गुरु, श्रवण या धनिष्ठा नक्षत्र के पूर्वार्धजन्य मकरराशि में चंद्र और सूर्य का होना आवश्यक है। प्रयाग से विश्व के सभी तीर्थ उत्पन्न हुए हैं, अन्य

तीर्थों से प्रयाग की उत्पत्ति नहीं है, यही कारण है कि प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं।

प्रश्न उठता है, ऐसा क्यों? इस प्रश्न का उत्तर मिलता है पद्मपुराण के पतालखड़ के सातवें अध्याय के श्लोक सात में लिखा है कि जिस प्रकार जगत की उत्पत्ति ब्रह्मांड से होती है जगत से ब्रह्मांड उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार प्रयाग से अन्य तीर्थों की उत्पत्ति है।

श्री वेणी माधव ही सृष्टि, स्थिति और विनाश करने वाले हैं और वे ही इस प्रयाग क्षेत्र के अधिष्ठाता हैं। वे लक्ष्मी के साथ प्रयाग में विराजते हैं और उनका शाश्वत निवास स्थल अक्षयवट प्रयाग क्षेत्र का शिरोमणि हैं, यथा:-

चराचरस्वरूपो यस्तऽवस्थिति नाशक:
भाधवो वसते यत्र स लक्ष्मीक: सदामुदा (8)
क्षेत्रचूड़ामणिर्यत्र राजतं वटवृक्षराट्,
शुलितांडव संहष्टमाघवोवात मंगल: (9)

इस वट वृक्ष के पास त्रिशूलधारी शिव तांडव नृत्य करते हैं जिससे प्रसन्न होकर श्री माधव लक्ष्मी के साथ वृक्षराज अक्षयवट पर विराजते हैं। यही वेणी माधव का अर्थ है। इसीलिए प्रयाग को वेणी माधव क्षेत्र कहते हैं।

प्रयागराज में आठ नाटकों का उल्लेख मिलता है त्रिवेणीं माधवं सोमं भारद्वाजं च् वासुकिम् वन्देऽक्षयवहं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्।।

प्रयाग को विराट पुरुष का मस्तक कहा गया है, सातों पुरियाँ (अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन और जगन्नाथपुरी) उस विराट पुरुष की सप्तधातु हैं, नदियाँ नाड़ी हैं, मेघ केश हैं और पर्वत हड्डियाँ हैं, ऐसे विराट पुरुष का मस्तक प्रयाग है। जहाँ त्रिवेणी हैं, दोनों छिद्रों से ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ जलती हैं। ईड़ा का स्वभाव शीतल है जो गंगा नदी है। पिंगला का स्वभाव उष्ण है जो यमुना नदी है। और गंगा-यमुना के मध्य में जो संगम है उसका स्वभाव शीतोष्ण है वही सुषुम्ना नाड़ी है। इसी कारण संगम स्थल को वेणी माधव का क्षेत्र कहा गया है। बायीं नासिका क्षेत्र में जो स्वर है वह ईड़ा का है, दाहिनी में पिंगला का है और जब दोनों छिद्रों में स्वर चलता हो तब सुषुम्ना नाड़ी चलती है। प्रयाग में गंगा बायें भाग से आती है और यमुना दाहिने भाग से और दोनों का संगम पूर्व और दक्षिण कोण में, जिसे अग्निकोण कहते हैं, होता है। योग की दृष्टि से संगम का मूल हैं ईड़ा-पिंगला नाड़ियों के मूल का प्रत्यक्ष करना अर्थात् मुक्ति प्राप्त करना। प्रयाग क्षेत्र को माधव क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। स्थानीय स्तर पर बारह माधव हैं[2]।

प्रयाग क्षेत्र का विस्तार पाँच कोस में है। इसके षटकोण हैं। प्रयाग वास सब यज्ञों से श्रेष्ठ कहा गया है। प्रयाग को षटकूल क्षेत्र भी कहते हैं। गंगा का दो किनारा, यमुना का दो किनारा और संगम का दो किनारा सब मिलाकर प्रयाग में छह तट होते हैं। इसीलिए इसे षटकूल क्षेत्र कहते हैं।

प्रयाग वेदी स्वरूप है, जो तीन प्रकार की है, अंतर्वेदी मध्यवेदी और बहिर्वेदी। इन तीन वेदियों के बीच निवास करने वालों के लिए प्रयाग क्षेत्र कल्पलता के समान फलदायी है। ज्ञानी-अज्ञानी को यहाँ समान फल मिलता है। यहाँ ज्ञान और भक्ति की अविरल धारा बहती है और ब्रह्मज्ञान का प्रकाश होता रहता है। यहाँ एक रात्रि भी निवास करने वाले को भक्ति रूपी फल मिलता है। इसकी महत्ता को सर्वप्रथम ब्रह्मा ने समझा और यहाँ दस अश्वमेघ यज्ञ किए। उसी स्मृति में प्रयाग में अनंत फल देने वाला दशाश्वमेध घाट है। गंगा के दशाश्वमेध घाट पर स्नान करने वाले वर्ष पर्यंत स्नान करते हैं। प्रयाग विष्णु क्षेत्र है, किंतु इसे विष्णु प्रजापति क्षेत्र भी कहते हैं। ब्रह्मा के दस अश्वमेघ यज्ञों से प्रसन्न होकर माधव ने अपने क्षेत्र के साथ ब्रह्मा का नाम भी जोड़ दिया था।

ब्रह्मा के यश को सफल करके माधव वट वृक्ष की ओर चले तो वहाँ उन्होंने शिव को तांडव नृत्य करते देखा। शिव नृत्य करते समय माधव-माधव रट रहे थे।

शिव को अपने प्रेम में निमग्न देखकर माधव ने वट के समीप ही उन्हें स्थान दिया जो शूलटंकेश्वर के नाम से विख्यात है। श्री माधव ने अपने पास स्थान देने के बाद शिव को वरुणा और अस्सी नदियों के संगम पर निवास करने के लिए कहा, तभी से वाराणसी विश्वेश का निवास स्थल है।

प्रयाग विश्व का प्राचीनतम और सर्वोत्तम तीर्थस्थल है। श्वेत-श्याम नदियों का संगम प्रयाग सदियों से देवताओं, ऋषियों, मुनियों, साधु-संतों और गृहस्थों की तपस्थली रहा है। गंगा-यमुना और अदृश्य सरस्वती के

भाषा ISSN 0523-1418

संगम स्थल पर प्रति वर्ष माघ मेले का आयोजन होता है। भारत के विभिन्न भागों से तीर्थ-यात्री कल्पवास और स्नान हेतु यहाँ एकत्रित होते हैं।

कामद और मोक्षद दो प्रकार के तीर्थ होते हैं। जो तीर्थ कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं वे मोक्षद नहीं हैं और जो तीर्थ मोक्ष देने वाले है वे कामद नहीं हैं। कामनाओं से मुक्ति द्वारा ही मोक्ष प्राप्त होता है। कामनाओं की पूर्ति चाहने वालों को मोक्ष नहीं मिलता क्योंकि उनकी इच्छा भोग की ओर होती है। प्रयाग ही विश्व में एक ऐसा तीर्थस्थल है जो कामद भी है और मोक्षद भी है। विश्व के सारे तीर्थ इसके अधीन हैं। इसलिए प्रयाग तीर्थराज है। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोकों में कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। इन सभी तीर्थो का राजा प्रयाग है जो भुक्ति और मुक्ति दोनों देता है।

प्रयाग तीर्थ की सेवा देवता, मुनि और दैत्य भी करते हैं और प्रत्येक माघ मास में जब सूर्य मकरस्थ होते हैं तब प्रयाग में विश्व के समस्त तीर्थ और देव, दनुज, किन्नर, नाग, गंधर्व एकत्रित होकर आदर पूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

देव दनुज किन्नर नर श्रेणी।
सादर मज्जहि सकल त्रिवेनी।।

अन्य स्थानों पर हुए पापकर्मो का नाश पुण्य क्षेत्रें का दर्शन करने से होता है। पुण्य क्षेत्र में हुए पापों का शमन कुंभकोण तीर्थ में होता है। कुंभकोण में हुए पापों का नाश वाराणसी में होता है। वाराणसी में हुए पापों का शमन प्रयाग में होता है।

प्रयाग के कंठभाग में तीर्थ समूह का निवास है, दान समूह इसके चरण पर लोटते हैं और व्रत समूह इसके दक्षिण बाहुमूल में हैं। ऐसा प्रयाग तीर्थ सभी तीर्थो का राजा है, श्रेष्ठ है। इसी प्रयाग के त्रिवेणी संगम के समतल स्थल पर एक बार ब्रह्मा जी ने समस्त देवताओं और ऋषि-मुनियों के समक्ष तुला पर तीर्थो की गुरुता का माप किया था। सर्वप्रथम सप्तपुरियों को परस्पर तोला गया तो सभी एक-दूसरे के बराबर निकलीं। अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, जगन्नाथपुरी और उज्जैन ये सातों पुरियाँ मोक्षदायी होने के कारण तुला पर परस्पर बराबर तौल की हुई। तदनंतर ब्रह्माजी ने सातों पुरियों को तुला के एक पलड़े पर रखा और सातों कुल पर्वतों को दूसरी ओर रखा किंतु सतपुरियों का पलड़ा भारी रहा। फिर सातों समुद्रों, सातों द्वीपों और नवखंडों को बारी-बारी से पलड़े पर रखा गया किंतु सतपुरियों का पलड़ा भारी रहा । इन सभी को एक साथ करके तीनों भुवनों के तीर्थो, नदियों और नदों को एक पलड़े पर रखकर तौला गया किंतु सतपुरियों का पलड़ा भारी रहा। इस चमत्कार से ब्रह्मा, देवगण और ऋषिगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। तब ब्रह्मा जी ने शेषनाग से इस विस्मयकारी घटना का कारण पूछा। शेष नाग ने कहा कि इन सप्तपुरियों को और अन्य सभी कुल-पर्वतों, द्वीपों, समुद्रों, तीर्थो को एक पलड़े पर रखकर दूसरे पलड़े पर प्रयोग तीर्थ को रखिए। ब्रह्मा के ऐसा करने पर तुला के दोनों पलड़े बराबर तौल के हुए। प्रयाग विराट पुरुष का मस्तक है। देवतागण इस विराट पुरुष के अवयव हैं, सातों पुरिया शरीर की सतधातु हैं, नदियाँ नाड़ी हैं, मेघ शिर के बाल हैं और पर्वतगण हड्डियाँ हैं। जिस प्रकार ब्रह्मांड से जगत उत्पन्न होता है, उसी प्रकार प्रयाग से सभी तीर्थ उत्पन्न होते हैं, अन्य तीर्थो से प्रयाग उत्पन्न नहीं होता। इसीलिए प्रयाग तीर्थराज है। यही यहाँ के धर्म संगम का महत्व है। यही कारण हैं कि प्रयाग में भी प्रयाग के वटवृक्ष का, जो विराट पुरुष का शाश्वत निवास स्थल है; इसका नाश नहीं होता और बालमुकुंद माधव यहीं से पुनः सृष्टि की रचना करते हैं।

ॐ एकाक्षर ब्रह्म है। यह परब्रह्म का वाचक है। यह त्रिवेणी स्वरूप है।

इसमें और त्रिवेणी में भेद नहीं है। यह तीन वर्णो से बना है-अ, उ और म।

अकार शारदा है, जिसके देवता प्रद्मुन्न हैं। उकार यमुना हैं, जिसका जल अनिरुद्ध है। मकार गंगा है, जिसके साथ संकर्षण हरि विराजते हैं। यही त्रिवेणी है।

जो ऊँ हो जाने के कारण वेदों का बीज है । वेद की माता सावित्री हैं, जो त्रिपदा है। चतुष्पदा तीर्थराज हैं, जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को देने वाले हैं । इसी तीर्थराज में त्रिवेणी संगम है। महर्षियों का कहना है कि तीर्थो में उत्तम तीर्थ और क्षेत्रें में उत्तम क्षेत्र गंगा-यमुना का संगम स्थल है। मोक्ष की इच्छा से सभी देवता, मुनि और स्वयं मनु त्रिवेणी संगम पर निवास करते हैं। देवताओं के राजा इंद्र प्रयाग की रक्षा करते हैं और देव समूह के साथ स्वयं विष्णु प्रयाग की रक्षा करते हैं। वट

वृक्ष जिस पर विष्णु भगवान बालरूप में शयन करते हैं, उसकी रक्षा शूलपाणि महेश्वर करते हैं ।

गंगा ब्रह्मा के कमंडल से निकलीं, विष्णु के चरणों से युक्त हुईं, शंकर भगवान के मस्तक पर विराजीं और राजा भगीरथ के तप के कारण पृथिवी लोक में प्रकट हुईं। इस प्रकार गंगा ब्रह्मा-विष्णु-महेश से युक्त होकर स्वर्ग, पाताल और मर्त्य लोकों में पापियों का उद्धार करती हुई त्रिपथगा नाम से प्रसिद्ध हुईं।

यमुना अस्ताचल से उत्पन्न हुई। यह यमराज की भगिनी हैं और सूर्य की पुत्री हैं। सातों द्वीपों और समुद्रों का भेदन करके यमुना प्रवाहित हैं इनके किनारों पर देवता ऋषि और पितरगण विराजते हैं। दर्शन मात्र से पाप नष्ट करती है और इनमें स्नान करने वालों को सूर्य लोक देती हैं।

सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री हैं। इनकी चार भुजाएँ हैं। एक भुजा में पाश है दूसरी में अंकुश है, तीसरी में वीणा है और चौथी में पुस्तक है।

प्रयाग में गंगा-यमुना का संगम एक मनोरम प्राकृतिक घटना है। कालोत्तर में यह संगम प्रकृष्ट यज्ञों का साक्षी और कारण रहा। यहाँ साक्षात् ब्रह्मा, सृष्टिकर्ता ने दस अश्वमेध यज्ञ किए थे; जिसकी स्मृति में दारागंज का दशाश्वमेध घाट है।

गंगा-यमुना संगम ज्ञान और भक्ति का संगम है और इस संगम को सरस्वती का अशीर्वाद प्राप्त है। इसलिए यह गंगा-यमुना-सरस्वती की त्रिवेणी है।

सरस्वती नदी को प्रयोग में अंत: सलिला माना गया है। गंगा ज्ञान का बोधक है और यमुना भक्ति का। संगम से आगे यमुना का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है और गंगा की धारा ज्ञान-भक्ति से युक्त हो जाती है। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास ने अपने श्रीरामचरित् मानस में प्रयाग का वर्णन करते हुए लिखा है-

ज्ञान भक्ति बह सुरसरि धारा।
सरसै ब्रह्म विचार प्रचारा।।

ज्ञान मस्तिष्क की वस्तु है और भक्ति हृदय की। ज्ञान में भक्ति का समावेश करके सरस्वती से सदा अनुप्राणित रखकर प्रयाग का त्रिवेणी संगम वैदिक काल से अपनी धार्मिक परंपरा आज तक बनाए हुए है। सिद्ध, तापस, ऋषि-मुनि, देव-गंधर्व द्वारा सेवित प्रयाग का संगम तट भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के अजस्र स्रोत हैं। भारतीय धर्म और संस्कृति प्रयाग के संगम के बिना अधूरी है। इसीलिए पुराणानुसार-

प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यू: प्रयागमिति गीयते।
दृष्टवा प्रकृष्टयागेभ्य: पुष्टेभ्यो दक्षिणादभि:।
प्रयोगमिति तन्नान कृतं हरिहरा दिभि:।।

ब्रह्मपुराण के अनुसार यह सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं। ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। ईडा और पिंगला का संगम सुषुम्ना है। एक श्लोक है-

ईडा भागवती गंगा, पिंगला यमुना नदी।
ईड़ा पिंगलोर्मध्ये:, बालरंडा च कुंडली।।

ईड़ा नाड़ी का स्वभाव गंगा नदी के जल की तरह शीतल है और पिंगला नाड़ी का यमुना नदी की तरह सम हैं सुषुम्ना नाड़ी शीतोष्ण है और यही प्रत्येक मनुष्य के शरीर में उपस्थित कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत करने में समर्थ है। ईड़ा नाड़ी बाएँ नाशापुट में, पिंगला दाहिने नाशापुट में बहती है और जब दोनों नाशापुट चलें तब सुषुम्ना नाड़ी चलती है।

प्रयाग का संगम इस प्रकार ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम है। सिद्ध, साधक, तपस्वी, गृहस्थ सभी इसमें गोता लगाकर शारीरिक स्फूर्ति का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि प्रयाग का संगम तट अनादिकाल से ऋषि-मुनियों, सिद्ध-साधकों, गृहस्थों, धर्माचायों को अपनी और आकृष्ट करता रहता है। प्रति वर्ष माघ मेले के अवसर पर प्रति छठवें वर्ष अर्धकुंभ के अवसर पर और प्रति बारहवें वर्ष कुंभ के अवसर पर प्रयाग में ब्रह्मा ने यज्ञ किया। यह सोम, वरुण और अग्नि का आविर्भाव स्थान है । शास्त्रें और पुराणों में प्रयाग की महिमा का और त्रिवेणी संगम के प्रयाग का विशद वर्णन मिलता है ।

जब शिव को श्री माधव स्थान निर्देश करके अंतर्धान हुए तब शूल से गंभीर नाद हुआ था । इसी शूल के टंकार होने के कारण शिव का नाम शूलटंकेश्वर पड़ा।

हमारे छह गुण-ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज भगवान विष्णु में समाविष्ट हैं। दो-दो गुणों की प्रधानता से इन तीन ब्यूहों प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण की सृष्टि हुई है। अपनी शक्ति लक्ष्मी के साथ विष्णु प्रयाग के त्रिवेणी क्षेत्र में और उसकी सभी

दिशाओं में अपने आयुधों के साथ भक्तों और तीर्थ यात्रियों की रक्षा और उनके कष्ट निवारण मे संलग्न रहते हैं। ऐसे प्रयाग क्षेत्र और त्रिवेणी का वर्णन लेखन के परे है। इसलिए गोस्वामी जी को लिखना पड़ा-

'को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ' अर्थात ऐसा कौन है, जो प्रयाग के प्रभाव को इदमित्थं कह सकता है । इसलिए 'थोड़े महुँ जानिहहिं सयाने। ताते अति संक्षेप बखाने' के साथ अपनी बात समाप्त करता हूँ।

– 56, अशोक नगर, अधारताल, जबलपुर-482004 (म.प्र.)

❑❑❑

कवि हृदय अटल जी

डॉ. अंजु सिंह

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी नहीं रहे। लंबी बीमारी से जूझते हुए 16 अगस्त 2018 की शाम उन्होंने दुनिया को अलविदा कह दिया। उनकी रिक्तता केवल राजनीतिज्ञ महसूस करें यह संभव नहीं। बड़ा मन और विशाल हृदय, समदर्शी सोच, जीवन में हास्य की जरूरत जैसे जीवन के हर पहलू के लिए वह जनमानस में एक उदाहरण छोड़ गए। दरअसल अटल जी व्यक्ति मात्र नहीं बल्कि दर्शन थे। ऐसा दर्शन जो हमेशा आगे बढ़ने और बढ़ाने, पराजय से निराश ने होने, जो मिल गया विरक्त रहते हुए उसका उपयोग करने, दुश्मन को बड़े दिल के साथ माफ करने और दोस्त से खुलकर दोस्ती निभाने का संदेश दे। न सिर्फ संदेश दे बल्कि सामने वाले को भी यही भाव अपनाने के लिए मजबूर करे। उनके आस-पास विश्वास की तरंग होती थी, जो सामने वाले को हमेशा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती थी। एक वक्ता के रूप में उनको टक्कर देने वाला कोई न था। अपने भाषणों में वे कविताओं को जोड़ते थे। जिस तरीके से वे कविताएँ पढ़ते थे लोग खिंचे चले आते थे। वे जानते थे कि लोगों को उनसे क्या चाहिए और वे उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरते थे। 1952 के दौरान अटल जी डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के अंग्रेजी भाषणों का हिंदी अनुवाद किया करते थे। इसी दौरान उनके बोलने का अंदाज और भाषण की कला लगातार निखर रही थी। धीरे-धीरे उनका खुद का स्वरूप निखरकर लोगों के सामने आने लगा। समझने और लोगों को अपनी बातों को समझाने की निपुणता से अटल जी की लोकप्रियता लगातार बढ़ रही थी। 'राष्ट्रधर्म' और 'पांचजन्य' जैसी पत्रिकाओं में छपने वाले उनके लेखों से लोग प्रभावित हो रहे ही नहीं थे, बल्कि लिखते भी थे। वह भारत की आवाज थे। वह सहज, सरल और सुगम भाषा में बोलते थे। उनकी आवाज में विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता और विनोद के साथ किसी को किसी प्रकार की तकलीफ न पहुँचाने की भावना थी। उनकी बात कभी किसी को बुरी नहीं लगती। गंभीर से गंभीर बात वे सहज तरीके से रखने में महारत रखते थे। अटल जी का जीवन असंभव का संभव है- संभवामि युगे-युगे। वह प्रतिपल भारत के राष्ट्रजीवन में है। भारत के अणु-परमाणु में उनका कृतित्व और विचार रस बस गया है। अटल जी ने अपनी पहली कविता ताजमहल को समर्पित की। आगरा का जितना गहरा नाता ताज से है, उतने ही गहरे रिश्ते अटल जी से भी थे। वह जब भी आगरा आए, खुद को एक कवि के रूप में ही पेश किया। उनका पैतृक गाँव बटेश्वर आगरा जिला मुख्यालय से करीब 70 किलोमीटर दूर था। उन्होंने हमेशा आगरा और बटेश्वर के लोगों से जुड़ाव रखा। उनकी कविता-

'*यह ताजमहल, यह ताजमहल/यमुना की रोती धार विकल,*

कल कल चल चल, जब रोया हिंदुस्तां सकल/ तब बन पाया ताजमहल....।

अटल जी की इस पहली कविता ने खूब ख्याति पाई क्योंकि यह कविता उन श्रमिकों पर आधारित थी, जिन्होंने भव्य इमारत का निर्माण किया था और कहा जाता है कि श्रमिकों के हाथ कटवा दिए गए थे। शायद कम लोग ही जानते हैं कि वह भावपूर्ण और गहरे अर्थों वाले एवं देश प्रेम से ओत-प्रोत कविताएँ लिखने के साथ ही व्यंग्य विनोद भरी कविताएँ भी लिखते थे।

 भाषा ISSN 0523-1418

1975 में आपातकाल की घोषणा होने पर विपक्ष के तमाम नेताओं के साथ अटल जी को भी कैदखाने में डाल दिया गया था। जेल में भी वह कविताएँ लिख रहे थे। कैदी कविराय के नाम से लिखी गई कविताओं में व्यंग्य विनोद की छटा उनके उस उन्मुक्त कवि मन का परिचायक है, जिसके चलते वह इतने लोकप्रिय हुए। ऐसी ही कुछ बानगियाँ देखिए- *दिल्ली के दरबार में, कौरव का है जोर लोकतंत्र की द्रोपदी, रोती नयन निचोर/ रोती नयन निचोर, नहीं कोई रखवाला/ नए भीष्म, द्रोणों ने मुँह पर ताला डाला।/ कह कैदी कविराय, बजेगी रण की भेरी/ कोटि-कोटि जनता, न रहेगी बनकर चेरी।* महाभारत काल के प्रतीक के माध्यम से अटल जी ने वर्तमान स्थिति का चित्रण किया। जेल में बंद रहने के दौरान अटल जी अस्वस्थ हो गए थे, उन्होंने लिखा-

डॉक्टरान दे रहे दवाई, पुलिस दे रही पहरा/ बिना ब्लेड के हुआ खुरदुरा, चिकना-चुपड़ा चेहरा/ चिकना-चुपड़ा-चेहरा, साबुन तेल नदारत/ मिले नहीं अखबार, पढेंगे नई इबारत/ कह कैदी कविराय, कहाँ से लाएँ कपड़े/ अस्पताल की चादर छुपा रही सब लफड़े।

जेल के दमघोंटू वातावरण में भी अटल जी का कवि मन एक नई आशा किरण के साथ छंद पर छंद लिखे जा रहा था। जेल के भीतर भी वह उस परिहास वृत्ति को नहीं भूले थे-

"दर्द कमर का तेज, रात भर लगीं न पलकें/ सहलाते बस रहे इमरजेंसी की अलकें/ नर्स नींद में चूर, ऊँघते सभी सिपाही/ कंठ सूखता, पर उठने की सख्त मनाही/ कह कैदी कविराय सवेरा, कब आएगा/ दम घुटने लग गया, अँधेरा कब जाएगा।"

पूरी बेबाकी से वह जो कुछ भी बोलते थे, सीधे जनमानस के हृदय में उतर जाता था। अपनी बात को कैसे रखना है, कितना कहना है और कितना अनकहा छोड़ देना है, उनसे बेहतर कोई न जानता था। वे दूरदृष्टा थे, स्वप्नदर्शी थे और कर्मवीर भी थे। कवि हृदय, भावुक मन के तो थे ही पराक्रमी सैनिक मन वाले भी थे। अटल जी का प्रखर राष्ट्रवाद और राष्ट्र के लिए समर्पण करोड़ों देशवासियों को हमेशा से प्रेरित करता रहा है। राष्ट्रवाद उनके लिए एक नारा नहीं था, बल्कि जीवनशैली भी था। यही कारण रहा कि 1977 में अटल जी ने बतौर विदेश मंत्री संयुक्त राष्ट्र में अपना पहला भाषण हिंदी में दिया था। पहली बार इस अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत की राजभाषा गूँजी। इतना ही नहीं भाषण खत्म होने के बाद संयुक्त राष्ट्र से आए सभी-देश के प्रतिनिधियों ने खड़े होकर अटल बिहारी वाजपेयी का तालियों से स्वागत किया। उन्होंने देश की जनता को ही अपना आराध्य माना। भारत के कण-कण, कंकर-कंकर, बूँद-बूँद को पवित्र और पूजनीय माना। यदि भारत उनके रोम में था तो विश्व की वेदना उनके मर्म को भेदती थी। इसी वजह से 'हिरोशिमा' जैसी कविताओं का जन्म हुआ-

किस रात को/ मेरी नींद अचानक उचट जाती है/ आँख खुल जाती हैं मैं सोचने लगता हूँ कि/ जिन वैज्ञानिकों ने अणु अस्त्रों का/ आविष्कार किया था/ वे हिरोशिमा-नागासाकी के भीषण/ नरसंहार के समाचार सुनकर/ रात को कैसे सोए होंगे? उनमें देशभक्ति की प्रबल भावना थी। उन्हें भारत और भारतीय परंपरा पर बहुत गर्व था। उनके मन में बस एक ही मंत्र रहता था कि भारत को आगे बढ़ाना है, भारत दुनिया की महान शक्तियों में शामिल हो जाए, शक्तिशाली राष्ट्र बन जाए, यही उनके विचार का केंद्र रहता था। राजनीति में बुलंदियों को छूने वाले करिश्माई राजनेता पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ओजस्वी वक्ता के साथ ही कलम के जादूगर भी थे। विश्व इतिहास के निर्माता और प्रतिष्ठित महानायक भी संपूर्ण लोकमन की प्रशंसा नहीं पा सके, लेकिन अटल बिहारी वाजपेयी विरल हैं। उन्होंने भारत के संपूर्ण जनगणमन का प्यार पाया। वे अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता में अटल थे बावजूद इसके उनके विचारों के विरोधी भी उनके प्रशंसक थे। व्यवहार में सरल, तरल अटल जी भारतीय राजनीति के विरल महानायक थे। वह तमाम असंभवों का संगम थे। वह सरस भावप्रवण कवि हृदय थे, लेकिन राजनीति के भावविहीन क्षेत्र में भी देश के अग्रणी राजनेता के तौर पर स्थापित हुए। जैसे विश्वमोहन मुसकान और शब्दों की जादूगरी वैसे ही आचार व्यवहार में सबके प्रति आत्मीय। अपनी वक्तृत्व क्षमता से वे लोगों के दिलों में बसते थे। उनकी वाणी पर सरस्वती विराजमान थी। वे एक ऐसे युग मनीषी थे, जिनके हाथों में काल के कपाल पर लिखने, मिटने का अमरत्व था। उन्होंने कवि की भूमिका अपनाई तो उदारमना चेतना की समस्त

उपमाएँ बौनी कर दीं। कभी कुछ माँगा भी तो बस इतना–

मेरे प्रभु! मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना/ गैरों को गले न लगा सकूँ/ इतन रुखाई कभी मत देना।

अटल जी की लोकप्रियता का एक कारण उनकी वाक्पटुता भी है। संसद और जनसभाओं में कहे उनके 'वन लाइनर' दशकों बाद भी लोगों के जेहन में हैं। उदाहरण के लिए एक मौके पर जब उनसे पूछा गया कि भाजपा में ही दो दल (वाजपेयी और आडवाणी के धड़े) हैं तो उन्हांने तपाक से कहा–

मै। किसी दलदल में नहीं हूँ। मैं औरों के दलदल में अपना कमल खिलाता हूँ।

अपने संबोधन के जरिए लोगों के मर्म को भी छूते थे और नीतियों और नजरिए को नई धार भी देते थे। वह हिंदी प्रेमी ही नहीं, हिंदी सेवी भी थे। उनकी विशिष्ट शैली की हिंदी ने उन्हें लोकप्रिय बनाया तो हिंदी को लोकप्रियता प्रदान करने का एक बड़ा श्रेय उन्हें जाता है। अपने दैहिक रूप से हम सब से जुदा होने के बाद भी उनकी कालजयी कविताएँ हमें प्रेरित करती रहेंगी। उनकी कविताएँ महज चंद पंक्तियाँ नहीं, बल्कि जीवन दर्शन है। और जीवन के प्रति सकारात्मक नजरिया प्रस्तुत करती हैं।

ये पंक्तियाँ समाज के ताने-बाने को सहेजते हुए हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं और घोर निराशा में भी आशा की किरणें भरने वाली हैं। इसलिए ये हमारे अंतर्मन को छूती हैं और प्रत्येक पीढ़ी को प्रेरित करती हैं–

'सूर्य तो फिर से उगेगा, धूप तो फिर भी खिलेगी'
'काल के कपाल पर, लिखता-मिटाता हूँ.....',
'छोटे मन से कोई बड़ा नहीं होता है.......'

उनकी कविताएँ लोगों को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी धैर्य बनाए रखने और संघर्ष की राह पर आगे बढ़ने की सीख देती हैं। जिंदगी की हर परिस्थिति का सामना करने का हौसला अटल जी में था–

क्या हार, क्या जीत में/ किंचित नहीं भयभीत मैं/ कर्तव्य पथ पर जो मिला/ यह भी सही वो भी सही/ वरदान नहीं माँगूगा/ हो कुछ पर हार नहीं मानूँगा, रार नहीं ठानूँगा" अटल जी एक कालजयी, अजातशत्रु, दूरद्रष्टा, सर्व समावेशी, अप्रतिम प्रधानमंत्री थे। 'अटल' मात्र उनका नाम नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व की पहचान है। किसी भी भारतीय नेता को ऐसी स्वीकार्यता, प्रेम और सम्मान नहीं मिला जैसा अटल बिहारी वाजपेयी को हासिल हुआ। वह बड़े नेता ही नहीं, लोगों के दिलों पर राज करने वाली शख्सियत थे–

मन में हो जब मौज बहारों की, चमकाएँ चमक सितारों की/ जब खुशियों के शुभ घेरे हों, तन्हाई में भी मेले हों/ आनंद की आभा होती है, उस रोज दिवाली होती है।

इस तरह की कविताएँ वही लिख सकता है, जिसके हृदय में आनंद की लहर हो। अटल जी प्रखर कवि के रूप में हमेशा लोगों के दिलों में जिंदा रहेंगे, उनके गीतों की गूंज पूरे जग में सुनाई देती रहेगी। उनका प्रमुख काव्य संग्रह 'मेरी इक्यावन कविताएँ' अत्यंत लोकप्रिय है। 25 दिसंबर, 1924 में जन्मे पिता कृष्ण बिहारी वाजपेयी एवं माता कृष्णा देवी की संतान श्री अटल बिहारी वाजपेयी के निधन पर हर आँख पुरनम, हर दिल गमजदा है। उनका जाना एक युग का अंत है। लेकिन वो हमें कहकर गए हैं–

मौत की उमर क्या है? दो पल भी नहीं, जिंदगी सिलसिला, आजकल का नहीं/ मैं जी भर जिया, मैं मन से मरूँ, लौटकर आऊँगा, कूच से क्यों डरूँ?।

भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेयी जी की यह कविता मौत से उनके संवाद को दर्शाती है। मानो विनम्रता से उसे बता रहे हों कि जीवन की कहानी अनंत है, लेकिन मन की अपनी सीमाएँ हैं। तुमने अंतिम दस्तक दे दी है तो मैं चलूँगा तुम्हारे साथ, लेकिन लौटकर आऊँगा जरूर। ऐसा व्यक्तित्व, ऐसा नेता हजारों वर्षों में धरती पर आता है। हम उनके दोबारा आने का इंतजार करेंगे।

– डी II/12, पूसा कैंपस, नई दिल्ली-12

❑❑❑

दिल्ली से कांचीपुर, इंफाल

योगेंद्र कुमार 'गोस्वामी'

दिनांक 14-11-2009 को नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से राजधानी एक्सप्रेस द्वारा गुवाहाटी के लिए प्रस्थान। रेल अपने मार्गों से होती हुई गुवाहाटी की तरफ तेज़ी से बढ़ रही थी। तरह-तरह के ख्याल मन में उथल-पुथल कर रहे थे। मन में यात्रा का रोमांच भी था, उत्तर-पूर्व में अशांति के कारण डर भी था। उत्तर-पूर्व उग्रवादियों की चपेट में था। दिनांक 15-11-2009 सांय 6.25 बजे गुवाहाटी रेलवे स्टेशन पर उतर गया, जहाँ से उतर कर रिक्शा द्वारा पलटन बाजार स्थित बस अड्डे पर गया, तो पता चला कि यहाँ से बस अड्डा अन्यत्र चला गया है। वहाँ से ऑटोरिक्शा से पता किया तो वह कहने लगा कि आई. एस. बी. टी. गुवाहाटी जाना पड़ेगा, ऑटोरिक्शा द्वारा आई. एस. बी. टी. गुवाहाटी चल दिया। पूरा शहर पार करके सुव्यस्थित बस अड्डा नजर आया, तो वहाँ के टिकट काउंटर से पता चला कि बस रात्रि 8:30 बजे इंफाल के लिए रवाना होगी। अपना टिकट बुक करा लीजिए। मैंने काउंटर पर अपना टिकट बुक करा लिया। बस नं. 0707, सीट नं. 14 पर बैठा, बस अपने समय से इंफाल के लिए चल दी। बस में सभी यात्री लगभग असमिया या मणिपुरी भाषा बोलने वाले थें। केवल तीन यात्री हिंदी भाषी प्रांत से थें, रास्ते में बस एक होटल पर रात्रि 1.00 बजे रुकी तो बात-चीत से पता चला, जैसे मैं प्रथम बार इंफाल जा रहा हूँ वैसे वे लोग भी प्रथम बार इंफाल की यात्रा कर रहे हैं। मन घबराया फिर भी अपने पर संयत कर मन ही मन प्रभु का स्मरण कर सोचा जो होगा, सब देखा जाएगा। अब तो सब कुछ राम हवाले है। बस चलती रही। मन में विचारों की हलचल भी होती रही। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को काटकर बनाई गई सड़क, ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, बांस के जंगल, केले के पेड़ और भी नाना प्रकार के जंगली वृक्ष। यात्रा में हरियाली चारो ओर फैली हुई थी। मानों प्रकृति ने हरी चादर से सब ढकने की तैयारी कर रखी थी। बस टेढ़ी-मेढ़ी घुमावदार चढ़ाई से चली जा रही थी। फिर असम राज्य की सीमा समाप्त हो गई। बस ने नागालैंड राज्य में प्रवेश किया। उससे पहले सीमा पर बस की तलाशी ली गई। तलाशी लेने के बाद नागालैंड पुलिस ने बस को अपनी सीमा में प्रवेश दिया। जब हवा चलती, रात्रि में वन में बांस के झुरमुटों से सांय-सांय की ध्वनि ऐसे हो रही थी, मानो बांस का समूह सीटी बजा रहा हो। रात्रि बीत जाने पर प्रात: काल की बेला। सूर्यकिरणें बिखेरने को आतुर है। फिर आहिस्ता-आहिस्ता सूर्य पहाड़ियों के ऊपर प्रकाशमान नजर आया। अब भी बस चली जा रही थी। बस और सूर्य में लुका-छिपी का खेल चल पड़ा। कभी सूर्य आगे, बस पीछे, कभी बस आगे, सूर्य पीछे। यही खेल निरंतर लगभग दिन के दस बजे तक चलता रहा फिर नागालैंड राज्य की सीमा समाप्त होने से पहले एक स्थान आया जिसको वे लोग माओगेट कहते हैं। नागालैंड पुलिस ने ड्राइवर से कहा कि बस अभी मणिपुर राज्य में प्रवेश नहीं कर सकती है। बस यात्रियों में उत्सुकता बढ़ी कि क्या कारण है। पता चला कि मणिपुर राज्य में कई संगठनों द्वारा मणिपुर राज्य के पूर्ण बंद का आह्वान किया गया है। फिर आहिस्ता-आहिस्ता वहाँ उस स्थान पर जहाँ हमारी बस खड़ी थी, बहुत-सी

बसें, ट्रक, कार आदि जमा हो गए, बस से उतर कर चाय-पानी की तलाश की गई। तो कुछ दूर चलने पर चाय की दुकान मिल गई वहाँ चाय नाश्ता लेने के बाद बदन में कुछ चुस्ती का संचार हुआ मेरा मोबाइल न्यू जलपाईगुड़ी रेलवे स्टेशन पर ही बंद हो गया था। रेल में सहयात्रियों से पता किया तो ज्यादातर यात्री उन में सशस्त्र सेना के लोग थे। उन्होंने बताया कि यहाँ दिल्ली या उत्तर प्रदेश किसी का भी मोबाइल नेटवर्क काम नहीं करता केवल यहीं का सिम काम करता है। फिर माओ गेट पर पी सी ओ बूथ मिल गया। परंतु उस पर भीड़ बहुत अधिक थी। मैं लाइन में लग गया, मेरी बारी आ गई। सर्वप्रथम मैंने अपने घर पर बच्चों से संपर्क किया। दो बार नंबर लगाने पर घर का नंबर मिल गया। बात करने पर कुशल क्षेम का पता चला। पत्नी ने पूछा कि ठीक प्रकार से हो? मैंने कहा हाँ, ठीक प्रकार से हूँ। मैं अंदर से बहुत डरा हुआ था परंतु सोचा कि अगर मैंने सारी स्थिति बताई तो मुझ पर तो जो गुजर रही है ठीक ही है। परंतु पत्नी बच्चे परेशान होंगे। मैं उन्हें तसल्ली देकर हँस-हँस कर बात करता रहा और कहा समय-समय पर मैं ही आपसे संपर्क करता रहूँगा। मेरा नंबर डैड हो गया है, उससे बात नहीं हो सकती है। फिर मणिपुर विश्वविद्यालय कांचीपुर (इंफाल) के हिंदी-विभाग के अध्यक्ष प्रो. देवराज के मोबाइल नंबर जो मैंने अपने साथी मो. नसीम से दिल्ली में प्राप्त किए थे, उन पर संपर्क करके यह बताना चाहता था कि मैं माओ गेट पर बस न चलने के कारण रुका हुआ हूँ। कोई अन्य साधन या कुशलता का समाचार मिल सके काफी देर तक नंबर मिलाता रहा परंतु बार-बार यही आता रहा कि स्विच बंद है फिर मन में निराशा के बादल छाने लगे कि अब क्या होगा। मन हुआ कि यहीं से लौट चलें परंतु फिर ख्याल आया कि इतनी दूर आकर बिना उद्देश्य पूर्ण किए ही लौट गया तो मेरी और निदेशालय की बेइज्जती होगी। फिर शिविरार्थियों के बारे में सोचा कि कई बार उन पर वापस लौटने का किराया नहीं होता। ऐसी स्थिति में इतनी दूर कठिन यात्रा करके शिवरार्थी कैसे घर जाएँगे फिर तीन बजे दोपहर के बाद बस इंफाल के लिए रवाना हुई तो मैं बाहर के दृश्य देखने के लिए बस का शीशा खोलकर बाहर देखने लगा। एक सहयात्री ने कहा कि शीशा बंद कर लो। पत्थर या गोली बाहर से आए तो सिर नीचे करके सीट के नीचे छुप जाना, मैंने घबराकर शीशा बंद कर पर्दा भी कसकर पकड़ लिया। चोरी-चोरी बाहर भी देखता रहा। पाँच बजे सायं बस को रास्ते में फिर पुलिस ने रोक लिया। पता चला कि रास्ते में कुछ गड़बड़ है। मन घबराने लगा। बसों की लंबी कतार जहाँ तक देखें आगे-पीछे बसें ही बसें नज़र आ रही थीं। बसों के यात्री नीचे उतर कर इधर-उधर बैठ गए। मैं हिम्मत करके नीचे उतर गया। पहाड़ों को काटकर बनाई गई सड़कें। काफी ऊँचाई पर हमारी बस खड़ी थी। अनुमान लगाया, अगर बस का पहिया फिसल जाए तो कोई भी यात्री जीवित नहीं बचेगा। आदमी की हड्डी-पसली भी साबुत नहीं रहेगी। पहाड़ी पर जो लोग अपने गाँवों में रहते हैं, खेती सीढ़ीनुमा खेतों में करते हैं, जहाँ जितनी जमीन समतल मिली उसी पर खेती कर दी। उस समय कुछ धान खड़े थे। कुछ कट रहे थे। केले, बाँस और अन्नानास भी प्रचुर मात्रा में थे, पानी झरनों द्वारा भी प्राप्त किया जाता है। कुछ स्थानों पर बी.आर.ओ. के कैंप तथा पानी के टैंकर भी नजर आए। पहाड़ों पर सड़क बनाने का कार्य भी शायद बी. आर. ओ. ही करता होगा। सड़कों की हालत मणिपुर की पहाड़ियों पर काफी खराब थी। जगह-जगह गड्ढे, धूल का गुबार। तीस मिनट बस रुकने के पश्चात् पुनः इंफाल के लिए रवाना हुई। मुश्किल से तीस मिनट बस चली होगी, फिर पुलिस ने बस रुकवा दी, कि आगे गड़बड़ है। थोड़ी देर बाद फिर बस चली। गड्ढों में धूल उड़ाती गाडियाँ, हिचकोले खाते, घबराते, धूल फाँकते रात्रि सात बजे मैं इंफाल बस अड्डे पर उतर गया। रात हो चुकी थी। दो-चार रिक्शा खड़े थे। बस से उतर कर रिक्शा की ओर लपका। बात करी तो मैंने कहा भैया मणिपुर विश्वविद्यालय कांचीपुर चलोगे। मुझे दूरी का कोई ज्ञान नहीं था। ऑटोरिक्शा वाला बोला उधर बहुत दूर है, रिक्शा उधर नहीं जाता है फिर सभी सवारी जा चुकी थी। इक्का-दुक्का ही लोग बचे थे। सड़कों पर सन्नाटा चारों तरफ पुलिस-मिलिट्री की दौड़ती गाड़ियाँ जिधर देखो बंदूकें तनी हुई है। अनमने मन से मैं पैदल चल दिया आगे चलने पर एक पी.सी.ओ. बूथ नजर आया। मैंने पी.सी.ओ. से मणिपुर विश्वविद्यालय कांचीपुर का नंबर मिलाया तो स्विच बंद बताया। अब मैं क्या करूँ

फिर बगल में एक चाय की दुकान पर मैंने चाय पी। चाय वाले से बातों-बातों में पता चला थोड़ी दूर आपको मणिपुर विश्वविद्यालय का ऑटो मिल सकता है। चाय वाले ने, मेरी मन: स्थिति भांप ली थी, फिर भी हिम्मत बंधाई। डरो नाही बाबू, हम भी इधर ही रहत है। बहुत लोग हिंदी भाषी इयाही रहत हैं। परंतु आपस में मिलते हैं तो बोलत नाही इयाही की भाषा हम जानते है और बोलत हैं। मैंने जल्दी से कदम बढाएँ सड़क सुनसान हो चुकी थी। एक रिक्शा वाला मिला मैंने ऑटोरिक्शे वाले से कांचीपुर चलने को कहा तो उसने कहा नहीं कांचीपुर बहुत दूर है। वहाँ रिक्शा नहीं ऑटोरिक्शा जाएगा थोड़ी दूर चलने पर एक ऑटोरिक्शा नजर आया उसने भी मना कर दिया। मैं बड़ा निराश हुआ और कोई साधन नहीं है यही एक साधन है अनजाना शहर अनजाने लोग। जो फोन है वह भी स्विच बंद बता रहा है, अंदर ही अंदर मन डर रहा था कि किस मनहूस घड़ी में मैं घर से चला था, परंतु हिम्मत जुटा कर ऑटो वाले से पुन: आग्रह और विनय पूर्ण स्वर में कहा, भाई साहब अनजाने शहर में एक अनजाने मुसाफिर को इस प्रकार सड़क पर भटकने के लिए छोड़ दोगे, तो ऑटो वाले ने कहा कि मैं आपको होटल छोड़ दूँगा। मैंने कहा नहीं भैया, मैं तो कांचीपुर ही जाऊँगा। मैंने मजबूर होकर दुखी मन से कहा चलो भैया जहाँ आपका मन चाहे वह ऑटो लेकर होटल की तरफ चल दिया। एक दो होटल वाले से उसने पूछा परंतु कमरा खाली नही मिला ऑटोरिक्शा कांचीपुर के लिए चल दिया। रास्ते में सिर्फ पुलिस मिलिट्री के अलावा कुछ नहीं मिला। मणिपुर विश्वविद्यालय कांचीपुर के सामने गेट पर ऑटो रोक कर बोला चलो उतरो। मैंने कहा कि बाबू जी अंदर नहीं चलोगे तो उसने कहा, देखते नहीं गेट पर ताला लगा है और असम राईफल्स जवान पहरे पर है। मैंने कहा कोई बात नहीं, आप ऑटो सड़क के पार ले चलो मैं बात करता हूँ। ऑटो वाला अनमने मन से ऑटो सड़क के पार विश्वविद्यालय के गेट पर ले गया। मैंने असम राईफल्स के एक स्टार वाले अधिकारी को अपना परिचय दिया कि मैं केंद्रीय हिंदी निदेशालय दिल्ली से आया हूँ। कल से हमारा विश्वविद्यालय में एक हिंदी कार्यक्रम है, अधिकारी ने मेरा परिचय पत्र देखा फिर इज्जत के साथ जवान से बोला साहब के लिए गेट खोलो। इनका ऑटो अंदर जाने दो। जवान ने गेट खोला और ऑटो अंदर चल दिया। आगे एक गार्ड खड़ा था। मैंने पूछा कि गेस्ट हाउस कहाँ है तो उसने इशारे से बताया कि इधर गेस्ट हाउस है। मैंने ऑटो से सामान उतार कर ऑटो वाले को धन्यवाद सहित पैसे देकर विदा किया। अंदर जाकर केयर टेकर को ढूँढा और बताया कि मैं केंद्रीय हिंदी निदेशालय से आया हूँ। कल से हमारा विश्वविद्यालय में हिंदी का कार्यक्रम है। केयर टेकर ने कहा कि यहाँ तो अंदर पूरा गेस्ट हाउस अंग्रेजी और मणिपुरी फॉक डांस के कार्यक्रम के लिए बुक है। फिर मैंने विनय पूर्वक केयर टेकर से विनती कि भाई साहब रात बिताने के लिए कोई छोटा-मोटा या कोई सिंगल बेड मिल जाबे तो रात गुजर जाए। सुबह मैं कोई व्यवस्था कर लूँगा। केयर टेकर ने कहा नहीं कुछ भी नहीं है। सब फुल है फिर मैंने कहा कि मुझे प्रो. देवराज का घर बताओ तो उसने गार्ड से कहा कि उनको प्रो. देवराज के घर पहुँचा दो। तो गार्ड बाहर आकर सड़क पर मुझे बताने लगा गर्ल्स होस्टल नं. 2 के पीछे जो मकान है, उसमें प्रो. देवराज रहते हैं। मैंने कहा भैया मैंने जगह देखी नहीं है, कृपया मुझे वहाँ तक छोड़ दें। गार्ड ने कहा अभी हम आपके साथ नहीं जाएगा। थोड़ी देर इंतजार के बाद एक गार्ड और आ गया फिर उन्होंने आपस में कुछ बातें की जो मैं समझ नहीं पाया, मैंने कहा अब तो आपका साथी आ गया, चले। उन्होंने कहा, 'चलो'। हम तीनों चल दिए। थोड़ी दूर तक तो अंधेरा था फिर बल्बों का प्रकाश आ गया तो उन्होंने दूर से एक मकान दिखाकर कहा, वो सामने वाला मकान प्रो. देवराज का है चले जाओ। मैंने कहा भैया थोड़ा वहाँ तक छोड़ दो तो वो दोनो मेरे साथ चल दिए। कमरे पर दस्तक दी तो कमरे से कोई आवाज नहीं आई। बगल के कमरे से एक महिला बाहर आकर बोली प्रो. साहब तो यहाँ नहीं हैं। वो तो अपनी बेटी के यहाँ गए है, आप कौन है? मैंने कहा मैं योगेंद्र कुमार केंद्रीय हिंदी निदेशालय दिल्ली से आया हूँ। कल हमारा हिंदी विभाग में कार्यक्रम है। उन्होंने एक पुरुष को मेरे साथ भेज कर कहा इन्हें अखिलेश जी के कमरे में छोड़ आओ वो आगे-आगे मैं उनके पीछे चल दिया। कुछ दूर चलने के पश्चात् विश्वविद्यालय के अंतिम छोर पर प्रथम मंजिल पर जाकर उन्होंने अखिलेश को दस्तक दी

अखिलेश ने दरवाजा खोला। मैंने बताया कि मैं दिल्ली से आया हूँ तो उन्होने कहा आप योगेंद्र कुमार! मैंने कहा, 'जी हाँ' वो सज्जन तब तक जा चुके थे। डॉ. नसीम और डॉ. निदारिया आ चुके हैं, आप इतनी रात कैसे यहाँ तक पहुँचे। ये तो बहुत खतरनाक इलाका है। यहाँ तो सूर्य अस्त होने के बाद सड़कों पर वीराना छा जाता है। फिर मैंने उन्हें माओ गेट पर गाड़ी से आगे का सारा वृतांत सुनाया। सुन कर उन्होंने कहा कि आपका भाग्य ठीक था जो इस समय यहाँ पहुँच गए। मेरे से पहले ढूँढते-ढूँढते एक शिविरार्थी संजीव पात्रा कोलकाता से वहाँ पहुँचे हुए थे उनसे परिचय हुआ। तब तक प्रो. अखिलेश शंखधर ने चाय बिस्कुट की व्यवस्था कर दी। मेरा बदन थककर चूर-चूर हो रहा था, मन कर रहा था बिस्तर मिल जाए तो सो जाऊँ। चाय पीकर प्रो. अखिलेश ने कहा यहाँ पर मैं अकेला रहता हूँ, रोटी मुझे बनानी नहीं आती क्योंकि मैं अकेला कभी रहा नहीं हूँ बिस्तरा भी मेरे पास एक ही है वो इतना कहकर नीचे उतर गए। मैं और संजीव पात्रा आपस में थोड़ी बातें करने लगे मेरा मन बातों में नहीं लग रहा था सोने की जगह तलाश रहा था। थोड़ी देर बार प्रो. अखिलेश एक टिफिन और बिस्तर लाए। मैंने कहा क्यों कष्ट किया। जो अपनत्व, सहज भाव प्रो. अखिलेश जी से पाया थोड़ी देर में ऐसा लगने लगा हम लोग काफी समय से परिचित हैं। परिचय में पता चला कि प्रो. अखिलेश की नियुक्ति छह माह पूर्व ही मणिपुर विश्वविद्यालय में हुई है। मूलत: वे उत्तर प्रदेश, प्रतापगढ़ के रहने वाले हैं। रात बड़े आराम से बीती। प्रात: उठकर शौच, स्नान इत्यादि से निबट कर खिड़की से बाहर झांक कर देखा तो, चारों ओर पहाड़ियों और पेड़ों से घिरा विश्वविद्यालय। पहाड़ी पर ऊपर एक मंदिर है। मंदिर से घंटों शंखों की ध्वनियाँ गूँज रही थीं। शायद मंदिर में सुबह की प्रार्थना की जा रही है। बड़ा ही मनोहारी दृश्य। शीतल मंद हवा के झोंके सूर्य की सुनहरी किरणें। मानो पहाड़ों और पेड़ों पर सोना-सा बिखर गया हो। सामने एक कुमदिनी के पौधों का तालाब। कुमदिनी के फूल खिलने के लिए अंगड़ाई ले रहे थे। पौधों और घास पर ओस के कणों पर जब सूर्य की सुनहरी किरणें पड़ती तो मालूम होता कि ऊपर से मोती बरस रहे हैं। कुछ सिहर-सिहर कुछ मचल-मचल कुमदिनी के फूलों की पंखुडियाँ खिलने को आतुर हो रही हैं। आस-पास दो चार भंवरे भी मंडरा कर तालाब की सुंदरता को बढ़ा रहे थे। प्रो. अखिलेश जी चाय बनाकर कहने लगे लो योगेंद्र कुमार जी चाय पी लिजिए। तब मैं वापस कमरे में लौट आया। नहीं तो मैं तो ये समझ रहा था कि मैं तो ऊपर पहाड़ियों पर घूम रहा हूँ। प्रो. अखिलेश जी चाय बनाने में खासे निपुण लगे। उनकी चाय पीते ही बदन में चुस्ती की लहर दौड़ जाती थी। सब जाने के लिए तैयार हो गए सामने के कमरे से आवाज आई, अखिलेश! तो अखिलेश सामने वाले कमरे में गए। कुछ देर बाद वहाँ से वापस आए तो कहने लगे योगेंद्र जी प्रो. यशवंत जी ने बुलाया है। चलो, वहीं चलते हैं, हम तीनों अखिलेश और पात्रा सामने वाले कमरे में चले गए। सामने कुर्सी पर प्रो. यशवंत बैठे थे। नमस्ते अभिवादन हुआ। बैठो चाय पीजिए। अब हम तीन से चार थे कुछ देर में यशवंत जी की पत्नी नाश्ते का सामान रसोई से लेकर प्रकट हुई। नमस्ते के पश्चात् चाय नाश्ता चलता रहा। बातें भी होती रहीं। बातों के साथ पता चला कि प्रो. यशंवत जी उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद के हैं। प्रो. यशवंत से बातों के क्रम में पता चला कि वे हिंदी के साथ इतिहास का भी ज्ञान रखते हैं। उन्होंने जो पहाड़ी पर ऊपर मंदिर था उसके बारे में बताया। कुमदिनी के तालाब, तालाब के साथ कमरे में राजा ने भगवान श्री कृष्ण जी के वेश में सर्वप्रथम रात्रि रास रचाया था। नाश्ते के पश्चात् प्रो. अखिलेश, मैं और संजीव पात्रा विश्वविद्यालय से बाहर चले आए तो अखिलेश जी ने कहा कि गेस्ट हाउस तो हमारा बुक नहीं हुआ। आपको शहर में कमरा बुक करवाते हैं। मेरी इच्छा थी कि अखिलेश जी के कमरे पर ही रहा जाए क्योंकि वहाँ का सुबह का दृश्य मेरी आँखों में बस गया था। परंतु अनमने मन से जाना ही पड़ा। इंफाल जाकर कमरे में सामान रखकर फिर हम विश्वविद्यालय में आ गए। विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग और केंद्रीय हिंदी निदेशालय के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 17/11/2009 से 24/11/2009 तक हिंदीतर भाषी हिंदी नवलेखक शिविर का आयोजन प्रारंभ हो गया। उसमें केवल एक विशेषज्ञ दिल्ली से डॉ. बाछोतिया, तीन शिविरार्थी तिप्पा कर्नाटक से, पात्रा कोलकाता से, सुश्री रीतादास जलपाईगुड़ी से थे स्थानीय विशेषज्ञों तथा हिंदी विभाग के समस्त प्रो. एवं छात्रों ने

भाषा ISSN 0523-1418

कार्यक्रम में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। डॉ. नसीम व डॉ. निदारिया द्वारा मंच संचालन एवं लेखन की बारीक से बारीक विधा को बहुत ही अच्छे ढंग से समझाया गया। यहाँ तक कि छात्रों के सीधे प्रश्न, उत्तर, शंका इत्यादि का समाधान भी किया गया। मणिपुर में परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण कार्यक्रम पर कोई असर नहीं पड़ा। एक दिन कार्यक्रम के बाद प्रो. मैते के दोस्त का एक संग्रहालय जो बंद था लेकिन प्रो. मैते ने प्रयास करके उसे खुलवाया और देखा कि इतना अद्भुत संग्रहालय चित्रों की कलाकृति यहाँ तक कि पेड़-पौधें हर चीज बड़े करीने से लगा रखी थी। प्रो. मैते एवं डॉ. कचंन शर्मा सहित स्थानीय दर्शनीय स्थल देखें, जैसे राजा कांगला का पार्क, मणिपुर राज्य संग्रहालय। एक और छोटा परंतु खूबसूरत पार्क, फिर उसके बाद प्रो. मैते ने बताया साल भर में एक सप्ताह यहाँ, इस थियेटर में कार्यक्रम होते है। उस समय बहुत ही आनंद आता है। फिर एक खूबसूरत चर्च भी देखा जो काफी सुंदर था। फिर प्रो. मैते के घर पर जलपान का दौर चला। उसमें कुछ कविता डॉ. कंचन शर्मा द्वारा, डॉ. नसीम द्वारा गज़लों की बरसात, डॉ. निदारिया ने कविता सुनाई। प्रो. मैते ने कविता पाठ किया बड़ा आनंद आया। फिर प्रो. मैते ने एक पौधा दिखाया जो उनके निवास स्थान के समीप था जो कि वर्ल्ड रिकार्ड गिनीज बुक में दर्ज है। उसके बाद पास में हस्तशिल्प मेला लगा था उसमें घूमते-घूमते शाम हो गई। फिर अपने-अपने विश्राम स्थल पर आ गए। मणिपुर में सूर्य अस्त होते ही जीवन ठहर जाता है। बंदूकें-पुलिस-मिलिट्री ही नजर आती है। रात भर सड़कों पर ये ही लोग घूमते नजर आते हैं। फिर रात भर दिन के कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करके सो गए। उत्तर-पूर्व के प्रदेशों में सूर्य देवता जल्दी आराम करते हैं, तो उतनी ही जल्दी प्रातःकाल निकल भी आते हैं। वहाँ घड़ी पर शक होने लगता है, बाजार और शहर भी अच्छा है। लोग ज्यादा रंगीन वस्त्र पहनना पसंद करते हैं। मुख्य भोजन चावल और मछली हैं परंतु होती वहाँ लगभग सभी चीजे हैं। केला काफी छोटा होता है परंतु होता काफी मीठा है। मूंगफली बड़ी होती है परंतु गिरी बहुत छोटी निकलती है। आँवला भी कई तरह से खाया जाता है। समोसा तो मुझे काफी अच्छा लगा। समोसे को वहाँ की भाषा में सिंघाड़ा बोलते हैं। अगले दिन श्री सी. एच. निशान नितंबा ने अपने घर पर मुझे, डॉ. नसीम, डॉ. निदारिया एवं डॉ. अखिलेश को रात्रि भोज दिया, उसमें इतने प्रकार के व्यंजन थे कि नाम याद रखना भी कठिन था। खाना इतना स्वादिष्ट था कि हाथ और चम्मच चाटते रहे। पेट भर गया परंतु मन करता था कि और खाँऊ। एक खीर ऐसी थी जो कि मणिपुर प्रदेश में ही पाई जाती है। वहाँ एक चावल ऐसा होता है जो बैगनी रंग का होता है चावल धोने के बाद भी बैगनी रंग छोडता रहता है। दूध को भी बैंगनी रंग कर देता है उसका स्वाद अपने-आप में अजूबा है। मणिपुर-प्रदेश मैं चावल की लगभग 150 किस्में हैं वहाँ पर स्त्री ज्यादा कार्य करती हैं पुरुषों की अपेक्षा। श्री सी. एस. निशान नितंबा एवं उनके परिवार का मधुर व्यवहार मधुर-स्वादिष्ट भोजन प्रशंसनीय है। श्री नितंबा हिंदी के प्रसिद्ध लेखक भी है तथा हिंदी से मणिपुरी, मणिपुरी से हिंदी का अनुवाद करने की कला के खिलाड़ी हैं। उन्होंने कई पुस्तकों का अनुवाद किया। श्री नितंबा जी के शब्दों में जब से मैंने होश संभाला यानी मैंने हिंदी का ज्ञान अर्जित किया तब से मैंने सोचा कि दोनों साहित्य के आदान-प्रदान करने के मार्ग को अपनाया जाए, साहित्य सेवा में मेरी रुचि अधिक रही है, अतः इस क्षेत्र में मेरा पहला कदम हिंदी और मणिपुरी दोनों साहित्यों का आदान-प्रदान करना अहम् मुद्दा बना। 'खंबा-थोइबी 'विश्व प्रसिद्ध मणिपुरी प्रेमाख्यान (लोक गाथा) है। इसमें शृंगार रस और वीर रस का तो परिपाक है ही, मणिपुरी संस्कृति की भी अद्भुत झांकी है। राजकुमारी थोइवी, वीर नायक खंबा तथा प्रतिनायक नोङबान की धुरी पर घूमता घटना चक्र मणिपुर के प्राचीन राज्य 'मोइराङ' से 'अवा' (वर्तमान म्यांमार) तक विस्तारित है। इस विस्तार के आंतरिक धरातल पर मणिपुरी जीवन मूल्यों की क्रीड़ा है तो इसके बाह्य धरातल पर तत्कालीन जगत का यथार्थ वहाँ प्रकृति वैभव का आकर्षक सौंदर्य। इस लोक गाथा में राजसी परंपराएँ हैं, तो उन्हें चुनौती देता हुआ प्रेम का अगाध प्रवाह भी है इन्हीं के बीच ईर्ष्या, द्वेष और छल के घात-प्रतिघात हैं। वहीं कहीं निर्धनता से लड़ती हुई खंबा की बड़ी बहन खम्नु भी है। जिसका हृदय जीवन संघर्ष की ज्वाला और वात्सल्य की सहज मानवीय गरिमा के मिश्रण से निर्मित है। थोइबी अपनी निष्ठा, संकल्प शक्ति और बुद्धिमता के

बल पर तथा खंबा अपने सहज बल पर विजय प्राप्त करते हैं। इस विजय में किसी राज्य का भूगोल ही जीता जाता है, यह अधिकार सृष्टि आदि से ही दो हृदयों को विश्वास के सूक्ष्म और अदृश्य कच्चे धागे से बांध देता है। इस अधिकार को बनाए रखने के लिए इस धागे को भी संभालकर रखना अनिवार्य होता हैं खंबा की तनिक सी असावधानी थोइबी के हाथ जो खंबा का जीवन ले लेती है और अपनी गलती का अनुभव होते ही थोइबी स्वयं भी मृत्यु को गले लगा लेती है नवजागरण कालीन मणिपुरी रचनाकार महाकवि हिजय अङावृल इस प्रेमाख्यान से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसे 'पेना' नामक लोक वाद्य पर लोक गायक जुङखाख्म मनिक से विधिवत सुनकर मणिपुरी भाषा के प्रथम महाकाव्य 'खंबा थोइबी शैरड' की रचना की। जब मणिपुर राज्य में हिंदी प्रचार आंदोलन से जुड़े लोगों ने साहित्य रचना प्रारंभ की तो उन्हें भी इस लोकाख्यान के सौंदर्य से अछूता नहीं छोड़ा। अंतत सन् 1963 में हिंदी-सेवी ने 'खंबा थोइबी' नाटक लिखे इससे पहले सन् 1958 में मैं आधुनिका नामक पत्रिका के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता आंदोलन भी कर चुका हूँ इसके साथ में मौलिक सृजन और अनुवाद की ओर भी प्रेरित हुए 'खंबा थोइबी' नाटक मणिपुर राज्य के हिंदी साहित्य की दूसरी पुस्तक है। मणिपुरी-हिंदी और हिंदी मणिपुरी अनुवाद के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया 'माधवी' और 'जेहरा जैसे मणिपुर भाषा के महत्वपूर्ण उपन्यास उन्हीं के प्रयास से हिंदी साहित्य के भंडार में शामिल हुए। श्री मुंशी प्रेमचंद तथा श्री भगवती चरण वर्मा जैसे हिंदी लेखकों को मैंने मणिपुरी के पाठकों तक पहुँचाया है। मणिपुर भारत का अभिन्न अंग तो है ही, इसकी संस्कृति अर्थात् मणिपुरी संस्कृति भी भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। मणिपुरी रासनृत्य श्रीमद भागवत के दर्शनतत्व है और ब्रजमंडलीय रासनृत्य वेशभूषा को मणिपुरीय समान संस्कृति में मंडित किया है। ठीक इसी प्रकार 'खंबा थोइबी' नाटक के द्वारा मणिपुरी लोक गाथा संस्कृति को भारत की सामाजिक संस्कृति का कलेवर प्राप्त हुआ है। उनके विचार सुनकर मन बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे धन्यवाद सहित विदा ली। अगले दिन प्रातः काल सूर्य की किरणें चारों और बिखर रही थी। दैनिक क्रिया कलापों से निवृत्त होकर विश्वविद्यालय के लिए प्रस्थान किया। नवलेखक शिविर में शिविरर्थियों द्वारा कविता नाटक उपन्यास पर चर्चा, की। सत्र समाप्त कर श्री अखिलेश शंखधर जी के आग्रह पर बाजार घूमने का कार्यक्रम बना। छात्रों सहित इंफाल बाजार घूमे, खाने की चीजों का मेला लगा था उसमें घूमे वहाँ कुछ गुड़ से बने व्यंजनों मुरमुरे, लड्डू भी खाए। घूमते-घूमते सायं काल आ पहुँचा। प्रो. अखिलेश शंखधर विश्वविद्यालय के लिए रवाना हुए। हम अपने विश्राम स्थल की ओर पैदल ही चल दिए क्योंकि विश्राम स्थल पास ही था। अगले दिन प्रातः बादल-आकाश में सूर्य लुका-छिपी का खेल, खेल रहे थे उस दिन हमारा कार्यक्रम वांखै राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वांखै में था, जो इंफाल का उपनगर था वांखै संस्था और उनके छात्रों द्वारा आतिथ्य-सत्कार तथा उत्साह हिंदीतर भाषी प्रांत में गोलियों के साए में विषम परिस्थितियों में इतने सफल कार्यक्रम की कल्पना नहीं की जा सकती थी लेकिन सच था वहाँ प्रो. सुरेश कुमार के जोशीले भाषण ने समां बाँध दिया। देखने में प्रो. सुरेश कुमार सरल और मीठे लगते थे परंतु इतने ओजस्वी वक्ता होंगे सोचा तक नहीं था। समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया थें उन्हें शाल और बैज लगाकर सम्मानित किया। वो लोग वहाँ से प्रो. सुवंदनी के यहाँ चाय पर चले गए। हम घूमते हुए अपने विश्राम स्थल की ओर चल दिए रास्ते में प्रो. अखिलेश ने बताया कि कल सायं 5.30 बजे जब मैं आपके पास से आ रहा था तो यामजी बाजार जो कि विश्वविद्यालय और कांगला पार्क के बीच में सड़क पर ही है, वहाँ एक आत्मघाती उल्फा उग्रवादी ने मोटर साइकिल पर सवार होकर असम राईफल्स की जीप जो कि गश्त के लिए खड़ी थी, उसमें तीन जवान बैठे थे। टक्कर मारी जीप के परखच्चे उड़ गए। पास से दो नागरिक गुजर रहे थे वो भी मारे गए। मैंने कहा यहाँ तो सब कुछ सामान्य है। हाँ, यहाँ के लोगों को इसकी आदत हो गई है। अगर प्रशासन द्वारा कोई नागरिक मारा जाता तो आज कोई स्टूडेंट संगठन बंद का आह्वान कर देता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसलिए सब सामान्य है। मेरा मन था कि इंफाल से बर्मा जाया जाए वहाँ चीन की सीमा दिखती है। सुंदर नजारा होता है। प्रो. अखिलेश जी से और डॉ. नसीम, डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया, पात्रा तिप्पे आदि हम सब बैठे थे मैंने बर्मा के बारे में चर्चा की तो

डॉ. अखिलेश जी कहने लगे दिन के दिन तो लौटना संभव नहीं होगा। बर्मा का गेट चौबीस घंटे में दोपहर 12.00 बजे से 1.00 बजे तक ही खुलता है। आने-जाने वालों के लिए वही एक आने-जाने का रास्ता है। फिर परिस्थिति विषम है। रात को रुकने की बात सुनकर डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया और डॉ. नसीम ने कहा कि योगेंद्र जी जिंदा रहें तो बर्मा फिर भी देखा जा सकता है। यहाँ प्रोग्राम समाप्त कर सकुशल अपने घर पहुँचो यह सबसे अच्छा होगा। तीनों बुद्धिजीवियों की राय पर मैं भी सहमत हो गया।

– केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम, नई दिल्ली- 66

❑❑❑

मेरी अविस्मरणीय 'मोरनी हिल्स' यात्रा

अनिता शर्मा

30 मार्च, 2018 का दिन जीवन में विशेष महत्व रखता है क्योंकि इस दिन और अगले दो दिनों में जिदंगी मानो 30-35 वर्ष पीछे लौट गई थी। 80 के दशक में कुरुक्षेत्र में शोधार्थी रहे और कालांतर में एक प्रख्यात पुरातत्वविद के रूप में विख्यात हुए डॉक्टर मनमोहन शर्मा के ज़ेहन में एक विचार कौंधा कि क्यों न कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में 80 के दशक के अंतिम वर्षों व 90 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में शोधार्थी मित्रों (लगभग सभी सेनानिवृत्त हो चुके या होने की कगार पर) का सपरिवार एक सम्मिलन कराया जाए। उन्होंने इसके लिए हरियाणा के एक मात्र हिल स्टेशन मोरनी हिल्स के चंद्रावल रिजार्ट का चयन किया। यह 'चंद्रावल रिजार्ट' 80 के दशक की सुपरहिट हरियाणवी फिल्म चंद्रावल की हीरोइन रही प्रसिद्ध कलाकार उषा शर्मा जी के सुपुत्र चलाते हैं।

प्रथम तीन सम्मेलन लघु स्तर पर रहे। देश, विदेश से कई पुराने मित्र इकट्ठा हुए। इसे 'टिक्कर ताल' मीट (टी. टी.) नाम दिया गया। टी. टी. - 1, 2, 3 में तो हम सम्मिलित नहीं हो पाए। जैसे ही टी. टी. - 4 का निमंत्रण मिला हम सहर्ष तैयार हो गए। मनमोहन जी की एक सख़्त हिदायत थी कि सपत्नीक आना है और अपने शहर का विशेष व्यंजन साथ लाना है।

इस प्रस्तावित मीट में जाने से पूर्व मैं ऐसे घबरा रही थी कि जैसे एक नई नवेली दुल्हन अपने ससुराल जाने के नाम से घबराती है। वहाँ आने वाले मित्रों में से मैं डॉक्टर किरणदीप, रेणु भाभी, डॉ. राजनाथ भट्ट व डॉ. यशपाल के अतिरिक्त सभी को नाम से ही जानती थी। मैं भी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की कई वर्ष विद्यार्थी रही और वहीं प्रदीप जी से पहली मुलाकात भी हुई (जो कालांतर में प्रणय बंधन में परिणत हुई)। उनके कई शोधार्थी मित्रों को मैं उन दिनों मिलती भी रही सो उनसे परिचय था। परंतु शेष से पहली बार मिलने की घबराहट मिलते ही उड़न छू हो गई। 6 मित्र अपनी जीवन संगिनियों के साथ और एक राजन भाई बनारस से चलकर अकेले ही पहुँच पाए थे। सभी से मिलकर ऐसा लगा मानो उनसे अनेक बार पहले भी मिल चुकी हूँ। दशकों न मिल पाने का मलाल-सा होने लगा।

मोरनी हिल्स की यात्रा पर आने का मेरा यह प्रथम अवसर था। मोरनी हिल्स की जो छवि मेरे जेहन में थी, यह उसके सर्वथा विपरीत अनुभव था। मोरनी हिल्स की हरी-भरी पहाड़ियाँ, हरीतिमा ओढ़े ढलानें और तालों का जादुई सौंदर्य, मोरनी हिल्स को किसी भी अच्छे हिल स्टेशन के समकक्ष लाकर खड़ा कर देता है। 'घर की मुर्गी दाल बराबर' का मुहावरा चरितार्थ होता प्रतीत हो रहा था। हमारे ठहरने की जगह चंद्रावल रिजार्ट में तो अंदर व बाहर इर्द-गिर्द पेड़ों की भरमार थी। रंग बिरंगे फूलों की क्यारियाँ बरबस मन को मोह रही थीं। शोधार्थी मित्रों ने पहली मीटिंग में यहाँ पौधारोपण की एक परिपाटी का शुभारंभ किया था जो बाद की मीटिंग्स में भी बदस्तूर जारी रहा। मोरनी हिल्स के चंद्रावल में बिताए दो दिनों का आलम यह रहा कि लगा मानो कई वर्षों को एक साथ जी लिया हो। जीवन के सुख-दुख, तनाव, सफलताओं व असफलताओं से कोसों दूर सभी

 भाषा ISSN 0523-1418

ने इन दिनों को भरपूर जिया। वहाँ का वातावरण सुरम्य प्राकृतिक निश्छलता से भरपूर आडंबर रहित बड़ा ही सुखकारी था। मनमोहन जी की प्रबंधकीय क्षमता की तो क्या तारीफ करूँ बस सब कुछ इतना पूर्ण व्यवस्थित था कि नाश्ते, दोपहर के भोजन, शाम की चाय और रात्रि भोज का मैन्यू पूर्व निर्धारित था। चंद्रावल के कुक्स तो लाजवाब थे ही उनकी अतिथि सत्कार की सादगी व गरिमापूर्ण परंपरा और भी अधिक लाजवाब थी। चार दंपति चंद्रावल की कॉटेज चतुष्य में और दो निकटवर्ती रॉयल कॉटेज में ठहरे थे। लेकिन भोजन सब इकट्ठा ही करते थे। हर चीज हर वक्त उपलब्ध रहती थी। भोजन का कोई सानी नहीं था।

30 मार्च का दिन तो गप्पों के नाम रहा। मनमोहन जी के चुटकुले उनकी हंसी से ही शुरू होते थे और उनकी हँसी पर ही खत्म होते थे। कई बार तो मैं उनके चुटकुला सुनाते हुए हंसने की अदा को देखकर ही हँस पड़ती थी। फिर धीरे-धीरे सभी के द्वारा अपने-अपने शहरों के लाए हुए जतन से सहेजे हुए खाद्य वैशिष्ट्य का रसास्वादन करने का दौर आरंभ हो गया। डॉ. इंद्रजीत नागपाल की राष्ट्रीय डेरी शोध संस्थान करनाल से लाई गई सुस्वादु पिन्नियाँ, किरण जी की देहरादून से लाई गई सुर्खलाल स्ट्रॉबेरियाँ, डॉ. हरभजन सिंह भट्टी जी का पटियाला के गोपाल स्वीट्स का विशेष प्रकार का ढोकला, डॉ. राजन भट्टी द्वारा लाए गए बनारस की कचोड़ी वाली गली के देसी घी के कमाल के लड्डू, यशपाल जी द्वारा लवली स्वीट्स जालंधर की भुने चने की हर दिल अज़ीज़ बर्फियाँ, डॉ. प्रदीप स्नेही द्वारा अंबाला की प्रसिद्ध मोहन बेकरी के बटन केक और साहनी की कुरमुरी मठ्ठियाँ, मनमोहन जी द्वारा लाई गई संघोल की लाजवाब बर्फियाँ सभी ने मिलकर एक अजब समा बाँध दिया। विभिन्न प्रांतों के खाद्य वैशिष्ट्य की मानों प्रदर्शनी लग गई थी। इन सुस्वादु व्यंजनों के मोहपाश से हम में से कोई भी बच नहीं पाया था। यौवन मानो लौटता सा प्रतीत हुआ। सभी ने एक-दूसरे के लाए गए व्यंजनों का भरपुर लुत्फ उठाया और एक दूसरे के शहरों की स्वाद गलियों का नजारा सभी ने वहीं मोरनी में बैठे-बैठे देख लिया।

खाते-पीते बातों का दौर जारी रहा। बातें थी कि खत्म होने का नाम नहीं लेती थी। दशकों पुराना स्टॉक जो संग्रहीत था। शुरू-शुरू में तो सभी दंपति इकट्ठे चुटकियों का आनंद लेते रहे फिर धीरे-धीरे पुराने राज़ सामने आने लगे। डॉ. नागपाल के पंछी बनने की कहानी बहुत मज़ेदार लगी। रामजीत जी के 'सत श्री अकाल जी' का राज़ खुला और किरण जी के दूसरे कमरे में बैठकर गाना गाने की बात सभी को पता चली। भौतिकी विभाग के शोधार्थियों द्वारा छबील लगाने और किसी महिला शोधार्थी के न आने की कलई भी खुली। फिर शुरू हुआ डॉ. किरण की अर्थ भरी पुरानी बातों को स्मरण कराने का दौर तो शायद कुछ पति असहज भी हुए और शायद अंदर तक हिले भी। धीरे-धीरे स्थिति की गंभीरता को देखते हुए पुरुष मंडली ने एक दो बैठकें अलग-अलग भी जमाई। महिला मंडली मुस्कुराते हुए उनकी हलचलों का आनंद उठाती रहीं अब खुलकर ठहाके लगाने की बारी थी उनकी। जल्दी ही सभी में पारस्परिक घनिष्ठता हो गई है। लगा ही नहीं कि उनमें से कुछ तो परस्पर पहली बार मिल रही हैं।

फिर शाम को चंद्रावल के उपवन में बैठकर पकौड़ों का दौर शुरू हुआ। स्वादिष्ट इतने की सभी उंगलियाँ चाटने लगे। वैसे भी महिलाओं को हर वह चीज और भी स्वाद लगने लगती है जो उन्हें बैठे-बिठाए खाने को मिल जाए। यह कुट सत्य है। साथ लगे झूलों में बैठकर सभी ने बारी-बारी अपने बचपन को याद किया। फोटोग्राफी की जिम्मेदारी किरण जी और प्रदीप जी ने भरपूर संभाल रखी थी। शाम को पकौड़ों के सेवन के बाद ने मनमोहन जी से आग्रह किया कि डिनर थोड़ा हल्का-फुल्का हो तो ठीक रहेगा और हाँ, भिंडी का जिक्र करना तो मैं भूल गई। मनमोहन जी की भिंडी के प्रति नापसंदगी का सबने खूब मज़ा लिया। उन्होंने भी आज तक भिंडी न खाने के पक्ष में कई तर्क गिनाए। रात्रि भोज के बाद एक फिर हम सब डाइनिंग कक्ष में एकत्रित हुए। फिर शुरू हुआ गीतों का दौर। मैंने एक पुरानी ग़ज़ल, 'आज जाने की जिद ना करो' गाई। यशपाल जी की कविता, प्रदीप जी की व्यंग्यिका किरण जी के गीत, 'मेरे नैना सावन भादो' तथा महिला मंडली के समूह गान ने समाँ बाँध दिया। मनमोहन जी के गाए के. एल. सहगल के गीत को भी सभी ने सराहा। महफिल ऐसी जमीं कि समय का पता ही नहीं चला। रात गहरा गई थी। सबकी आँखों में आलस्य उतरने लगा था। सभी ने एक दूसरे से विदा ली।

यशपाल जी एवम् भाभी जी के साथ हमें नीचे 'रायल रिसोर्ट' में जाना था। उतरने से ज्यादा अगले दिन सुबह वापस आने का डर सता रहा था। चढ़ाई एकदम सीधी थी। रात को गहरी नींद आई क्योंकि थकावट बहुत थी। सुबह उठकर चाय पीते हुए हरीतिमा से आप्लावित दूर तक फैली पहाड़ियों को देखकर और पक्षियों का मधुर कलरव सुनना एक खूबसूरत अनुभव था। नाश्ते के लिए वापिस चंद्रावल पहुँचते हुए तरोताजा होने के कारण कठिनाई नहीं हुई।

अगले दिन प्रात: नाश्ते के बाद मोरनी हिल्स की प्रसिद्ध थलियाँ देखने का कार्यक्रम बना। मोरनी हिल्स समुद्र तल से 1220 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हरियाणा का एकमात्र हिल स्टेशन है पंचकूला जिले में स्थित यह हिल स्टेशन वस्तुत: हिमालय की सबसे कम ऊँचाई वाली शिवालिक पर्वतमाला की गोद में स्थित एक बेशकीमती रत्न की मानिंद है। चंडीगढ़ से दूरी मात्र 35 से 40 किलोमीटर और दिल्ली से लगभग 260 से 270 किलोमीटर होने के कारण यहाँ चंडीगढ़ पंचकूला, पटियाला और दिल्ली के सैलानियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रहती है। विगत कुछ वर्षों में यहाँ कोलाहल से दूर प्रकृति के शांत वातावरण में सुकून भरा समय बिताने के लिए आने वाले लोगों की संख्या में निरंतर बढ़ोतरी हुई है। मोरनी नामक एक छोटा-सा गाँव है जिसके आसपास कई दर्शनीय स्थल है। सबसे पहले हमारा कार्यक्रम मोरनी फोर्ट देखने का बना।

पहाड़ी घुमावदार रास्तों पर चलते हुए प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करते हम कुछ ही देर में मोरनी फोर्ट जा पहुँचे। मनमोहन जी वहाँ के चप्पे-चप्पे से वाकिफ थे इसीलिए वही गाइड की महती भूमिका भी निभा रहे थे। मोरनी फोर्ट 17वीं शताब्दी में बना था ऐसा इतिहासकारों का मत है। मोरनी हिल्स पहले राजपूत ठाकुरों के आधिपत्य में रहा जिन्होंने इस क्षेत्र को 14 छोटे-छोटे परगनों में विभाजित कर दिया। ये परगने भोज कहलाते थे और इनमें छोटी-छोटी आवासीय बस्तियाँ थी जो ढाणी कहलाती थीं। यह वर्गीकरण कमोवेश आज की परिवर्तित व्यवस्था में भी कायम है। मोरनी हिल्स उस जमाने में सिमोर रियासत के अधीन कोटाहा परगना (रायपुररानी के पास आज की गढ़ी कोटाहा का निकटवर्ती क्षेत्र) का ही हिस्सा थी। मोरनी और कोटाहा के ठाकुरों से लगातार मिलती चुनौतियों के चलते सिरमौर के राजा ने अपने दामाद प्रताप चंद्र को कोटाहा का प्रमुख बना दिया। 11 पीढ़ियों तक प्रताप चंद्र के वंशजों का कोटाहा व मोरनी पर शासन रहा।

जब सिरमौर में राजा बख़्त (भक्त) प्रकाश (1583 से 1605) ने गद्दी संभाली तो उसने कोटाहा मोरनी के तत्कालीन ठाकुर अधिपति मानचंद से उसकी बेटी स्वाति का हाथ माँग लिया। सिरमौर के राजा के आक्रमण करने पर भी मानचंद ने बेटी का विवाह बख़्त से करने से इंकार कर दिया और कोटाहा के कनैत राजपूतों से सहायता लेकर बहादुरी से लड़ा लेकिन हारकर उसे दिल्ली भागना पड़ा। उसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर मोमन मुराद नाम रख लिया। उसने अपनी बेटी का विवाह युवराज जहांगीर से करा दिया। यह 1605 के आसपास जहाँगीर के गद्दीनशीन होने से पहले की बात है। मोहम्मद मुराद ने मुगलों की सहायता से कोटाहा पर फिर विजय पाई। मोरनी वास्तव में पहाड़ी थी जिसका नामकरण मोहम्मद मुराद की पत्नी के नाम पर हुआ।

मोरनी फोर्ट धीरे-धीरे समय की थपेड़े खाता अपनी चमक खोता गया। कुछ वर्ष पूर्व हरियाणा सरकार ने इस का जीणोद्वार करा कर इसे भव्य म्यूज़ियम में तबदील कर दिया है। परिसर के बीचों-बीच स्थित एक विशाल वृक्ष शताब्दियों से यथावत् है। यहाँ छोटा मगर सुंदर लॉन विकसित किया गया है। परिसर में कुछ सुंदर मॉडल व चित्र उकेरे गए हैं। यह छोटा मगर खूबसूरत किला है। म्यूजियम के अंदर जहाँ मोरनी के इतिहास को चित्रित किया गया है वहीं पर्यावरण प्रदूषण से जुड़ी हानियों से आगाह करते चित्र व मॉडल बरबस ही ध्यान आकर्षित करते हैं। एक खंड हरियाणा के वन्य जीवों की विभिन्न प्रजातियों को समर्पित है। कुल मिलाकर मोरनी के नन्हें किले में स्थित यह छोटा सा म्यूज़ियम ज्ञान संवर्धन करने में पूर्णतया सक्षम है।

बाहर परिसर में सभी लोग इधर-उधर घूमते हुए फोटो खींच रहे थें। किरण जी ने मुझे फोटो खींचने के कुछ आवश्यक टिप्स दिए। उनके तकनीकी ज्ञान की मैं विश्वविद्यालय जीवन से ही कायल रही हूँ। उनके ज्ञान आवंटन का मुझे शीघ्र ही लाभ हुआ। मैं कुछ अच्छे चित्र विभिन्न कोणों से खींच पाई। अंत में सभी मित्रों ने इकट्ठे फोटो खिंचवाने का मन बनाया। इससे पहले कि

हम किसी से फोटो खींचने के लिए कहते डॉ. भट्टी का पंजाबी विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी सपत्नीक अपने नन्हें बच्चे को गोद में उठाए वहाँ नज़र आ गया। उसी ने हम सभी का एक यादगारी सामूहिक चित्र लिया। उस युवा जोड़े को चंद्रावल में दोपहर का भोजन साथ करने का निमंत्रण दिया गया जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मोरनी कोर्ट के बाहर स्थित मंदिर में शीश नवाकर हम सभी एक बार फिर चंद्रावल की ओर लौट पड़े दोपहर के भोजन के लिए। हमारे वहाँ पहुँचने के बाद वह युवा जोड़ा भी अपने प्यारे से नन्हें बच्चे के साथ पहुँच गया। डॉक्टर भट्टी घंटों अपने विद्यार्थी के नन्हें बेटे को गोद में उठाए स्नेह उँडेलते रहे। यह उनके स्नेहसिक्त व्यवहार का परिचायक था। वह युवा जोड़ा अपने गुरु, गुरु पत्नी और उनके सभी मित्रों का प्यार व आशीर्वाद पाकर अभिभूत था उस दिन उनकी शादी की सालगिरह भी थी यह उनके लिए यादगार बन गई। उस दिन डॉक्टर भट्टी के स्नेहिल स्वभाव व संगीत प्रियता को मैंने दिल से महसूस किया और साथ ही उनकी जीवनसंगिनी आदरणीय भाभी जी के व्यवहार की सौम्यता ने भी मुझे बहुत आकर्षित किया।

रेणु भाभी की स्नेहसिक्त हिदायतें और स्वस्थ रहने के नुस्खे मेरे लिए अमूल्य बन गए। नीता नागपाल जी के बैलोस ठहाके तो पूरे वातावरण को हास्य से भर देते थे। वे आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। डॉ. नागपाल को सभी पंछी के उपनाम से संबोधित करते हैं उनका उपनाम मुझे सार्थक लगा क्योंकि उनका मिजाज पक्षी की तरह नाजुक है। उनके बातचीत करने की सौम्यता और काव्य प्रतिभा ने मुझे विशेष प्रभावित किया। गीता भाभी मुझे एक नाजुक पँखुड़ी की मानिंद लगीं। बेहद शांत स्नेही और सचमुच सोने जैसी। उनकी ड्रेस सेंस भी गजब की है। डॉक्टर राजन भट्टी अपने स्वास्थ्य समस्याओं पर विजय प्राप्त कर जिस तरह बनारस से चलकर अपने जिगरी दोस्तों से मिलने मोरनी आ पहुँचे सचमुच उनके अदम्य साहस और जिजीविषा की ओर इंगित करता है। उनके साहस और जज्बे को मन ही मन बार-बार सलाम किया। प्रीति भाभी से मिलने की चाहत अधूरी रह गई। राजन भाई के अगली बार मिलने के वायदे को याद रखेंगे। डॉ. यशपाल और सुरेश भाभी से मिलकर ऐसा लगा कि हम इनसे पहले क्यों नहीं मिले। जालंधर इतना पास होते हुए भी जीवन की व्यस्तताओं में इस कदर उलझे रहे कि मिलने का ध्यान ही नहीं आया। शायद हम सभी मित्रों की भी यही स्थिति रही होगी अनुमान लगाना कठिन नहीं है। ख़ैर 'देर आयद दुरुस्त आयद' वाली कहावत को तो हम सभी ने अंततः चरितार्थ कर ही दिया। सुरेश भाभी और यश भाई अपने छोटे भाई अजय व उनकी पत्नी सीमा की तरह ही आत्मीय लगे। किरण जी के बारे में कहने के लिए मेरे पास शब्द सामर्थ्य नहीं है। मैं इनकी आत्मीयता, बड़प्पन, विषय प्रवीणता, तकनीकी ज्ञान और हाज़िरजवाबी की विश्वविद्यालय जीवन से ही कायल रही हूँ। मुझे व प्रदीप जी को इनका मार्गदर्शन उस समय से ही मिलता रहा है जब प्रदीप जी और मैं प्रेम की पहली सीढ़ी चढ़ रहे थे। यह हमारी सभी गतिविधियों और प्रेम की पूर्णता के साक्षी ही नहीं रहे बल्कि परिपक्व परामर्शक भी रहे हैं। प्रदीप जी को शोध क्षेत्र में 'जियो लैब' में पहला पत्थर इन्होंने ही कुटवाया था। प्रदीप जी को वह दिन हमेशा याद रहता है।

31 मार्च को दोपहर बाद हमारा कार्यक्रम मोरनी हिल्स के ताज़, 'टिक्कर ताल' की यात्रा का बन गया। रास्ते में खूब फोटोग्राफी की। किरण जी ने फाल्ट लाइन के बारे में रोचकता से बता कर अपने भूभौतिकीय ज्ञान का परिचय दिया। टिक्कर ताल मोरनी से लगभग 7 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मोरनी से लगभग आधे घंटे की यात्रा के बाद हम टिक्कर ताल पहुँच गए। यहाँ हरियाणा पर्यटन का माउंटेन क्वेल पर्यटक गृह है। यहाँ दो झीलें हैं। एक दूसरे से जुड़ी हुई इन झीलों को एक पहाड़ी दो हिस्यों में बाँटती है। एक बड़ा ताल व दूसरा छोटा ताल कहलाती है। पहाडियों से घिरा टिक्कर ताल का मनोरम दृश्य देखते ही बनता है झील के किनारे हरा-भरा खूबसूरत लॉन विकसित किया गया है। एक जगह कई टायर एक पोल से लटके हुए हैं एक के ऊपर एक कई टायर जुड़े हैं। पर्यटक इनके ऊपर चढ़ कर फोटो खिंचवाते हैं। हम सब ने भी वहाँ फोटो खिंचवाई। ताल में बोटिंग की भी सुविधा है। किनारे पर एक प्लेटफार्म बना हुआ है कुछ बेंच भी रखे हुए हैं। कुछ देर विश्राम कर हम सभी वहाँ खड़े होकर डूबते सूरज की झील में पड़ती किरणों का अक्स देखते रहे।

अस्ताचल की ओर जाते सूरज का लाल गोला धीरे-धीरे पहाड़ियों के पीछे लुप्त हो गया। सांझ उतरने लगी थी। झील की सतह से स्पर्श कर आती शीतल मगर मनोहारी हवा एक अलग तरह के आनंद की अनुभूति करा रही थी। मन वहाँ से लौटने का न था। पर अंततः कुछ देर और प्रकृति के स्नेहिल स्पर्श का आनंद ले हम सब वापिस चंद्रावल रिजोर्ट की ओर लौट पड़े। कई लोग रात को टिक्कर ताल रिजोर्ट व माउंटेन क्वेल में रुकने का आनंद भी लेते हैं। लेकिन हमने अपना ठिकाना चंद्रावल में बनाया हुआ था। रात को थकान के कारण सभी को जल्दी ही नींद ने आ घेरा।

अगले दिन प्रातः पौधारोपण व पहले से लगाए गए पौधों को पानी देने का कार्यक्रम शुरू हुआ। जाने की तैयारी सभी पहले ही पूरी कर चुके थे। परिसर में लगे एक शहतूत के पेड़ पर लगे शहतूतों का सभी ने रसास्वादन किया।

आखिर वह पल आ ही गया जब सब अपने-अपने गंतव्य स्थलों की ओर रवाना होने वाले थे। पिछले दो दिनों में मानों एक युग जी लिया था हम सभी ने। स्वर्णिम यादें मानों मस्तिष्क में चस्पां हो गई थीं। एक परिवार के सदस्य अपनी-अपनी राहों पर चल पड़ने वाले थें। विदाई से पूर्व चंद्रावल के मुख्य द्वार पर एक सामूहिक चित्र कराया गया। एक दूसरे को यात्रा की शुभकामनाएँ देते शीघ्र पुनः मिलने का वादा करते और हृदय में मोरनी प्रवास की सुमधुर यादें समेटे मित्रों का काफिला चल पड़ा अपनी-अपनी यात्रा पर।

– विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, देव समाज गर्ल्स कॉलेज, अंबाला शहर (हरियाणा)

❑❑❑

कर्तव्य

दीपक तांबोली

अनुवादक : डॉ. अशोक वाचुलकर

बाजार के एक कोने में बैठकर गजू अपना जूते-बूट सिलने का काम कर रहा था। किसी के आने की आहट सुनकर उसने अपनी गर्दन ऊपर उठाई।

"अरे, ये जूते सिलने हैं?"

उसे लगा कि सामने वाला व्यक्ति पहचान का है।

"आप जोशी सर?", उसने पूछा।

"हाँ, तुम?"

"मैं गजानन। गजानन लोखंडे। जिला परिषद के स्कूल में दसवीं क्लास में था। आप हमें अंग्रेजी और इतिहास पढाते थे।"

"हाँ, बिल्कुल। लेकिन तुम्हारा चेहरा पहचान नहीं पा रहा हूँ" जोशी सर उसे गौर से देखते हुए बोले।

"जाने भी दीजिए सर। आपको याद रहूँ इतना मैं बुद्धिमान छात्र नहीं था।"

"लेकिन तू यह काम क्यों....?

"सर, यह हमारा परंपरागत व्यवसाय है! दादा, पिता जी दोनों यही काम करते थें। दसवीं पास हो गया। तभी से पिता जी की तबीयत ठीक नहीं है। इसलिए पढ़ाई छोड़कर पिछले तीन सालों से यही काम कर रहा हूँ।

"क्या हो गया पिता जी को?"

"हमेशा शराब पीने से उनका लीवर काम नहीं कर रहा है इसलिए वे बीमार ही रहते हैं।"

"ओह! और तुम्हारे भाई?"

"दो भाई और एक बहन। तीनों मुझसे छोटे हैं। पढ़ रहे हैं। माँ अनपढ़ है।"

"अच्छा।" जोशी सर ख्यालों में डूब गए। गजू से कहा, "अरे गजू, मेरी नाप का एक जोड़ी शूज बनाकर देगा?"

गजू राजी हो गया। उसने नाप लेकर दो दिनों में शूज बनाकर दे दिए। राजू के 'ना' कहने पर भी उन्होंने उसे पाँच सौ रुपए दे दिए। राजू को बेहद खुशी हुई। आज तक उसे इतने रुपए कभी नहीं मिले थे। जूते बनवाने के लिए अब नियमित रूप से उसके पास ग्राहक आने लगे। सभी कहते कि जोशी सर ने भेजा है।

कुछ दिनों बाद जोशी सर आ गए। ग्राहकों को अपने पास भेजने के लिए राजू उन्हें धन्यवाद देने लगा। उन्होंने उसे रोका और बोले, "गजू तेरे पास हुनर है। तुम ऐसा क्यों नहीं करते कि यहीं एक छोटी-सी दुकान लगा लो। उसमें अलग-अलग साईज के दर्जन-भर जूते-शूज रख दो, ताकि ग्राहकों को प्रतीक्षा ना करनी पड़े।"

"सर, आइडिया है तो एकदम बढ़िया। लेकिन... उसके लिए दस-पंद्रह हजार की जरूरत पड़ेगी। इतने रुपए मेरे पास नहीं हैं।"

"कोई बात नहीं। मैं दूँगा तुझे। हाँ, लेकिन छह महीनों में तुझे वापिस करने पड़ेंगे। ठीक है?"

गजू तैयार हो गया। जहाँ वह बैठता था वहाँ हफ्तेभर में ही एक टपरिया बनाई गई। महीने के भीतर ही गजू के पंद्रह हजार वसूल हो गए। दस हजार मुनाफा भी हो गया। जोशी सर के आने पर उसने उन्हें पंद्रह हजार दे दिए। उन्होंने वे रुपए उसे लौटा दिए।

"मैंने तुझे छह महीनों की मोहलत दी है। छह महीने बाद ही तू वे रुपए लौटाना। तब तक अपना व्यवसाय बढ़ाने के लिए उनका उपयोग कर लेना।"

गजू का उत्साह बढ़ गया। वह अपनी टपरिया में अधिक माल रखने लगा। बेहतरीन क्वालिटी और उचित दाम के कारण उसकी टपरिया पर अत्यधिक भीड़ जमा होने लगी।

छह महीने बाद जोशी सर आ गए। गजू के चेहरे पर अजीब-सी रौनक एवं आत्मविश्वास झलक रहा था।

"सर, बहुत अच्छा चल रहा है। अब आगे क्या करेंगे?"

"गजू, अब मार्किट में ठीक-ठाक जगह देखकर एक दुकान किराए पर लेंगे। यह सब वहीं शिफ्ट करेंगे। मैंने देख रखी है दुकान। जगह एकदम बढ़िया है और हाँ, स्मॉल स्केल इंडस्ट्री के लिए मिलने वाला लोन मैं तुम्हें दिलवा दूँगा। एम. आय. डी. सी. में फैक्टरी लगवाना।

"क्या? फैक्टरी?" गजू सिहर उठा। "सर, मुझसे होगा यह सब?"

"हाँ-हाँ। क्यों नहीं! मैं हूँ ना।" उसके कंधे पर हाथ रखते हुए वे बोले।

गजू ने नीचे झुककर उनके चरण छु लिए।

"सर, बहुत कर रहे हैं आप मेरे लिए।"

"अरे, यह मेरा दायित्व है।" उसे ऊपर उठाते हुए वे बोले, मेरे बाकी के छात्र विदेशों में नौकरियाँ कर रहे हैं। कुछ यहाँ बड़े-बडे अधिकारी हैं। बस, तू अकेला पीछे रह जाए, यह मुझसे बर्दाश्त नहीं होता है।" गजू की आँखें नम हो आई।

दो सालों में गजू ने काफी तरक्की कर ली। फैक्टरी का विस्तार हो गया। दुकान एक से तीन हो गई। झोपड़-पट्टी छोड़कर वह थ्री बी. एच. के. फ्लैट में रहने के लिए चला गया। भाई-बहन का दाखिला अच्छे स्कूल में हो गया। इसी दरमियान उसके पिता जी का देहांत हो गया। उसके एक साल बाद उसका विवाह हो गया। लड़की पसंद करने के लिए वह जोशी सर को ही ले गया था। कुछ दिनों बाद उसकी माँ का देहांत हो गया।

जोशी सर को रिटायर्ड हुए पाँच साल हो गए थे। वे अब थक गए थे। उनके बेटे ने इंग्लैंड में बसने का निर्णय लिया था। बेटी पहले ही ऑस्ट्रेलिया में बस गई थी। अत: सर थोड़े परेशान थे। उनकी बीवी की तबीयत भी ठीक नहीं रहती थी।

एक दिन गजू को खबर मिली कि सर की पत्नी का देहांत हो गया। अपना काम-धाम वहीं छोड़कर वह भागता हुआ सर के घर पहुँचा। सर के बेटा-बेटी समय पर नहीं पहुँच सके। उनके पहुँचने से पहले ही अंत्येष्टि पूरी करनी पड़ी। गजू ने सर को किसी चीज की कमी महसूस नहीं होने दी। साथ ही तेरहवीं तक का सारा खर्चा भी उसी ने उठाया।

सब कुछ निपटने के बाद सर के बेटे ने उन्हें अपने साथ इंग्लैंड चलने के लिए बहुत आग्रह किया। लेकिन सर ने स्वदेश छोड़ने से साफ इंकार कर दिया। सभी निकल गए। फिर शुरू हुआ सर का एकाकीपन। गजू से यह देखा नहीं जा रहा था। लेकिन वह भी मजबूर था।

एक दिन अपनी बीवी को लेकर गजू सर के घर पहुँच गया। उसे देखकर सर को आश्चर्य हो गया। "सर, आपके अनंत उपकार हैं, मुझ पर। आज फिर मेरी मदद करेंगे आप?"

"अरे, अब तुझे मेरी मदद की क्या आवश्यकता? तू अब बहुत बड़ा बन गया है। चलो बताओ, क्या मदद चाहिए तुझे मेरी?"

"सर, मेरे पिता जी बनेंगे आप?"

सर सुन्न रह गए। "फिर बोले, अरे पगले, मैंने तुझे कब का अपना बेटा बना लिया है।"

"तो अब मुझे बेटे के दायित्व निभाने दीजिए। मैं आपको अपने घर ले चलने के लिए आया हूँ। मेरी आपसे बिनती है कि अपनी शेष जिंदगी आप हमारे साथ बिताए।" हाथ जोड़ते हुए गजू बोला।

"अरे, लेकिन क्या तूने अपनी बीवी से पूछा?-

"सर, उससे पूछकर ही मैंने यह फैसला लिया है। उसके भी पिता जी नहीं है। आप जैसे श्वसुर पिता जी के रूप में मिले, तो उसे भी खुशी होगी। और आगे बच्चे होंगे तो उन्हें भी तो दादा चाहिए।"

"सोच लो। बुढ़ापा बहुत बुरा होता है। मैं बीमार पड़ूंगा, तो सब कुछ तुझे ही करना पड़ेगा।

"बेटा होने पर वह सब करना पड़ेगा ही। सर, वह सब सोचविचार कर ही मैं आया हूँ"

सर, सोच में पड़ गए। फिर बोले, "ठीक है। आऊँगा मैं, लेकिन मेरी एक शर्त है। मुझे तू 'सर' कहेगा।

भाषा ISSN 0523-1418

"मैं अपने पिता जी को 'अण्णा' कहता था। आपको भी वैसे ही पुकारूँगा।"

सर दिल खोलकर हँस पड़े।

"और एक शर्त। तेरे जैसे कई गजू हैं। जिन्हें मदद की जरूरत है। उन्हें गजानन सेठ बनने के लिए मदद करनी है।"

गजू का गला भर आया। वह सर से लिपट गया। दोनों देर तक रोते रहें।

– मूल लेखक : 94, नागेश्वर कालोनी, महाबल परिसर, जलगाँव

– अनुवादक : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, आजरा महाविद्यालय, आजरा, महाराष्ट्र-416505

❑❑❑

ढाल

माया राही

अनुवाद : डॉ. हूंदराज बलवाणी

ब्रजलाल ने बीस का नोट कंडक्टर के हाथ में पकड़ा दिया। वैसे चलती बस में, जो आवश्यकता से अधिक यात्रियों से भरी हुई थी, जेब में हाथ डालकर, पर्स निकालकर उसमें से नोट निकालना बहुत मुश्किल काम था लेकिन उसे बरसों का अनुभव था। उस अनुभव के आधार पर वह नोट निकालकर कंडक्टर को देने में सफल हुआ था। गंतव्य स्टॉप के दो टिकट और दो रुपए का सिक्का उसे वापस दिया गया।

"देखा, कितने पैसे बचा लिए।" उसने बहुत ही मुश्किल से अपने आप को संभालने की कोशिश में लगी हुई सरोज से कहा। "ऑटो में चलते तो सत्तर रुपए तो लग ही जाते।"

बस के अचानक ब्रेक लगने से सरोज पीछे की सीट पर बैठे यात्री के ऊपर जा गिरी और ब्रजलाल सरोज के ऊपर। पुराने ज़माने की बस जिस के अंदर वाले अंजर-पंजर गायब थे, केवल इंजिन और चार पहियों पर चलकर मानो यात्रियों को उनकी मंजिल तक पहुँचाने का उपकार कर रही थी। इतना क्या कम था। यात्रियों से भरी हुई बस, बस नहीं पशुओं की गाड़ी लग रही थी।

"सारी" सरोज ने उस आदमी से कहा, जिस पर वह गिरी थी। लेकिन इतने लोगों की गर्दी में खुद को संभालकर सीधी खड़ी रहने में वह सफल न हो पाई थी।

"आप यहाँ बैठिए।" उस आदमी ने अपनी सीट उसे देते हुए कहा।

"नहीं, नहीं... आप बैठिए।" उसे संकोच हो रहा था। 'ऑटोरिक्शा में जाते तो आराम से बैठकर जाते- इस तरह धक्के खाते हुए, लोगों की चक्की में तो नहीं पिसते।"

"बैठ न! जगह मिल रही है तो बैठती क्यों नहीं।" ब्रजलाल ने कहा। सरोज मन ही मन में कुढ़ती हुई बैठ गई। छह लोगों की सीट पर यह सातवी सीट थी।

अब ब्रजलाल भी सरकते हुए उसके नज़दीक आया और छत पर हाथ रखकर संतुलन बनाए रखने की कोशिश करने लगा।

शांतिलाल के घर से कन्या देखकर निकले तब दस बज चुके थे। सरोज ने दबी हुई आवाज़ में कहा, "ऑटो में चले?"

"दिमाग तो खराब नहीं हुआ तेरा! यहाँ से सीधी बस मिलती है अपने घर तक।" कहते हुए उसने बस स्टॉप का रास्ता पकड़ा। उसके पीछे चलते-चलते वह रुक गई। "लेकिन बस स्टॉप तो यहाँ से दूर है।"

"तू चल तो सही। थोडा-सा ही तो फासला है। बस मिलते ही सीधे घर पहुँच जाएँगे।" कहते हुए वह बड़े-बड़े डग भरने लगा। सरोज ने अपने कमजोर पैरों से थोड़े कदम चलने के पश्चात् कहा, "सुनिए, संजय ने सौ रुपए ऑटो के लिए दिए हैं। कहा है कि ऑटो में ही आना, बस के धक्के मत खाना।"

यह सुनकर वह चलते-चलते रुक गया। पीछे मुड़के उसकी ओर शोखी से देखते हुए कहा, "तेरे बेटे का तो लाखों का कारोबार चलता है। पैसे की कदर वह क्या जाने!"

सरोज अपने आपको घसीटते हुए पति के पीछे चलने लगी ओर सोचने लगी, "उसे पैसे की कदर हो

 भाषा ISSN 0523-1418

न हो अपनी बूढ़ी माँ की कदर तो है। इसे क्या है। टीवी, अखबार, न्यूज और राजनीति इसके जीवन के खास विषय हैं। जीवन भर इन्होंने केवल स्वयं का ही ख्याल रखा है। उच्चकोटि का खाना और कसरत। सरोज जैसी उपजाऊ जमीन में बीज बोता रहा। फसल प्राप्त करता रहा। यह बच्चों को जन्म देती रही, पालती रही। घर, बच्चे, समाज और साथ में नौकरी का बोझ उठाते बैल की तरह परिश्रम करती रही और अंदर ही अंदर खोखली होती रही।

कुछ दिन पूर्व संजय, पिता जी से छुपाकर किसी अस्पताल में उसकी जाँच करवा आया था। रिपोर्ट उसके सामने आकर रखे थे। उसके शरीर में विटामिन 'ए' से लेकर 'जेड' तक हर विटामिन की कमी थी और खास कमी थी कैल्शियम की। कैल्शियम की तो इतनी कमी थी कि अब उसकी हड्डियाँ चूरा होने जा रही थी। ऑस्टियोपोरोसिस की बीमारी उस हद तक पहुँची थी, जहाँ से लौटना असंभव-सा लग रहा था।

चलते-चलते वह थक गई। बिजली के खंभे का आधार लेकर वह साँस लेने रुक गई और वह अपनी ही धुन में चलता रहा। ऐसे अवसरों पर सदैव इसके मन में यह सवाल उठता था कि उसे अपनी ही धुन में चलकर, अपने ही तरीके से जीवन जीना था तो उसने शादी क्यों की? उत्तर भी वहीं से प्राप्त हो जाता था जहाँ से प्रश्न उठता था।अपनी तरह से अपनी ही धुन में जीवन व्यतीत करने के लिए एक ठोस ज़मीन की जरूरत पड़ती है, जो पत्नी के सिवा और कोई नहीं दे सकता और जिस तरह लोग अपनी मनोकामनाएँ पूरी करने के लिए देवी-देवताओं पर मुगिर्यो और बकरियों की बलि चढ़ाते हैं, उसी तरह उसने सरोज की बलि चढ़ाकर अपने जीवन की हर इच्छा, अभिलाषा पूरी की है।

काफी दूर जाकर वह अचानक रुक गया और उसे तेज़ गति से चलने का इशारा करने लगा।

सरोज को याद आ गए बाग में देखे हुए दो दंपति, जिन्हें वह सांझ के समय प्राय: देखती थी। श्रीमती अय्यर स्वयं अस्सी साल की होते हुए भी अपने पचासी वर्ष के पति का हाथ पकड़कर बड़े स्नेह से बाग के तीन-चार चक्कर लगवाती थी। आज भी उसे अपने पैरों की सूजन और मधुमेह से अधिक चिंता अपने पति की रहती है। अपनी दवा समय पर लेने में भले वह चूक जाए लेकिन मजाल है कि पति को समय पर दवा खिलाने में एक मिनट का भी विलंब हो। दूसरा दंपति था अविनाश और अनिता। दोनों के माथे पर चाँदी का ताज था। अनिता को टाँगों के दर्द की शिकायत रहती थी। डॉक्टर ने चलने-फिरने की सलाह दी थी। पति अपनी पत्नी के साथ बाग में तो हर रोज आता था लेकिन बाग में दाखिल होने के समय और बाहर निकलते समय, जो चार पायदान थे, चढ़ने-उतरने में पत्नी को कष्ट होता था। जितना समय उसे लगता था उतना समय अविनाश बाबू पायदान पार करके एक कोने में जाकर बैठ जाता था। आती-जाती कोई महिला कभी सहानुभूति से उनका हाथ पकड़कर उन्हें मदद करती थी लेकिन पति महोदय कभी भी हाथ बढ़ाकर मदद नहीं करता था।

जैसे-जैसे करके बस स्टॉप पर पहुँचे। वहाँ का दृश्य देखकर सरोज घबरा गई। लोगों की गर्दी देखकर उसका दिल दहल गया। स्टॉप पर न तो लोगों की लाईन थी और न लोगों के खड़े होने का ढंग। जैसे कोई मेला लगा हुआ था। बस आने पर महिलाएँ, पुरुष, कुछ अकेले, कुछ बच्चों को लिए भागने लगते थे। उसने हिम्मत करके पति से कहा, "सुनिए, गर्दी तो देखिए।"

"गर्दी"? कहाँ है गर्दी? देख न, बसों में लोग जा रहे हैं! बाकी लोग हैं कितने?

उसने देखा कि एक बस में जितने यात्री बैठकर जा रहे थे, दूसरी बस आने से पहले उतने ही लोग, बल्कि उन से भी ज्यादा लोग इकट्ठे होते जा रहे थे। उस का मन हुआ कि वह ऑटोरिक्शा पकड़कर आराम से घर पहुँच जाए। लेकिन ब्रजलाल के चीखने-चिल्लाने की कल्पना करके वह चुप रही। पति महोदय तो कही भी तमाशा करने से घबराते नहीं। लेकिन उसे तो तमाशा बनना, हँसी का पात्र बनकर तमाशा करना बिल्कुल पसंद नहीं। वैसे भी अपनी चलाने के लिए अब काफी देर हो चुकी है। ब्रजलाल ने चिल्ला-चिल्लाकर उसके निर्बल शरीर में मन को इतना तो संत्रस्त कर दिया कि उसके होते वह साँस लेने भर से डर जाती है।

वह सोचने लगी, पैसे बचाकर अब भला करना क्या है? पूरी जवानी किफायत करने, पाई-पाई बचाकर गुजार दी। बच्चे बड़े हो गए। पंख फैलाकर, उड़कर उन्होंने जाकर अपने-अपने घोंसले बना लिए। सभी सुखी-संपन्न हैं। बाकी रहा संजय, उसके लिए भी

कन्या देखकर लौट रहे है। सुनंदा समझदार लग रही थी। संजय से कदम मिलाकर चलेगी तो सुखी रहेगी।

खड़े-खड़े वह थक गई। उसे याद आया कि डॉक्टर की सलाह से जब संजय दवाइयाँ ले आया था तब ब्रजलाल बरस पड़ा था।

"लगता है तेरा दिमाग खराब हो गया है। इसका तो बुढ़ापा है और बुढ़ापे में तो यह सब चलता रहता है। दवाइयों से क्या होगा? जवान हो जाएगी क्या?

संजय क्षण भर के लिए चुपचाप पिता की ओर देख रहा था। फिर शांत भाव से पिता जी से पूछा, "मम्मी की उम्र क्या है?"

"क्यों सड़सठ-अड़सठ की तो होगी। यह उम्र कम तो नहीं।"

"मम्मी पैसंठ की है। खैर, आपकी उम्र क्या है?"

"मेरी? मेरी सत्तर के आसपास होगी।"

"आपकी उम्र तिहत्तर साल है। अब बताइए, आप दोनों में से किसकी उम्र अधिक है? कौन बीमार है?"

"मैं भी कहाँ ठीक हूँ!"

"आप कहाँ बीमार है। सोने-चाँदी के वरक वाला चवनप्राश खाते हैं।"

"बकवास बंद कर। भाग यहाँ से। आया है वकीलों की तरह सवाल पूछने वाला।"

"कंडक्टर जी, हम पीछे के दरवाजे से उतर सकते है?

वैसे भी इतनी गर्दी में आगे के दरवाज़े तक पहुँचना संभव नहीं है।" ब्रजलाल ने कंडक्टर से पूछा।

"टिकट में कोई बाकी है क्या?" कहते कंडक्टर लोगों की गर्दी को चीरते हुए आगे निकल गया।

सरोज घबरा गई। स्वयं को अशक्त महसूस किया उसने पीछे वाले दरवाज़े की ओर देखा, जहाँ लोग सीढ़ी पर नीचे तक लटके हुए थे। 'हाय राम'! अब उतरेंगे कैसे? चढ़ते समय पति महोदय पहले बस में चढ़े थे और फिर उसे कहा था कि चढ़, एक हाथ में बस की राड को पकड़ और दूसरे हाथ से मुझे।

सरोज का पूरा शरीर काँप रहा था। बस के आखिरी पायदान पर वह खड़ी हो गई थी और बस चल पड़ी थी। यह तो अच्छा हुआ कि दो-तीन युवक उसके बाद चढ़े थे। एक-एक पैर पायदान पर रखकर, राड में हाथ डालकर लटक रहे थे, तब सरोज की जान में जान आई थी।

"अब उतरेंगे तो उतरेंगे कैसे?" सरोज के दिल की धड़कन बढ़ गई।

"उठ, स्टॉप आने वाला है।" सरोज खड़े लोगों के शरीरों को चीरती हुई उठ खड़ी हुई और भय के मारे दरवाजे पर लटके खड़े उन लोगों की गर्दी को देखने लगी, जिन्हें पार करते हुए उसे उतरना था।

"आ, आगे आ!" ज्यों-त्यों करके कंधे वाले पर्स को संभालते हुए वह पति के आगे खड़ी हो गई। अच्छा होता अगर वह स्वयं सबको हटाते हुए आगे-आगे चलता तो वह आसानी से उनके पीछे निकल जाती।

"आपको यहाँ उतरना है क्या?" आगे खड़े हर एक पुरुष से पूछते, उन्हें पीछे धकेलते वह दरवाज़े की ओर बढ़ती रही। ऐसे ही जीवन भर ब्रजलाल उसे ढाल बनाकर इस्तेमाल करता रहा है।

बस एक क्षण के लिए रुकी।

"उतर, उतर, जल्दी कर।" ब्रजलाल ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे हल्का-सा धक्का दिया। सरोज का एक पाँव जमीन पर ही था कि कंडक्टर ने घंटी बजाई और बस चलने लगी।

उसका एक पाँव जमीन से लगकर पत्थरों के ऊपर घसीटता हुआ जा रहा था। बस में बैठे लोग चिल्लाए। बाहर बस-स्टॉप पर खड़े लोग भी चिल्लाने लगे और सरोज ने बस की राड वाला हाथ छोड़ दिया। ठीक उसी समय ड्राइवर ने लोगों की आवाज़ें सुनकर ज़ोर से ब्रेक लगाया। सरोज उछलकर फुटपाथ की एक दुकान के पास जा गिरी और बेहोश हो गई।

– मूल लेखक : ए-1/601, हैप्पी वैली टिकुंजी वाड़ी के पास, मानपाड़ा, थाणा-400610

– अनुवादक : 172, महारथी सोसायटी, सरदार नगर, अहमदाबाद-382475

❑❑❑

जल-समाधि

अर्पण कुमार

युद्ध क्या है! विचारधारा, मतावलंबन, पूर्वाग्रह और स्वार्थ से बने माँझे की वह डोर है, जिससे दुश्मन और दोस्त के दो फाँक किए जाते हैं। कुछ दोस्त मिलकर कुछ दुश्मनों को मारते हैं और अपने इस कृत्य पर आनंदित होते हैं। फिर यह प्रक्रिया मौका मिलते ही दूसरी ओर से भी अपनाई जाती है। अपनी ऐसी कायरता को अपनी ताकत समझने की यह कवायद, सदियों से अनवरत जारी है। कभी पश्चिम में तो कभी पूरब में। कभी विश्व युद्ध के रूप में तो कभी किसी सांप्रदायिक दंगे की शक्ल में। कभी नस्लीय हिंसा का चेहरा लेकर तो कभी जातीय श्रेष्ठता के नाम पर होने वाले संघर्षों के रूप में। आजकल तो आतंकवाद के कहर से पूरा विश्व कराह रहा है। युद्ध/अहिंसा, कुछ लोगों के लिए किसी खेल सरीखे हो जाते हैं। खेल की ही तरह इसमें भी जीत-हार के कई रोमांचक पल धूप-छाँव की तरह आते-जाते रहते हैं। जो दिनभर विजेता की तरह आगे बढ़ रहे थे, अचानक शाम होते-होते उन्हें पीछे हटना पड़ जाता है । बाउंड्री बनाई और मिटाई जाती है। फिर बनाई और मिटाई जाती है। यह सिलसिला जारी रहता है। कभी नक्शे पर रणनीतियाँ बनाई जाती हैं, तो कभी उबड़-खाबड़ रास्तों पर टैंक दौड़ाए जाते हैं। हड्डी को कंपकंपाती ठंड में जहाँ रतजगा करना होता है, वहीं आत्मा तक को झुलसाती गर्मी में दिनभर यूनीफॉर्म पहने और कंधे पर बंदूक रखे चौकसी करनी पड़ती है।

हथियारों की सौदेबाजी होती है। बड़े-बड़े वादों के बीच, बड़ी-बड़ी घोषणाओं के बीच कैसे छोटे-छोटे अरमानों के पौधे दबाए और कुचले जाते हैं। कई नन्हीं कोंपलें असमय बर्बाद हो जाती हैं। युद्ध कोई ढाई अक्षरों का शब्द नहीं बल्कि युगों-युगों तक अपने प्रभाव से डराते रहने वाली एक हिंसक प्रक्रिया है, एक अप्रिय तथ्य है, एक बलात परिघटना है।

माउंटबेटन योजना और भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के मद्देनजर भारतीय उप महाद्वीप दो हिस्सों में बँट गया। भारत और पाकिस्तान। इस विभाजन के दौरान एक करोड़ से अधिक लोगों ने पलायन किया। इसे दुनिया के कुछ बड़े पलायनों में से एक माना जाता है। मगर यह पलायन शांतिपूर्ण नहीं था। इस दौरान भारत-पाकिस्तान के विभिन्न हिस्सों में सांप्रदायिक हिंसा, बलात्कार, हत्या और लूट की सैंकड़ों घटनाएँ हुईं जिनमें दोनों ही तरफ मानवता तार-तार हुई। दोनों ही देशों में लाखों लोगों ने कई-कई सालों तक अपरिचित और नई जगहों पर टेंटनुमा आवासों में अपने समय गुजारे। यह कहानी एक ऐसे ही परिवार की है। मगर क्या सचमुच यह कहानी सिर्फ एक परिवार की है?

गुरुमुख नाथानी के दादा श्याम लाल नाथानी मध्यप्रदेश के कटनी में रह रहे थे। वे यहाँ पाकिस्तान के सिंध प्रांत से भागकर आए थे। हर समय अपने गुरु झूलेलाल के स्मरणों में खोए रहने वाले श्याम लाल के लिए अपने पुरखों की जमीन को अचानक छोड़ कर आना आसान न था। जब तब अपनी मिट्टी की कसक उन्हें भीतर तक खाली कर जाती। मगर अब शायद उन्हें इस कसक के साथ ही मरना था।

गुरुमुख जब छोटा था, तब खाड़ी युद्ध हुआ था। टीवी पर देखे महाभारत और रामायण के कई काल्पनिक दृश्य, मानो सच हो उठे थे। लोग टीवी के परदे पर घर बैठे युद्ध की विभीषिकाओं के आक्रामक तेवर देख रहे थे। यह पूरी दुनिया को मानो युद्ध के प्रभाव में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से लाने की कोशिश थी। गुरुमुख का किशोर मन अभी इतना वयस्क कहाँ हुआ था! टीवी देखते-देखते वह अपने दादा से कह बैठा "दादा जी! देखिए तो कितने पटाखे चल रहे हैं!"

श्याम लाल का मन दुखी हो गया। बोले, "बेटा, ये पटाखे नहीं हैं। मनुष्य के पतन के आविष्कार हैं। ये सिर्फ शोर पैदा नहीं करते बल्कि हमें गूँगा, बहरा और अंधा बनाते चले जा रहे हैं। ये हमारी संवेदनाओं की तरलता को जला रहे हैं। हमारे भीतर की मनुष्यता को सोख रहे हैं।"

गुरुमुख ने अपनी उम्र से दो कदम आगे बढ़कर अपने दादा से सवाल किया, "दादा जी, मैंने तो अपने स्कूल में पढ़ा है कि दुनिया का कोई भी आविष्कार मनुष्य की भलाई के लिए होता है। फिर आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? फिर यहाँ पतन की बात कहाँ से आ गई!"

श्याम लाल ने अपने पठानी कुर्ते की सलवटों को जरा ठीक करने की कोशिश करते हुए उसे समझाने की कोशिश की, "देखो गुरुमुख, मनुष्य लगातार गिरता चला जा रहा है। हर अगला युद्ध हमें कुछ और अधिक जानवर बना जाता है। जो जिंदगी हम किसी को दे नहीं सकते उसे लेने का हक हमें किसने दिया!"

गुरुमुख ने तो अभी किशोरावस्था में कदम रखा ही था। दादा जी की बातों को कितना समझ सका और कितना नहीं, इसका ठीक-ठीक अंदाजा लगाना जरा मुश्किल था। मगर श्याम लाल युद्ध से जुड़ी बातें करते-करते जाने कब अपने अतीत की ओर चले जाते और फिर वहाँ की एक-एक चीजों को याद करने लगते। पाकिस्तान स्थित अपने कस्बे के बड़े से घर का एक-एक कोना उनकी आँखों के आगे घूम जाता। उनकी पत्नी को कटनी की आबोहवा शायद जमी नहीं या फिर वे कोई चिड़िया बनकर अपनी हवेली के आँगन, ओसारे और उसकी छत पर फुदकना चाहती हों और अब ऐसा करना इस जन्म में नामुमकिन होता देख शायद अपने प्राण त्यागने में ही भलाई समझी हो, जो भी कारण रहा हो, कटनी आने के साल-भर के भीतर वे ऐसी गिरीं कि फिर उठ न सकीं। उस समय श्याम लाल की बहू गौरी अपने भावावेग पर काबू न पा सकी थी और बोली, "बाबू जी, हमारी सेवा में ही शायद कोई कमी रह गई थी। ..."

वह आगे कुछ बोलती, उसके पहले ही श्याम लाल ने उसकी आँखों से बहते आँसुओं को पोंछते हुए कहा, "रो मत मेरी बच्ची। तुम तो सचमुच ही गौरी हो। इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। उसका तो यहाँ कभी जी लगा ही नहीं। समुद्र के किसी बड़े जहाज पर बेमन से मंडराने वाली वह कोई पक्षी थी। उसे तो अपने वतन जाना ही था। वह वहीं कोई गौरैया के रूप में अपने घर में इधर-उधर फुदक रही होगी। शादी के बाद जब पहली बार वह उस हवेली में आई थी, तबसे ही उसने उस घर को अपना मंदिर बना लिया था। बाकी सिंधी परिवारों की तरह हमारे यहाँ भी श्रीराम और श्रीकृष्ण की मूर्ति के साथ-साथ शिव-दुर्गा और गुरु नानक की मूर्ति को वह एक समान भाव से पूजा करती थी। और हाँ, साई भाजी पुलाव के साथ परोसा उसका फ्राई भिंडी दही क्या कमाल का संयोग हुआ करता था!"

गौरी ने देखा, उन हँसती बूढ़ी आँखों से आँसू बहने लगे थे। इस बार गौरी की बारी थी। अपने ससुर के आँसुओं को पोंछती हुई बोली, "आप भी न पापा जी, एकदम से बच्चे बन जाते हैं। बिल्कुल गुरुमुख की तरह।"

श्याम लाल भी मुस्कुरा दिए। उस बूढ़े चेहरे पर निर्मलता की एक अलौकिक आभा साफ नजर आ रही थी।

गौरी इठलाती हुई स्कूल पढ़ती कोई बच्ची बन गई। नखरे दिखाती हुई और अपनी आँखें मटकाती हुई बोली, "पापा जी, आपने मम्मी जी की तो खूब तारीफ कर दी। मगर मैं? क्या मुझे कुछ नहीं आता! क्या मैं सिंधी समाज के व्यंजन-परंपरा से बिल्कुल अनभिज्ञ हूँ? बोलिए, बोलिए?"

श्याम लाल ने अपने गुरु झूलेलाल को स्मरण किया और उनके प्रति मन ही मन कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा, "बेटी, तुम्हारी जैसी रूपमती और गुणी बहू तो नसीब वालों को ही मिलती है।" फिर पुराना कोई स्वाद स्मृति से मानो जिह्वा पर पुनः अवतरित हो गया

हो, उसे याद करते हुए और चटखारे लेते हुए अपनी बहू की प्रशंसा में कसीदे पढ़ने लगे, "ये जो गौरी है न, वह इमली डालकार बेसन की कढ़ी ऐसी बनाती है कि बस अपनी ऊँगलियाँ चाटते रह जाओ। और हाँ वह मामूली कढ़ी नहीं होती। उसमें कई तरह की सब्जियाँ डाली जाती हैं"। और फिर श्याम लाल उसे किसी उत्साही बच्चे की तरह गिनाने भी लगे, "बैंगन, कद्दू, सूरन, भिंडी, आलू और न जाने क्या-क्या!"

"बस कीजिए बाबू जी, ऊपर आसमान से अम्मा जी भी देख रही होंगी। क्या सोचेंगी, उनके जाते ही आपने पार्टी बदल ली। पत्नी की छोड़ बहू की तरफदारी करने लगे"

गौरी शर्माती हुई रसोई की ओर भाग गई। जाते-जाते बोली, "मैं आपके लिए चाय बनाकर लाती हूँ।"

....

एक दिन गुरुमुख ने अपने दादा से पूछा, "दादा जी, इतने सारे बम फटने से प्रदूषण भी तो होता होगा। वायुमंडल भी सांस लेने लायक नहीं बचता होगा।"

"हाँ बेटा, यह तो है ही। पहले ही नफरतों ने यह दुनिया रहने लायक नहीं छोड़ी है और दूसरे आयुधों के दिनोंदिन बढ़ते इस्तेमाल ने तो इस पृथ्वी को नरक ही बना छोड़ा है। युद्ध एक हलचल है। इसमें सबका परिवार नष्ट हो जाता है। कोई खुश नहीं रहता है। न जीतने वाला और न हारने वाला। तुम्हें याद है, जिन पायलटों ने हीरोशामा और नागाशाकी पर परमाणु बम गिराए थे, उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। और जो लोग अपने परिजनों को किसी युद्ध में खोए बैठे हैं कई बार उनकी याद में जिंदा लोगों की हालत भी मृतप्राय हो जाती है।"

गुरुमुख को तभी उसकी मम्मी ने बुला लिया। धुंधलका हो गया था और उन्हें शौच के लिए बाहर जाना था। घर का दरवाजा अंदर से बंद करने को कह वह पड़ोस की दूसरी स्त्रियों के साथ बाहर चली गई। इन सभी स्त्रियों के पति अपने-अपने व्यवसायों को लेकर संघर्षरत थे। दुकानें जमा रहे थे और परिवार को किसी तरह पटरी पर लाने की कोशिश कर रहे थे।

श्याम लाल जैसे बुजुर्ग घरों में बैठे रहते और अपनी हालत पर तरस खाते रहते। भारत-पाक विभाजन को कोसते हुए एक दिन श्याम लाल अपनी बहू से कहने लगे, "अच्छा होता बहू कि हम आजाद ही नहीं होते! कम से कम अपने इलाके में सुख चैन से रह तो रहे होते। इससे अच्छा तो यही था कि हम गुलाम ही रहते! इस आजादी ने हमें क्या दिया! हमसे हमारा घर-बार, खेत-खलिहान, जमीन-जायदाद, दुकानें सब छीन लीं। हम कम से कम पाकिस्तान में ठीक से रह तो रहे थे। दो जून की रोटी इज्जत के साथ खा तो रहे थे। इस तरह हमारी स्त्रियों को घर से बाहर मौके-बेमौके निकलना तो नहीं पड़ रहा था। हम आज यहाँ एक-एक पैसे के मोहताज बने हुए हैं। क्या मैं यही दिन देखने के लिए जिंदा हूँ! इस आजादी ने हमें क्या दिया! इससे तो लाख भली गुलामी ही होती है।"

गौरी क्या बोलती वह चुपचाप अपने कमरे में चली गई! वह अपने ससुर की हताशा को समझ रही थी।

जब कभी और जहाँ भी युद्ध की बात होती, श्याम लाल नाथानी इन बातों को दोहराते। उनके पुराने घाव हरे हो जाते। उन्हें पाकिस्तान से भारत आए अरसा हो गया था, मगर अभी भी उनका दिल सिंध प्रांत स्थित अपने कस्बे की उन्हीं गलियों में ही रमा रहता। खाड़ी युद्ध के दिनों में टीवी के सामने बैठे हुए वे चुपचाप युद्ध से जुड़े समाचारों को सुनते रहते। उनके भीतर अतीत और वर्तमान का अपना युद्ध जाने कब से जारी था।

....

गौरी नाथानी अपने ससुर का बड़ा आदर करती थी और हरदम उनकी छोटी-मोटी जरूरतों का ध्यान रखती थी।

आसपास के सभी लोग अभी भी टेंटनुमा घरों में थे। सार्वजनिक शौचालय की व्यवस्था थी मगर आए दिन उसमें जाम लगा रहता था। कोई आधा किलोमीटर की दूरी पर एक तालाब था जिसके आसपास की झाड़ियों में स्त्री-पुरुष निवृत्त हुआ करते थे। एक मूक समझौते की तरह स्त्रियों का क्षेत्र अलग और पुरुषों का क्षेत्र अलग था। मगर शहर के कुछ शोहदे अपनी हरकतों से बाज नहीं आते थे। वे इधर-उधर ताक-झाँक में लगे रहते थे। शहर से कुछ बाहर स्थित तालाब तक रास्ता झाड़-जंगलों से भरा हुआ था। महिलाएँ इसलिए समूह में जाया करती थीं। तड़के सुबह और गोधूली में। मगर हर समय कोई नियम कहाँ सधा रह पाता है! स्त्रियों से छेड़खानी की घटनाएँ कम होने का नाम ही

नहीं ले रही थीं। आए दिन कभी कोई तो कभी कोई इन कामों के लिए पकड़ा जाता, उसे डाँटा-पीटा जाता मगर हर रात मच्छरों की नई फौज की तरह उनकी संख्या बढ़ती ही चली जाती। उसमें नए मच्छर शामिल होते जाते। जितनी गंदगी साफ करो, नए सिरे से गंदगी का अंबार जमा हो जाता। आसपास के ये टेंटनुमा घरों में रहने वाले रिफ्यूजी लोग आए दिन अपमान का घूँट पीकर रह रहे थे। शहर के कुछ नामी-गिरामी घरों के बिगड़ैल बच्चों ने भी इधर की गलियाँ नापनी शुरू कर दी थीं। देखने-दिखाने के लिए प्रशासन की ओर से कुछ धड़-पकड़ होती, मगर वे नाकाफी थीं। उनका कोई सार्थक प्रभाव पड़ता दिख नहीं रहा था। आसपास के लोग भी इस टोली को एक तरह से बाहरी मानकर स्वयं को इनसे अलग-थलग मानकर चल रहे थे।

खुद्दार और कभी संपन्न रहे श्याम लाल को यह सब बड़ा नागवार गुजरता, मगर वक्त ने उनके पैर और हौसले दोनों तोड़ दिए थे। उस रात भी यही हुआ था। अमावस्या की रात थी। सुबह से ही गौरी का पेट खराब चल रहा था। रोकथाम की कुछ कोशिशों के बावजूद भी शौच के लिए, उसे कई बार जाना पड़ रहा था। पति तो स्टेशन के पास एक छोटे से किराने की दुकान को चलाने में जो सुबह जाता, तो फिर देर रात को ही लौटता। ससुर से अपनी प्यारी बहू की दशा देखी नहीं जा रही थी। मगर वे लाचार थे। ....विभाजन में इस तरफ आते वक्त किसी ने उन पर कुल्हाड़ी से प्रहार कर दिया था। उस समय तो किसी तरह उन्हें भारत की सीमा में प्रवेश करने की हड़बड़ी थी। जब उनका उद्देश्य सफल हो गया और परिवार वालों ने जिद की तब वे लँगड़ाते हुए किसी तरह डॉक्टर के पास गए। लंबा इलाज चला, मगर सेप्टिक के बढ़ते खतरे को देखते हुए उनका बाँया पैर घुटने तक काटना पड़ा। जवानी के दिनों में तो लाठी के सहारे कुछ काम-धाम करते रहे मगर अब बुढ़ापे का शरीर पहले जैसा नहीं रह गया था। सो वे ज्यादातर घर के अंदर रहते। गुरुमुख को बुलाकर एक जानने वाले की दुकान पर बहू के लिए दवाई लाने भिजवाया मानो उस दवाई से मानो कोई खास फायदा न हुआ। उस रात गौरी का पति दुकान के लिए सामान लाने जबलपुर चला गया था। रात साढ़े सात बजे वह तालाब की ओर जाकर आठ बजे तक घर लौट चुकी थी। सारे काम निपटाकर और ससुर के पास पानी का जग रखकर गौरी, गुरुमुख के साथ देर तक बातें करती रहीं। आदतन अपनी माँ से दो-तीन कहानियाँ सुनकर वह भी सो गया। गौरी की आँख भी लग गई। मगर पेट के गुड़गुड़ ने उसे जल्द ही जगा दिया और 'प्रेशर' बर्दाश्त से बाहर हुआ देख वह धीरे से बाहर की ओर निकल गई।

....

अपराधी अपराध करके निकल चुका था। रात अपनी लहू रोती रही। सुबह तक कोहराम मच चुका था। मुँह अँधेरे तालाब की ओर फारिग होने निकली स्त्रियों ने वह भयानक मंजर देखा। निष्प्राण देह जगह-जगह से चोटिल थी और पानी पर तैर रही थी। सूर्योदय से पहले ही गौरी अपने दरवाजे पर आ चुकी थी। मगर आज कहीं से वह नहीं थी, बल्कि उसके आकार में एक स्पंदन-रहित शरीर था। नाथानी परिवार के लिए वह सूर्योदय नहीं सूर्यास्त था। जड़-मूर्ति नाथानी परिवार की तीन पुरुष-पीढ़ियाँ उसके पास बैठी हुई स्त्रियों की तरह बिलख-बिलख रो रही थीं। लोग तरह-तरह की बातें बना रहे थे। पुलिस अपनी औपचारिकताओं में जुटी थी। किसी की श्याम लाल से कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हो रही थी। वे सिर्फ बुदबुदा रहे थे मानो स्वयं को दिलासा दे रहे हों...... मेरी बहू पवित्र है। गौरी निष्कलंक है। उसने जल-समाधि ली है।

– फ्लैट संख्या- 102, गणेश हेरिटेज, स्वर्ण जयंती नगर, आर. बी. हॉस्पीटल के समीप,
(पत्रकार कॉलोनी) गौरव पथ, बिलासपुर, पिन-495001

❑❑❑

लौट आऊँगा मैं

सुशांत सुप्रिय

कलम में
रोशनाई-सा
पृथ्वी पर
अन्न के दाने-सा
कोख में
जीवन के बीज-सा
लौट आऊँगा मैं

आकाश में
इंद्रधनुष-सा
धरती पर
मीठे पानी के
कुएँ-सा
ध्वंस के बाद नव-निर्माण-सा
लौट आऊँगा मैं

लौट आऊँगा मैं
आँखों में नींद-सा
जीभ में स्वाद-सा
थनों में दूध-सा
ठूँठ हो चुके पेड़ में
नई कोंपल-सा
बच्चे के मसूड़े में
नए दाँत-सा
लौट आऊँगा मैं

जैसे महाशंख से चलकर
शून्य तक लौट आती है
उलटी गिनती
जैसे जीवन लौट आता है
आसन्न-मृत्यु-बोध के
मरीज में
वैसे लौट आऊँगा मैं

तुम एक बार
पुकार कर तो देखो

– ए-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद - 201014 (उ. प्र.)

❑❑❑

स्वस्थ पर्यावरण

फूलचंद मानव

देखो धुएँ जैसी गंदी गाली उसे मत दो
साँस-साँस रेंगकर आए हैं संस्कार बुखार की
तरह मत मारो
कि समय तो पीट जाता है पिटते-पिटते भी
बाकी बची शताब्दी के लिए
गोबर और पत्तों का जलना
तिल तिल निगलना,
शोर! हाल-बेहाल
कान जैसे विश्वास को दाँव पर लगा रहे हों
शब्द गोया सुनाई न देकर संकेत समझा रहे
हों।

आदमी तो रखवाली करता आया है
वह भी धूप, जल, हवा, हल्दी सभी का जाया है
यों गाली देकर उसे गोली का शिकार मत करो
चौगिर्दे में फला-फूला है आज तक कितना सौंदर्य
विश्वास की आँख से उसे देखो, पहचानो
उसी में जहर भरा माहौल तो कदाचित न भरो।
यहीं से सच्चाई, सुंदरता, सभ्य तकनीक
उदार हो पाएगी
अपनेपन से दुलारोगे तो
मर्मांतक चीख भी प्यार हो जाएगी।
वही स्वस्थ पर्यावरण कहलाएगी।।

– 239, दशमेश एंक्लेव, ढ़कोली, जीरकपुर-160104 (समीप चंडीगढ़)

❑❑❑

एक अहसास

डॉ. अनुराधा सेंगर

अभी-अभी कोई गुज़रा है यहाँ से शायद,
जिसकी आहट से खिल उठी है मेरी तन्हाई।
हो गई है चमन पे उसके नूर की बारिश,
ज़र्रा-ज़र्रा खिला कली-कली है मुस्काई।
वो मेरे पास बहुत पास मेरी रूह में है,
अब नहीं डर है ज़माना करेगा रुसवाई।
रगों में दौड़ता फिरता है खून की मानिंद,
मुझको पतझड़ में लगे रुत बसंत की आई।
प्यासी धरती पे जैसे झूम के घटा बरसे,
नीम अंधियारी रात में ज्यूँ चाँदनी छाई।
देखना तुझको जगती आँखों से नहीं मुमकिन,
तेरी छाया मेरे वजूद में उतर आई।

– 223, मैट्रो व्यू अपार्टमैंट, सै.–13, पॉकेट-बी, द्वारका, नई दिल्ली

❑❑❑

दुखांत कहानियों का दर्शनीय अलबम

डॉ. सरोज कुमार त्रिपाठी

पराग परिमल के कहानी संग्रह 'स्वाहा- स्वाहा' में कुल ग्यारह कहानियाँ मौजूद हैं। नारी जीवन में व्याप्त पीड़ा, संत्रास, वेदना, विवशता आदि का चित्रण संग्रह का मुख्य स्वर है। इसके अतिरिक्त समाज-जीवन में बजबजाते भ्रष्टाचार को प्रत्यक्ष कराने वाली भी दो-तीन कहानियाँ हैं। एक कहानी सांप्रदायिक उन्माद का बीभत्स चेहरा दिखाती है। संग्रह में एक ऐतिहासिक कहानी भी है अधिकांश कहानियाँ दुखांत हैं या उनकी निर्वेद में परिणति है। कहानीकार का यह तीसरा प्रकाशित संग्रह है, जिसमें कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से प्रौढ़ता विद्यमान है।

ऐसा लगता है कि लेखक नारी की स्थिति-परिस्थिति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, तभी ऐसा सजीव चित्रण संभव हुआ है। संग्रह में तीन कहानियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें लड़कियाँ या औरत बलात्कार की शिकार हुई हैं। बलात्कार को 'यौन शोषण' कहना उसकी गंभीरता को कम करना है।

'माधुरी लता' एक किशोरी बबली सिंह की स्कूल जीवन की कहानी है। माँ-बाप, बच्चे-बच्चियों को बड़े अरमान से आवासीय विद्‍यलायों में भेजते हैं, लेकिन वहाँ तरह-तरह के नकाब में भेड़िए बैठे होते हैं। स्कूलों में कुछ भेड़िए तो ऐसे होते ही हैं, जिनकी काली करतूतें आए दिन उजागर होती रहती हैं। उजागर होने वाले वृतांतो की तुलना में दबा दिए जाने वाले अथवा दबे रहने वाले वृतांत सौ गुना होंगे। इस कहानी में भी एक संवेदनशील अध्यापक शर्मा जी से कहते हैं- "आप बात अपने तक ही सीमित रखेंगे। इससे स्कूल की बदनामी होती है।" शर्मा जी भी हेड सर को आश्वस्त करते हैं कि " इसमें लड़की की भी बदनामी है सर, इसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ" (पृ. 98) यहाँ बलात्कारी कोई शिक्षक या सहपाठी नहीं, बल्कि रसोइया है, जिसे सभी विद्‍यार्थी राजेश भइया कहते हैं। पीड़िता होने के बाद भी मासूम किशोरी उसे राजेश भइया ही कहती है। उस रसोइए की महत्ता के विषय में हेड सर का कथन देखते चलें- "आप तो जानते हैं, चार-पाँच हजार में दस मास्टर मिल जाते हैं, पर रसोइया एक नहीं मिलता।" (पृ. 98) कहानी में बार-बार बबली के होंठ हिलते हैं, लेकिन बोल नहीं फूटते। अंत में बेचारे शर्मा जी का भी यही हस्र होता है। जिस समाज में बदनामी इतना हौआ हो वहाँ सचमुच का हौआ खुलकर खेलता रहता है।

'स्वाहा-स्वाहा' होस्टल में रहने वाली युवती सुम्मी की व्यथा-कथा है। दरअसल अपने परिवार के ग्रुप फोटो के साथ बब्बू की फोटो देखकर उसकी ज्वाला भड़क जाती है। उसके बुरी तरह विचलित होने का कारण पंद्रह वर्ष पहले उसकी बाल्यावस्था की दारुण घटना है, जिसमें सुम्मी को उसका ही ममेरा भाई बब्बू अपनी हवश का शिकार बनाता है। अंततः ग्रुप फोटो में से आँखों की किरकिरी बने नालायक बब्बू का फोटो काटकर वह उसे लाइटर से जला देती है और उसकी

स्वाहा-स्वाहा (कहानी संग्रह)/ पराग परिमल/ प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, सी-46, सुदर्शनपुरा इंडिस्ट्रयल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर- 302006/ प्रथम संस्करण : 2017/ पृ. 132/ मूल्य ₹150/-

राख को सिंक में बहा देती है। लेखक का वाक्य है "उसके साथ के वे मजबूरी में बने रिश्ते, सबके सब गटर की भेंट चढ़ गए। उसे लगा, उसने एक ग़लीज रिश्ते की बजबजाती लाश को आज ठिकाने लगा दिया है" (पृ./31)

'बेटा' का नायक खलनायक बिट्टू है। शैशव काल से जो बिट्टू अपनी मिस वंदना की स्नेह-छाया में पला-बढ़ा था, जो स्वयं भी उसके लिए मातृ-भाव रखता था, वही बिट्टू अठारह वर्ष का होते-होते अपनी मिस को हवश का शिकार बनाता है। मनोविज्ञान की शब्दावली में यह इडिपस कांप्लेक्स की कहानी है।

इन तीनों कहानियों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि सारी संवेदनशीलता के बावजूद लेखक की सोच दकियानूसी है। तभी तो वह बबली के मामले में कहता है कि "गर्हित भाव से पूतिर इस संबंध से कैसे छुटकारा पाए बबली?" सुम्मी के संदर्भ में भी लेखक 'मजबूरी में बने रिश्ते' की बात करता है। बलात्कृत स्त्री के मामले में 'संबंध' और 'रिश्ते' की बात सोचना या करना वैसा ही है, किसी लड़की की माँग में जबर्दस्ती सिंदूर डाल कर उससे संबंध मान लेना। किसी निरीह को धक्का देकर कोई गिरा दे और उसके बाद उस पर 'पति' विशेषण चस्पा कर दे, यह कुछ वैसा ही है। कहानीकार सामान्यतया कल्पना का भी सहारा लेते ही हैं लेकिन अपनी कल्पना को इस लेखक ने एक बार भी ऐसा मौका नहीं दिया कि बलात्कार की घटना का प्रतिरोध या विरोध हो अथवा विद्रोह हो। सचमुच तीनों ही पीड़िताएँ क्रीपर अर्थात् लताएँ हैं जिनमें दृढ़ता का नितांत अभाव है। लेखक के मन-मस्तिष्क में आज भी वही नारी बसी है, जिसकी आँखों में पानी ही पानी है। कोई निर्भया तो कहीं दिखती ही नहीं।

'फिर भी ज़िंदगी चलती है' एक ऐसी स्त्री की दुखांतिका है जो विधवा माँ है। पति की मृत्यु के बाद जिसका एक प्रेमी भी रहा है। 'यह अपहरण उद्योग है' में ईमानदार अफसर के स्कूली बच्चे का अपहरण हो जाता है। फिरौती न दे पाने के कारण बच्चे की हत्या हो जाती है। अपनी समाज-व्यवस्था और राज-व्यवस्था में ईमानदारों को ऐसे ही कड़वे इनाम मिलते हैं। 'बर्खास्त' कहानी में ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के इनाम में कार्यालय प्रमुख परितोष बाबू को अपने अंतिम दिनों में नौकरी गँवानी पड़ती है। झूठे-घिनौने आरोप लगाकर ईमानदारी का प्रतिशोध लिया जाता है। और भ्रष्टाचार की राह को निष्कंलक बनाया जाता है। यहाँ सत्य और धर्म तो मुँह की खाते हैं; विजय अधर्म की होती है।

'यहाँ मुर्दे का व्यापार होता है भाई' अस्पतालों में व्याप्त भ्रष्टाचार और संवेदनशून्यता की कहानी है। धांधली देखकर नैरेटर के मन में उबाल तो आता है लेकिन अगले ही पल उसे लगता है कि "मेरा बच्चा अकेला इनके रहमोकरम पर है।.... ये बच्चे का गला घोंट दें ..... तो कुछ पता भी नहीं चलेगा।" नैरेटर को "मन की बहुत गहराई में अपनी नपुंसकता का अहसास" हो रहा है। दरअसल यह मध्यवर्गीय समाज की त्रासदी है।

सांप्रदायिक उन्माद का बीभत्स चेहरा दिखाने वाली कहानी 'ठंड' का आरंभ भी संग्रह की अधिकांश कहानियों की तरह फ्लैश बैक शैली में होता है- "अब आप ही बताएँ शंभु बाबू की जान किसने ली? ठंड ने, भीड़ के उन्माद ने, अनजाने में उनके द्वारा की गई हरकत ने या फिर कट्टर मजहब-परस्ती ने? शंभु बाबू भीड़ की हिंसा (जिसके लिए इन दिनों मॉब लिंचिंग शब्द धड़ल्ले से चल रहा है) के शिकार पाकिस्तान में होते हैं, क्योंकि उनका बेटा पाकिस्तान में नौकरी करता है। शंभु बाबू को लगता है कि भारत और पाकिस्तान के लोग "एक जैसे इंसानी ज़ज्बे से सराबोर" हैं। यह बिलकुल सच है कि भारत और पाकिस्तान का इतिहास और भूगोल तो एक ही रहा है, बाद में राजनीति ने यहाँ के निवासियों को परस्पर शत्रु बना दिया। मेहमानबाजी भी एक जैसी, धर्म-परायणता भी एक जैसी और धर्मांधता भी वैसी ही। अंत में शंभु बाबू जैसे उन्माद के शिकार बनाए जाते हैं, वैसे उदाहरण हम अपने देश में भी देखते-सुनते-पढ़ते ही रहते हैं।

परिवेश और मनोभावों के चित्रण की दृष्टि से लेखक को पूरी सफलता मिली है। चित्रण में सूक्ष्म पर्यवेक्षण दिखाई देता है। वातावरण और परिस्थितियों के सजीव चित्रण के द्वारा लेखक वस्तुस्थिति को साकार कर देता है। विचारगत उहापोह और भावगत् दृश्यांकन के लिए लेखक के पास समर्थ भाषा है। पात्रों की संख्या

कम है और समग्र प्रभाव सघन है। बुद्ध काल पर केंद्रित कहानी 'मान' में यदि तत्सम-प्रधान संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है तो पाकिस्तान के फलक पर लिखी गई कहानी 'ठंड' में खालिस उर्दू की छटा देखी जा सकती है। प्राकृतिक दृश्यों का भाषागत अंकन परिस्थितियों के अनुरूप हुआ है। भाषा-प्रयोग में बिहार की स्थानीयता, कहीं सायास और कहीं अनायास झलकती है। कुल मिलाकर, अलग-अलग आस्वाद वाली विविधवर्णी कहानियों से गुजरते हुए संतोष का अहसास होता है।

– बी-144, केंद्रीय विहार, सेक्टर-56, गुरुग्राम, पिन - 122011

❑❑❑

बालसाहित्य के प्रतिमान और साक्षात्कारों की भूमिका

दिविक रमेश

डॉ. शकुंतला कालरा हिंदी बालसाहित्य के क्षेत्र में न केवल रचनात्मक लेखन की दृष्टि से सक्रिय हैं बल्कि उससे भी अधिक हिंदी बालसाहित्य की पहचान, उसके मूल्यांकन आदि के दृष्टिकोण से भी, मौलिक और संपादन कृतियों के रूप में, निरंतर महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। बालसाहित्य का स्वरूप और रचना-संसार, हिंदी बालसाहित्य: विचार और चिंतन, हिंदी बालसाहित्य: विधा-विवेचन, बालसाहित्य के युग निर्माता: जयप्रकाश भारती आदि अनेक पुस्तकें हैं जो किसी न किसी रूप में हिंदी के फिलहाल लगभग उजाड़ पड़े आलोचना के क्षेत्र में पौद्ध लगाने की तरह तो हैं ही बल्कि उससे कुछ ज्यादा हैं।

शकुंतला जी ने बालसाहित्य की साक्षात्कार-विधा के क्षेत्र में भी अब तक दो महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की हैं। पहली पुस्तक 'हिंदी बालसाहित्य विमर्श' शीर्षक से यतींद्र साहित्य सदन, भीलवाड़ा (राज.) ने 2010 में प्रकाशित की थी। इसमें विष्णु प्रभाकर, जयप्रकाश भारती, रतनलाल शर्मा, उषा यादव, कृष्णकुमार अष्ठाना, कृष्ण शलभ, गोविंद शर्मा, दर्शनसिंह आशट, दिविक रमेश, देवेंद्र कुमार, नागेश पांडेय 'संजय', प्रकाश मनु, भगवतीप्रसाद द्विवेदी, भैरूलाल गर्ग, मधुसूदन साहा, रमानाथ त्रिपाठी, रमेश तैलंग, राजकिशोर सिंह, राष्ट्रबंधु, रोहिताश्व अस्थाना, विकास दवे, विनोदचंद्र पांडेय 'विनोद', शमशेर अहमद खान, शेरजंग गर्ग, शंकर सुल्तानपुरी, श्यामलाकांत वर्मा, श्यामसिंह 'शशि', सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, सुनीता, हूंदराज बलवाणी, क्षमा शर्मा और श्रीप्रसाद के साक्षात्कार उपलब्ध हैं। दूसरी पुस्तक 2017 में प्रकाशित 'हिंदी बालसाहित्य: जिज्ञासाएँ और समाधान' है। इसमें जिन साहित्यकारों के साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं, वे हैं- अखिलेश श्रीवास्तव चमन, अश्वघोष, घमंडीलाल अग्रवाल, देवेंद्र मेवाड़ी, पद्मा चौगांवकर, प्रताप सहगल, पंकजा चतुर्वेदी, बालशौरि रेड्डी, बालस्वरूप राही, मधुपंत, मनोहरा वर्मा, योगेंद्र कुमार लल्ला, रत्नप्रकाश शील, रमाशंकर, रेनू चौहान, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी और विनायक। अपनी पहली पुस्तक की भूमिका में शकुंतला कालरा ने लिखा था- "इन साक्षात्कारों में मेरा प्रमुख लक्ष्य कृतिकार के सृजन-क्षणों से साक्षात्कार करना रहा। साथ ही उनके रचना रहस्यों से रू-ब-रू होना भी, जो रचनाकार के अवचेतन की अतल गहराइयों में विद्यमान रहते हैं।" दूसरी पुस्तक की भूमिका अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है। यहाँ साक्षात्कार विधा के महत्व को दर्ज किया गया है, साथ ही, इस विधा के स्वरूप को अन्य समीप की विधाओं (संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, नाटक आदि) के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से भी विवेचित किया गया है। शकुंतला कालरा के अनुसार, "इन साक्षात्कारों में आप पाएँगे कि साक्षात्कार मात्र विशिष्ट बिंदुओं को लेकर किया गया वार्तालाप ही नहीं हैं, वरन् रचनाकार के विशेष परिवेश के साथ उसके व्यक्तित्व के बहुत से पहलुओं की झांकी भी है। ....यानी ये रचनाकार के जीवन-दर्शन का दर्पण है।"

हिंदी बालसाहित्य : जिज्ञासाएँ और समाधान/ (साक्षात्कार संग्रह) डॉ. शकुंतला कालरा/ शरारे प्रकाशन बी-बी/6बी, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058/ प्रकाशन वर्ष: 2017/ पृष्ठ: 427/ मूल्य : ₹750/-

अपनी भूमिका में शकुंतला कालरा जी ने एक और रहस्य खोला है जिसका संबंध इन साक्षात्कारों की रचना प्रक्रिया से जुड़ा है। उन्हीं के शब्दों में - "प्राप्त-सामग्री को विधिवत संकलित कर इसको 'साक्षात्कार' विधा का रूप दिया।"

साक्षाती अर्थात् भेटकर्त्ता के रूप में शंकुतला जी को जो तैयारी करनी पड़ी उसका भी उचित उल्लेख भूमिका में मिलता है। उनके अनुसार उन्होंने साक्षात्कार लेने से पूर्व साक्षात्कारदाता लेखकों की समस्त रचनाओं का अध्ययन किया, उन पर पर्याप्त चिंतन-मनन किया, खंगाला, गहरे में उतरीं और लेखकों को परत-दर-परत खोला। नि:संदेह इस कथन की प्रमाणिकता इन साक्षात्कारों को पढ़ते-पढ़ते मिलती चलती है। हर रचनाकार का एक निजपन होता है, उनके जीवन और साहित्य के कुछ विशिष्ट पहलू हुआ करते हैं जिन्हें उसके साहित्य और उसके जीवन-प्रसंगों को पढ़ते-जानते ही पकड़ा जा सकता है। मसलन बालसाहित्यकार देवेंद्र मेवाड़ी की जो रचना- दृष्टि है और उनका साहित्य है वह विनायक की रचना-दृष्टि और उनके साहित्य से कुछ विशिष्ट भिन्नता रख सकता है। शकुंतला कालरा ने नि:संदेह इस दिशा में परिश्रम किया है। इसी कारण वे हर रचनाकार के निजपन को उभारने में प्राय: सफल रही हैं। पाठक पाएँगे कि भेंटकर्ता के प्रश्न सब रचनाकारों के लिए समान नहीं हैं। प्रश्न उसने उपर्युक्त तैयारी के बाद बनाए हैं। अलग-अलग रचनाकार के लिए अलग-अलग। हाँ, समसामयिक परिवेश से जुड़ी कुछ जिज्ञासाएँ ऐसी जरूर हो सकती हैं जो समान्यत: सभी रचनाकारों से समाधान की अपेक्षा रखा करती हैं। जिन बातों और विचारों को और स्पष्ट होना चाहिए था उन्हें निकालने की सफल कोशिश की गई है।

इन साक्षात्कारों से निश्चित रूप से हिंदी के बालसाहित्य के नए सौंदर्यशास्त्र के निर्माण की दिशा में मदद ली जा सकती है। हिंदी बालसाहित्य की विविधता, उसके दृष्टिगत बहुवचन को समझने, मदद करने में सक्षम है ही। बालसाहित्य के रूप संबंधी कुछ सामान्य निष्कर्षों की राह भी प्रशस्त करते हैं। कुछ मत विवादस्पद भी लग सकते हैं और कुछ मतों से असहमति भी हो सकती है।

पुस्तक में 17 रचनाकारों के साक्षात्कार हैं। साथ ही, अंत में हर रचनाकार की, अपनी दृष्टि में किसी खास सोच को फलश्रुति के अंतर्गत समेटा गया है।

पाठकों को कुछ बानगी भी मिलनी चाहिए। सजग पाठक जानते हैं कि देवेंद्र मेवाड़ी को बालसाहित्य में विज्ञान लेखन के रचनाकार के रूप में विशिष्ट पहचान मिली है। शकुंतला कालरा एक प्रश्न- "विज्ञान के सत्य और कल्पना का मिश्रण किस अनुपात में होना चाहिए? के उत्तर में मेवाड़ी ने एक महत्वपूर्ण बात कही- "असल में बाल विज्ञान कथा लिखने के लिए लेखक के पास संवेदनशील हृदय और कल्पनाशील दिमाग के साथ-साथ विज्ञान का सामान्य ज्ञान भी होना चाहिए।" अगर विज्ञान की जानकारी नहीं होगी तो कथा केवल कपोल कल्पना ही होगी, उसमें और किसी परीकथा या तिलस्मी कथा में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। दूसरी ओर, अगर लेखक को साहित्य का, कहानी का ज्ञान नहीं होगा और उसमें लेखकीय संवेदना नहीं होगी तो केवल वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर लिखी उसकी कथा में मात्र वैज्ञानिक तथ्यों का संकलन हो जाएगा।" इसके बाद शकुंतला जी का प्रश्न और देवेंद्र मेवाड़ी जी का उत्तर दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। प्रश्न है- "एक अच्छी बाल विज्ञान कथा की विशेषताएँ क्या हैं?" उत्तर हैं- पहली विशेषता तो यह है कि उसे 'कहानी' होना चाहिए। एक ऐसी कहानी जो पाठक की संवेदना जगाए। उसमें कहानी के मुख्य तत्व जरूर होने चाहिए ...। एक प्रश्न सीधा-सीधा पूछा जा सकता था कि "वैज्ञानिक दृष्टि (तर्क सम्मत, विश्वसनीयता के दायरे में) से लिखे साहित्य, जिसके पात्र भले ही भूत हों या परी, को क्या नाम दिया जा सकता था?" खैर पुष्पक विमान, अग्निबाण आदि से निहित पौराणिक आख्यानों को देवेंद्र मेवाड़ी 'साइंस फिक्शन' मानने को तैयार नहीं हैं। देवेंद्र मेवाड़ी के परी-विरोध को अश्वघोष (वास्तविक नाम : डॉ. ओम प्रकाश शर्मा। उपनाम खुर्जा के कवि श्यामलाल वशिष्ठ 'सव्यसाची' ने दिया) दूसरे रूप में स्वीकृत करते हैं- "दरअसल मैं बालक को अंधविश्वास से दूर रखते हुए ऐसी परीकथाओं की रचना पर बल देना चाहता हूँ जिनमें कल्पना और यथार्थ का योग हो। उनकी परीकथाओं को वैज्ञानिक चमत्कारों से जोड़ा

भाषा ISSN 0523-1418

जाना चाहिए। हाँ, 'परीकथाओं की मृत्यु' की घोषणा का मैं पक्षधर नहीं हूँ।" अपनी पहली बाल रचना गज़ल के रूप में देने वाले लक्ष्मीशंकर वाजपेयी भी आधुनिक संदर्भ से जुड़ी परीकथाओं को स्वीकार्य मानते हैं। पौराणिक कहानियों के संदर्भ में भी उनका स्पष्ट मत है कि "वे विषय जो अंधविश्वास फैलाते हैं, उनसे परहेज़ किया जाना चाहिए लेकिन जो हमारी संस्कृति की विरासत हैं उनसे कटकर रहना ही अपनी जड़ों से कटना है और फिर हम कहीं के नहीं रहेंगे।" अखिलेश श्रीवास्तव चमन भी अपने ढंग से 'तथाकथित आधुनिकता की दौड़ में' अपने मूल से कटते जाने, अपनी गौरवपूर्ण सभ्यता और संस्कृति से दूर होते जाने को उचित नहीं मानते। साथ ही उनका यह भी मानना है कि "हम बालसाहित्य को सिर्फ राजा-रानी, परी-अप्सरा और आदर्श, उपदेश की कहानियों तक ही सीमित नहीं रख सकते। हमें विज्ञान और तद्जनित कारकों को कहानी की विषयवस्तु बनाना ही होगा" चमन सूचनापरक साहित्य को भी बालसहित्य से अलग नहीं मानते। भले ही यह मत विवादास्पद ही क्यों न हो। बालकवि बालस्वरूप राही आज लिखे जा रहे बालसाहित्य से अलग ढंग से असहमति जताते हैं और बहस को एक नया आयाम देते प्रतीत होते हैं- मातृप्रेम, पितृभक्ति और राष्ट्रप्रेम न जाने कहाँ विलीन हो गए हैं। अब तो यंत्र प्रेम जीवन का सर्वस्व हो गया है। बच्चों को कोई जुगनू कहीं दिखाई नहीं देता। उनकी आँखें तो सिनेमा, कंप्यूटर और मोबाइल से चौंधियाई रहती हैं। ऐसे में आज की बाल कविता सनातन सत्यों के पीछे-पीछे भागकर वर्तमान तथ्यों की अनदेखी कैसे करे? यंत्रों की दुनिया में मंत्र कहीं खो गए हैं। ऐसे में बाल कविता को अपनी पहचान फिर से खोजनी होगी और अपनी दिशा बदलनी होगी। बाल कविता अंतत: बालमनोविज्ञान से जुड़ी है और आज का बालमनोविज्ञान विज्ञान से जुड़ा हुआ है। मधु पंत का स्पष्ट मानना है कि "जिस भी कहानी में तर्क व विश्लेषण की क्षमता होगी वह प्रासंगिक और वैज्ञानिक भी होगी।" साफ है कि मधु पंत वैज्ञानिक कहानी के दायरे को बहुत व्यापक मानती हैं जो उचित भी है। उनका यह भी मानना है "जिस कहानी में नयापन हो, कल्पनाशीलता हो, हास्य और रोमांच दे पाने की क्षमता हो, वह बच्चे सदैव पसंद करते हैं।" रमाशंकर ने भी विज्ञान-कथा को एक विशिष्ट विधा मानते हुए उस पर कुछ विचारोत्तेजक मत दिए हैं।

एक अन्य चर्चित बालसाहित्यकार विनायक हैं जो अपने साहित्य को किशारों और नव किशोरों के लिए मानते हैं, शिशुओं के लिए नहीं। उनकी मान्यता है- "मैं अपना साहित्य संवेदनाओं को जागृत करने के लिए रचता हूँ, उपदेश देने या कोरी शिक्षा के लिए नहीं।" वे अपनी रचनाओं की बड़ी सफलता जिस कारण में ढूँढते हैं, वह बहुतों के लिए दिलचस्प हो सकता है। उन्होंने दोहराकर और जोर देकर बताया है कि उनकी एक कहानी 'सुनहरे बालों वाली चुहिया' को पढ़कर विख्यात कवयित्री डॉ. मधुरिमा सिंह हफ्ते भर तक रोती रहीं। .... 'नदिया और जंगल' का शेर उपन्यास के अंत में आकर जब अपनी मार दी गई शेरनी को रोकर पुकारता है कि कहाँ हो! देखो, तुम्हारे बच्चे भूखे हैं तो बुजुर्ग की आँखें भीग जाती हैं। रुला देने के इस गुण को विनायक इस हद तक महत्व देते हैं कि वे शकुंतला कालरा को चुनौती देते हुए पूछते हैं- "शकुंतला जी, दिल पर हाथ रखकर सच बताइए कि आपने कितने ऐसे बाल उपन्यास पढ़े हैं कि आँखों में आँसू आ जाए।" शकुंतला जी के पास कम से कम साक्षात्कार में तो जवाब नहीं मिलता। एक प्रश्न के उत्तर में अपनी प्रिय विधा फंतासी के संदर्भो में, फंतासी और कल्पना में अंतर मानते हुए उन्होंने बताया है- "कल्पना में हम घटाकर या बढ़ाकर जो कुछ कहते हैं हो सकता है यथार्थ में नहीं। जैसे मैं कल्पना करूँ कि मेरे नाम एक करोड़ की लाटरी निकल आई। वैज्ञानिक रूप से ऐसा हो सकता है, लेकिन यथार्थ में वैसा न हो परंतु वैज्ञानिक रूप से वैसा हो जाने में कोई, अड़चन नहीं। जैसे मैं कल्पना करूँ कि मैं प्रधानमंत्री बन गया। मैं हूँ नहीं, लेकिन वैज्ञानिक ढंग से ऐसा होने में कोई अड़चन नहीं। लेकिन फंतासी में हम जो सोचते हैं वैज्ञानिक ढंग से नहीं हो सकता। जैसे फ्रैंज काफ्का अपनी कहानी 'कायांतरण' में लिखते हैं कि मैं सोकर उठा तो पाया मैं एक काक्रोच में बदल गया हूँ। विज्ञान की नजर में ऐसा असंभव है। और यह फंतासी जन्म लेती है।" रेणु चौहान ने अपने लेखन का रहस्य खोलते हुए बताया है- 'बालसाहित्य के पात्रों में व्यंग्य छेड़-छाड़, गप्पबाजी मुझे बेहद पसंद है जैसे पतंग बनकर आसमान में उड़ना, कैंची बनकर इधर-उधर

मस्ती करते रहना, चूहे के रूप में सारे घर की नाक में दम कर देना आदि।.... वास्तविकता तो यह है कि "अक्सर बड़ों के बीच मुझे अपने अंदर के बच्चे को चुप करा कर बैठाना पड़ता है। शैतानी न करने के लिए विशेष हिदायत देनी पड़ती है।"

इसी पुस्तक में योगेंद्र कुमार लल्ला का साक्षात्कार बालसाहित्य से जुड़े अनेक व्यावहारिक मुद्दों पर बहस के लिए प्रेरित करने में सक्षम है। बाल नाटक और उसके परिदृश्य को समझने के लिए प्रताप सहगल का साक्षात्कार उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

कुल मिलाकर 'हिंदी बालसाहित्य: जिज्ञासाएँ और समाधान' यह कृति बालसाहित्य से जुड़े अनेक रचनाकारों की दुनिया तो हमारे सामने लाती ही है, साथ ही बालसाहित्य की समझ को भी नि:संदेह विकसित करने के लिए प्रेरित करने में सक्षम है। इस पुस्तक से अपेक्षा के संबंध में शकुंतला जी की इस बात से सहमत हुआ जा सकता है- "बालसाहित्य से जुड़े ऐसे विचार-बिंदु मिलेंगे जो बाल साहित्यानुरागियों एवं बालसाहित्य के अध्येयताओं के साथ-साथ शोधार्थियों और अनुसंधित्सुओं के लिए अत्यंत लाभप्रद होंगे एवं भावी इतिहास-लेखकों के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।"

– एल-1202, ग्रेंड अजनारा हेरिटेज, सेक्टर-74, नोएडा-201301

❑❑❑

आत्म दीपो भव

डॉ. साधना गुप्ता

स्वतंत्रता, समता और बंधुता की भावना रचनात्मक साहित्य की गर्भ चेतना होती हैं जो मुक्ति की बात करते हुए अंधेरे कोने की सच्चाइयों को भी उजागर कर देती हैं। इसी की शाब्दिक अभिव्यक्ति है कैलाश नीहारिका का कविता संग्रह "धारा को रोकते नहीं पहाड़"। संग्रह में विषय चयन विशाल फलक पर किया गया है। कवयित्री का मन जिजीविषा से परिपूर्ण है, निरंतर गतिशील रहने को प्रस्तुत, जिसे संग्रह के शीर्षक से वाणी दी गई है, "धारा को रोकते नहीं पहाड़" जो प्रकृति का स्वाभाविक अंग है। जीवन है तो संघर्ष भी है और संघर्ष है तो समाधान भी है। जीवन रूपी धारा को बाँध रूपी मानवीय समीकरण अनेक रूपों में रोकने का प्रयास करते हैं। परिवेशगत इस सच्चाई को कवयित्री ने 'चौकन्ने शिकारी' कविता में बेबाक शब्दों में अभिव्यक्ति दी है -

"क्या है कि मुझे अक्सर / सुनना फिर सोचना है / एक सरोकार मेरे कन्धों पर सवार सदा -/ "बचके रहना ! बचके रहना!" जुबाने शरबती / निगाहें मखमली / इरादे नश्तरी। (पृ.20)

परिणाम स्वरूप नारी अस्मिता पर लगे प्रश्न चिह्न को हल करने का प्रयास 'नई भूमिका' शीर्ष में तथा विश्वामित्र की साधना की पूर्णता नारी अस्मिता की सुरक्षा के रूप में दिखलाई है।

सामयिक परिवेशगत वास्तविकता को पैनी निगाहों से देखने वाली कवयित्री की दृष्टि में अनेक समस्याएँ हैं जिनमें लोकतंत्र का बिगड़ता स्वरूप, सांप्रदायिकता, किसानों की आत्महत्या, महिला सशक्तिकरण के नाम पर दोहरें पाटों में पिसती महिला, स्त्री-पुरुष संबंध, वृंदावन में विधवाओं के विविध रूप, महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु जड़ों से दूर छिटकी संतान के माता-पिता के ममतालु विरही हृदय का अंकन एवं संवादहीनता से उपजी सामाजिक समस्याएँ मुख्य हैं।

लोकतंत्र के नाम पर होने वाली मनमानी व्यक्ति को रोबोट बना मनमाना नाच नचाना चाहती है, परंतु जन-जन को यह स्वीकार्य नहीं, वह मानवीय संवेदना सूत्र में बंधकर जीना चाहता है जिसकी अभिव्यक्ति "पुर्जा' शीर्ष में की गई है

"व्यक्ति हूँ मैं, जिसमें रूह भी है / जिसे संप्रदाय, जाति, लिंग, भाषा, स्थान से परे भी / बहुत कुछ झकझौड़ता है / और वे किस काल खंड के पुरखे थे / जो आदमी को आदमी की दवा मानते थे / अचूक, अतुल्य।'(पृ.35)

कवयित्री का मन समस्याओं की भयावहता से आहत है, पर निराश नहीं। "होगी जय, होगी जय पुरुषोत्तम नवीन" की भावना से परिपूर्ण मन "रक्त सने नख' कविता में समाधान खोजता है -

रचना ही होगा यहाँ / अग्निधर्मी ऐसा उत्सव कि / वे गंतव्य भ्रष्ट खूनी परिंदे / फड़फड़ाते पंख लिए नीड़हीन - से / निर्विकल्प जा गिरे/विशाल सागरों में / कि जी सके धरा। (पृ.46)

धारा को रोकते नहीं पहाड़/ डॉ. कैलाश नीहारिका/ प्रकाशक : बोधि प्रकाशनः सी-46, सुदर्शनपुरा इंडीस्ट्रयल एरिया, एक्सटेंशन नाला रोड़, 22 गोदाम, जयपुर-302003/ प्रकाशन वर्षः जुलाई 2018,/ पृष्ठ : 124/ मूल्य : ₹120/-

मिट्टी को देखकर झुलसने और बिछुड़कर बिलखने वाला अन्नदाता आज स्वयं भूख से आत्महत्या करने को विवश है। कहीं यह कोई साजिश तो नहीं, अत: गहरी साजिश' शीर्ष में कवयित्री समाज का आह्वान करती है उसे सहारा देने के लिए –

चाँद और सूरज की बाँहें/ सहेजती मिलकर / उसकी मेहनतकशी की ढेरियाँ / वह अन्नपूर्णा धरती का लाड़ला / उसे दुलारो तो। (पृ.63)

पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में आज न केवल परिवार टूट रहे हैं वरन् लिव एंड रिलेशनशिप एवं समलैंगिक संबंधों ने अद्‌र्धनारीश्वर की भारतीय संस्कृति को लहूलुहान कर दिया है। परिणाम, व्यक्ति अकेलेपन की पीड़ा को झेलने को विवश है। कवयित्री इस विषम परिस्थिति से भी पुरुष को मुक्त करवाने को आतुर है। स्वयं नारी होने के कारण वह नारी मन की शक्ति को पहचानती है। 'विजयातीत' कविता में उसका यह सावित्री रूप मुखर हुआ है –

देखो, पहचानो मुझे/ खींच लाऊँगी तुम्हें/ अवरुद्ध शिराओं की/ हताशा से पार/ रोग शैय्या से/ उर्जित दूब की सेज पर।/ और चल दोगे विमुख होकर/ तो जाओगे कहाँ/ अपरिहार्य विजयी तुम/ विजयातीत मैं। (पृ.119)

यह नारी मन नारी सशक्तिकरण के भुलावे में किसी नवीन भंवर में न फंस जाए, इसकी चिंता भी 'पीछे मुड़कर भी देखना' में अभिव्यक्त हुई है –

दोहराऊँगी आह्वान कि/ बेगार मत ढोना/ किसी गंतव्यहीन यात्रा की/ बहुत से पिंजरे हटाने हैं तुम्हें/ जिनसे तुम मुक्त हो/.......... कि फैसलों के पीछे हों कई पुख्ता कदम/ कि शोर की जगह संगीत हो। (पृ.66)

सभ्य समाज की विडंबनाओं के चलते विवाह के नाम पर पिता से बड़ी उम्र वाले पति से ब्याही सधवा बनाम विधवा का जीवन जीने को विवश नारी की स्थिति का चित्रण 'वृंदावन में' शीर्ष में कर अनमेल विवाह की समस्या जो आज भी समाज को खोखला कर रही है, की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के नाम पर बच्चों का पलायन और बिछोह में पलकों की सूनी आँखों का दर्द वर्तमान समाज का जाना पहचाना सच है। कवयित्री इस वेदना को वाणी देते हुए 'पुष्ट होते पंख में' आग्रह करती है –

तुम्हारे पुष्ट होते पंख / भोर के आगमन पर / उड़ान भरने को आकुल / पुकारता है नभ उन्हें ..../ उड़ने से पहले लेकिन / कल्पना भर बाट जोहती पनीली आँखों में / देखना इक अकेली चाह तुम्हारे संग की / उसे सहलाते जाना। (पृ.103)

बहते पानी के स्रोतवत मानवीय संवेदना के सूत्र थामे कवयित्री वर्तमान समस्याओं के समाधान खोजती, प्रस्तुत करती चलती है जिसकी नैसर्गिक अभिव्यक्ति करते हुए "हंस अकेला" में कथन है –

अक्सर बातों में जवाब ढूँढ़ते रहे/ बस यहीं मात खा गए/जवाब जिंदगी में थे। (पृ.52)

अत: रागात्मक संबंधों के पुलधर्मी रस्से बाँध, संगी-साथी संग सुख-दु:ख सांझा करना चाहती है –

संगी-साथी ऐसे / जिनसे बाँटू दाना पानी / और सहज ही सांझा कर लूँ / पलकों में अटके जलकण भी। (पृ.21)

वे जानती हैं आज हमारी सभ्यता हमसे झिटक कर दूर खड़ी है पर हमें रुकना नहीं है –

अत: वे इंटरनेट की कृत्रिम दुनिया से कोसो दूर मानवीय संवेदना के सूत्र पुन: धरा में रोप नव निर्माण के लिए कृत संकल्प हैं –

ढेरों सूचनाओं से रहने दो परे मुझे/ खोजने दो बीज ठोस सत्यों के / बीज, जिन्हें धरती में रोपूँ, सींचूँ दुलारूँ / और फिर उगती हुई /उस पौध के सानिंध्य में / जान लूँ मिट्टी, हवा, जल, धूप को / आकाश की परिधि में / दीढ भर क्षितिज तक। (पृ.42)

वस्तुत: वैज्ञानिक प्रगति और भूमंडलीकरण के नाम पर हम आज जहाँ आ खड़े हुए हैं वहाँ दुनिया को एक कैमरे में कैद करने के बाद भी नितांत अकेले हो गए हैं। "सर रखकर गम हल्का कर सके," ऐसा कंधा खो चुका है। विज्ञान और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मोह जाल में प्रकृति से दूर संवेदनहीन रिश्तों को थामे गंतव्यहीन पथ पर दौड़ रहे हैं। परिणाम घुटन एवं संत्रास क्योंकि भारतीय संस्कृति की नींव पर जिन पाश्चात्य संस्कारों का महल खड़ा किया जा रहा है वह अति भयानक वंचना का दुर्ग है, तिलस्म है, हमें इसे तोड़ना होगा। कवयित्री इसके लिए प्रयत्नशील है। वह जानती

है इस हेतु न तो कहीं जाने की आवश्यकता है, न ही किसी के सहारे की। सूत्र हमारे पास है जो विरासत से हमें मिले हैं। प्रेम, करुणा, सौंदर्य आदि सारे मूल्य आज मानव द्वारा तिरस्कृत अवश्य हुए हैं, परंतु देवता अभी मरा नहीं है, उन छोटे-छोटे क्षणों में जब जीवन की धड़कन दर्द बन जाती है, अचानक स्पर्श करके हट जाता है। बस हमें उसे ही थामना है। पुन: अपनी संस्कृति की ओर लौटना है। तभी तो कवयित्री का पुन: आह्वान है - "सहलाते जाना, दुलारो तो, स्नेह पगे" ये शब्द स्वयं ध्वनित होते प्रतीत होते हैं। इस कार्य का श्रीगणेश वे स्वयं दुर्वा लगा, सौहार्द का उपवन सजाकर करना चाहती है। यहाँ तक कि आत्मिक शक्ति को जाग्रत करने के लिए दीपक जलाकर 'त्राटक' करना चाहती है जिससे वे दीपावली के दीपक व भ्रम रचते बाजारू चोंचलों की चकाचौंध में भेद कर सके, दिपदिपाते प्रेम के कण खोज सके, शिखर से उमड़ता जल स्रोतवत् निर्बाध बढ़ते जीवन में चराचर को सहयात्रा का खुला आमंत्रण दे सके, रेत सम विषमताओं को भी नेह की नमी से सिक्त कर सके।

आसक्तियों के इस जंगल में जीवन के अबूझ सुर में सतत माँ की उपस्थिति का अहसास करने वाली कवयित्री यह जानते हुए भी कि पहाड़ कभी समतल नहीं होते अनवरत अग्रसर रहना चाहती हैं उन राहों में जिन पर चलकर वे मानवता रूपी कृष्ण के विराट रूप को प्राप्त कर सके जिस तक विज्ञान रूपी संजय की दृष्टि कभी नहीं पहुँच सकती -

हाँ संजय द्रष्टा / तुम्हारी पहुँच में नहीं था / कृष्ण का विराट रूप! (पृ.124)

यहाँ पौराणिक आख्यान के माध्यम से चंद शब्दों में विज्ञान से अध्यात्म की श्रेष्ठता दिखलाने के कारण कैलाश जी निश्चय ही बधाई के पात्र हैं।

अंतत: संपूर्ण कृति का सिंहावलोकन - आस्वादन सहृदय पाठक को कविता की सामर्थ्य के प्रति आस्वस्त करता है। सहज-सरल खड़ी बोली - हिंदी में परिवेशगत भयावह समस्याओं को स्वाभाविकता से वाणी दी गई है। उपमा अलंकार के माध्यम से विचारों को संवेदीकृत करने में कवयित्री सिद्धहस्त है। भावानुरूप आरोह - अवरोह लयात्मकता के साधक बनकर आए हैं।

सार रूप में संकलन ज्वलंत समस्याओं को उठाते हुए सहृदय पाठक के मानस में यह बिंबनाद सहज ही कर जाता है कि समस्याएँ प्रकृति प्रदत्त नहीं, वरन् स्वयं समाज द्वारा निर्मित हैं - "धारा को रोकने वाले बाँध तुल्य।" यदि हम पाश्चात्य संस्कृति के तिलस्म को तोड़ पुन: भारतीय संस्कृति की वसुधैव कुटुंबकम् की भावना को अपनाएँ, मानवीय मूल्यों की ओर लौटें तो प्रकृति के पंच तत्व अगवानी को प्रस्तुत हैं -क्योंकि धारा को रोकते नहीं पहाड़ अत: हमें 'आत्मदीप' बनना होगा। सामर्थ्य जाग्रत करनी होगी क्योंकि "उलझनों में ही राहे निकलती हैं।"

– द्वारा:- के. एल. गुप्ता 'एडवोकेट' राज.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड
मंगलपुरा टेक, झालावाड (राज.)-326001

❑❑❑

सूरां दीवां रोज रा, रोज बळै दिन-रात

वैद्यनाथ झा

इक्कीसवीं सदी। ज्ञान-विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, आर्थिक उदारीकरण व भूमंडलीकृत समाज, शिक्षा के नए-नए आयाम, नई-नई पुस्तकों की भीड़। उस भीड़ में मध्यकालीन राजस्थान के रणबांकुरों की अप्रतिम शौर्यगाथाओं का वर्णन करती एक किताब। एक आश्चर्यजनक उपस्थिति।

राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का प्रकाशन भी ऐसा ही प्रभाव छोड़ता है। प्रश्न उठता है कि वैश्विक संस्कृति, भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के परिदृश्य में मध्यकालीन वीरगाथाओं की क्या साहित्यिक प्रासंगिकता है? मध्यकाल के जीवन-मूल्य, ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिवेश का संदर्भ आज के पाठक का कितना ध्यान खींच पाएँगे?

पुस्तक पर विस्तृत चर्चा से पहले इस प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर देना आवश्यक लगता है।

जब कोई भी राष्ट्र या समाज अपनी धरोहरों, जीवन-मूल्यों, नायकों की तपस्या, त्याग, संघर्ष, कर्तव्य-निष्ठा को इतिहास से साहित्य में संजोकर भावी पीढ़ियों तक पहुँचाता है तो अगली पीढ़ियाँ गौरवान्वित, प्रेरित व निर्देशित होती हैं। वे धरोहर, जीवन-मूल्य, गौरव-बोध उस समाज या राष्ट्र को दीर्घायु बनाती हैं।

राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर ने 135 गीतों, कवित्त, दूहे, बेलि, सबद आदि के संकलन की एक पुस्तक प्रकाशित की- "मेड़तियों के गौरव गीत'। मेड़ता राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र का एक भूभाग है। यह क्षेत्र भक्ति और अतुल पराक्रमी योद्धाओं के कारण प्रसिद्ध है। मीरा बाई की भक्ति और जयमल राठौड़ की वीरता तो बेमिसाल रही है। वैसे तो मेड़ता के राठौड़-वंशीय राजपूत वीरों की शूरवीरता की गाथा, मेवाड़ राजस्थान तक ही नहीं, देश से बाहर तक फैली थी पर चित्तौड़ के विश्वप्रसिद्ध युद्ध (सन् 1576) में जयमल का परामानवीय पराक्रम देख मुगल सम्राट अकबर इतना प्रभावित हुआ कि चित्तौड़ का युद्ध जीत जाने के बावजूद उसने जयमल और पत्ता रावत की हाथी पर सवार मूर्तियाँ आगरे के किले के मुख्य द्वार पर लगवाई।

जयमल बड़तौ जीवणूं, डावो पत्तो पास
हिंदू चढ़िया हथियाँ, अड़ियौ जस आकास।

इस युद्ध में जब जयमल के दोनों पैरों में गोली लग गई तो वह कल्ला राठौड़ के कंधे पर चढ़कर तलवार चलाने लगा। अकबर को चार हाथ तलवार चलाते दिखाई दिए- दो जयमाल के और दो कल्ले के यह दुर्लभ वीरता थी।

प्रश्न यह उठता है कि वे कौन से कारक/परिस्थितियाँ हैं जो व्यक्ति को प्राणों को तुच्छ समझने की हद तक वीरता प्रदर्शित करने को प्रेरित करती हैं।

दरअसल भारतीय समाज का जीवन के प्रति विशिष्ट दर्शन है। वह अपने शरीर को महज एक वस्त्र

मेड़तियों के गौरव गीत/ (गीत संग्रह)/ संपादन - डॉ. जयपाल सिंह राठौड़/ प्रकाशक- राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर/ पृष्ठ संख्या: 411/ मूल्य : ₹600/-, प्रकाशन वर्ष: 2018

मानता है। पहनो, प्रयोग करते रहो और अंत में पुराना पड़ने पर त्याग दो।

वांसासि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि ह्णाति नरोपराणि

कबीर ने भी तो यही कहा–

झीनी-झीनी बीनि चदरिया।

..."दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनि चदरिया।

शरीर के प्रति ऐसी निस्पृहता, सामने ऊँचा लक्ष्य, कर्म करने की चुनौती ही व्यक्ति में वीरता के गुण भरती है। वह शरीर का मोह छोड़कर लड़ता है, अंग-अंग से लड़ता है। यही बात तो गुरुवाणी में गुरु गोबिंद सिंह भी कहते हैं–

पुर्जा-पुर्जा कटि मरै, तबहू न छाड़ै खेत

मध्यकालीन राजस्थान में यही दर्शन और भावना लोक जीवन का अंग थी। समाज में वीरता के प्रति देवोचित आदर था–

दीवां तो रातु बळै, बुझ जाए परभात।

सूरां दीवां देस रा, रोज बळै दिन-रात।।

इस पुस्तक की आत्मा को समझने के लिए मेड़ता की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व साहित्यिक पृष्ठभूमि को समझना जरूरी है।

मेड़ता और मारवाड़ भौगोलिक रूप से विकट क्षेत्र है। परिस्थितियों की विकरालता, भौगोलिक विकटता व्यक्ति के संघर्ष के आयाम को बढ़ा देती है। इसलिए तो मेड़तिया सरदारों की वीरता दुनिया भर में मशहूर हुई। इतिहासकार कर्नल टॉड ने मेड़तिया सरदारों को 'बहादुरों में भी बहादुर' कहा–

"The first was a rathore of the mertiya house the bravest of the brave clan of Marwar"

इनकी वीरता में धर्मभीरुता, सनातन जीवन-मूल्यों के प्रति निष्ठा आदि का भी योगदान है। मेड़तियाँ भगवान कृष्ण के 'चार-भुजा' रूप के उपासक हैं। उनके जीवन-दर्शन और सोच पर भागवत धर्म का प्रभाव रहा। युद्ध भूमि में प्राणों का मोह नहीं– "हतो वा प्राप्स्यसि मोक्षम्"। दुर्बल, स्त्री, गाय, ब्राह्मण, मंदिर, जन्मभूमि के प्रति अनन्य प्रेम, शरणागत की रक्षा भागवत संस्कार के कारण था। इस पुस्तक 'मेड़तियों का गौरव-गीत' का पहला गीत ही –चारभुजा प्रभु को अर्पित है–

जबर पराक्रम पार पावे कवण ओर को

तोर को बढ़म फाबे जगत तात।

घणो सुख दयण मेटण संघट घोर को

नंदा कर याद गढ़ बोर को नाथ।

....

सरब दुख हरण सहबात चो करण सुख

मन रह च्यारभुज चरण माहे।

इतिहास की दृष्टि से देखें तो तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों ने मेड़तियों को हमेशा युद्ध के 'मोड़' में रखा। मेड़तिए सरदार स्वाभिमानी, वीर व वचन-पालक थें। वे हमेशा मेवाड़ के शासकों के साथ जुड़े रहें। उनके एक आह्वान पर जान न्यौछावर करने के लिए तैयार थे। मेवाड़ हमेशा दिल्ली के मुगल बादशाहों के निशाने पर रहा। बाबर से लेकर औरंगजेब तक सभी मेवाड़ के पीछे लगे थे। मुगलों से युद्ध में हजारों मेड़तियाँ वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी। रणभूमि में सर्वोच्च स्तर का पराक्रम दिखाया। मेड़तियों ने सबसे अधिक शौर्य हल्दीघाटी के युद्ध में मुगल सम्राट अकबर के विरुद्ध प्रदर्शित किया।

साहित्य

इस पुस्तक में संकलित गीत आदि राजस्थानी (डिंगल) भाषा में है। डिंगल राजस्थान के वीर-रस प्रधान साहित्य की प्रमुख भाषा है। राजस्थानी (डिंगल) भाषा, साहित्य को प्रौढ़ता मध्यकाल (सन् 1400-1800) में ही मिली क्योंकि इसी कालखंड में अधिकांश युद्ध हुए। विश्वकवि गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने राजस्थानी भाषा, साहित्य का गहन अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला–

"राजस्थानी कवियों ने अपने रक्त से जिस साहित्य का निर्माण किया है उसके जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता और उसका कारण है – राजस्थानी कवियों ने कठिन सत्य के बीच रहकर युद्ध के नगाड़ों के बीच अपनी कविताएँ बनाई थीं। प्रकृति का तांडव-रूप उनके सामने था। ...... राजस्थानी भाषा के साहित्य में जो उद्वेग है, जो भाव है, वह केवल राजस्थान के लिए ही नहीं, सारे भारतवर्ष के लिए गौरव की वस्तु थी...।"

इस पुस्तक में वर्णित गीतादि अधिकतर वर्णनात्मक और भाव-प्रधान हैं। सौंदर्य-वर्णन, सैन्य-वर्णन, युद्ध-वर्णन में उपमा, उत्पेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों,

विशेष रूप से वयणसगाई (हिंदी के शब्दानुप्रास का भेद) का जम कर प्रयोग किया गया है। कविताओं के वर्ण्य-विषय दूदा, वीमदेव, जयमल, ईसरदास, सुरताण, माधवदास, रतनसिंह, चांदा आदि लगभग 37 पराक्रमी मेड़तिए शूरमाओं की यशोगाथा है। उस समय के चारण-भाट आदि, जो स्वयं कलम और तलवार दोनों के धनी होते थे, राजा-महाराजाओं को गीत आदि सुना-सुना कर उनमें जोश भरते थे। इनकी कविताओं में आश्रय-दाता राजाओं के शौर्य, चरित्र, व्यवहार, युद्ध की भीषणता आदि का साक्षात दृश्य अनुभव स्पष्ट रूप से गहराई से प्रकट होते थे।

गिरिन हलाय दीने, दिग्गज हुलाय दीनें
अचला दिध पौरुष दिखायो है
वीर जयमल रन ठेलिके दुरग काज
ऐमो खग खेल-खेल सुरग सिधायो है।(पृ. 94)

इस कवित्त से ओजपूर्ण भाषा, वीरता तथा युद्ध का शब्दचित्र स्पष्ट होता है।

इस ग्रंथ के संपादक डॉ. जयपाल सिंह राठौड़ इन गीतों को प्रशस्तिपरक रचना नहीं मानते हैं और न ही अतिशयोक्ति या अतिरेकी रचना मानते हैं। उन्होंने भूमिका में स्वयं कहा है-

"मेड़तियों के गौरव गीत' प्रशस्तिपरक नहीं है न अन्यथा अतिश्योक्ति से चित्रित। विकट परिस्थितियाँ ही प्रशस्ति कराती हैं.... मध्यकालीन भारत की परिस्थितियाँ विकराल भी कितनी थी, संपूर्ण प्रयासों के बावजूद भी जय उस ओर न आ सका। परंतु मरण का वरण कर उन्होंने इस विरुद की पवित्रता को बचा लिया।"

इस पुस्तक को पढ़ने से शब्दों के ओज, प्रवाह, चमत्कार की हद, की वीरता आदि से अच्छा परिचय हो जाता है। मूल पाठ डिंगल में होने के बावजूद भी उन गीतादि की हिंदी में व्याख्या दिए जाने से हिंदी पाठकों को भी समझने में सरलता होती है। इक्कीसवीं सदी में भी पंद्रहवी सदी की सैर आह्लादित करती है और गौरव बोध होता है।

– क्यू-36, फेज-II, (निकट प्रकाशपुरी आश्रम), न्यू पालम विहार, गुरुग्राम-122017(हरियाणा)

❑❑❑

एक बेचैनी-भरा दस्तावेज : "साहस और डर के बीच"

डॉ. अनुपम माथुर

साहित्य की अन्य गद्य विधाओं में साक्षात्कार, आत्मकथा, यात्रा-वृत्तांत आदि की भाँति डायरी लेखन यद्यपि उतना लोकप्रिय नहीं है तो भी साहित्य-जगत में एक विधा-विशेष के रूप में इसे पर्याप्त स्वीकृति मिली है तथा इसके संरचनागत नए-नए प्रयोग भी हो रहे हैं। सामान्य अर्थ में डायरी किसी व्यक्ति के अपने अनुभवों का दैनिक विवरण है, दूसरे अर्थ में उसकी निजी संपत्ति है। किंतु एक साहित्यकार की दैनंदिनी के रूप में डायरी कलात्मकता के साथ उसकी अनुभूति, अनुभवों, परिवेशजन्य दृष्टि और मानसिक आलोड़न-विलोड़न को प्रकाशित रूप में जब पाठकों के मन-मानस तक पहुँचाती है, तो वह एक प्रतिष्ठित विधा के रूप में साहित्य के अकूत भंडार का हिस्सा हो जाती है। डायरी एक अंतरंग प्रक्रिया है जो लेखक के वैयक्तिक, परिवेशगत एवं युगीन संस्कारों को, उसके अंतर्मन में छुपे चेतन-अचेतन भावों को, एकांत की गहाराइयों में उठते भावाकुल संवेगों एवं विचारों को, स्वयं से तथा परिजनों से जुड़ी अंतः- बाह्य घटनाओं और उनके अच्छे-बुरे परिणामों को तिथियों की शृंखला से प्रमाणित करती है। इस रूप में डायरी एक ऐतिहासिक दस्तावेज भी है जहाँ किसी विशेष तिथि को घटित कोई घटना, उसके भीतर छुपे तथ्य और एक संवेदनशील एवं सुचिंतक कलाकार की गहन प्रतिक्रिया खुलकर व्यक्त होते हैं।

'साहस और डर के बीच' वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. नरेंद्र मोहन की तीसरी डायरी रचना है जो उनके प्रयोग धर्मा लेखन का नया एवं ग्राह्य उदाहरण है। पुस्तक के प्रारंभ में 'अपनी बात' के अंतर्गत लेखक डायरी को रोजनामचा के दायरे से अलग रखते हुए उसे एक 'ओपन विधा' मानता है जो "फाइल वर्क नहीं है, न ही तथ्यों घटनाओं का पुलिंदा है।" उनके अनुसार डायरी रचना आत्मस्वीकृतिमूलक जरूर है लेकिन "आत्म तक सीमित नहीं है, आत्म का विस्तार करने वाली, उसे गहराई प्रदान करने वाली कला है।" तमाम तरह की वैचारिक-भावनात्मक बेचैनियाँ, ज्ञान, संवेदना, साहित्य और कला-माध्यमों की धमकें, हलचलें और सभा-संगोष्ठियाँ यहाँ महज़ दर्ज ही नहीं होतीं, दस्तावेज़ बन सकती हैं, बनी भी हैं, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक-सभ्यतामूलक परिवर्तनों के रूप में सुरक्षित रह सकती हैं, रही भी हैं।"

आलोच्य डायरी की अवधि-2010-2017 तक की है जिसे लेखक ने अलग-अलग 15 शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया है। जैसा कि डायरी के शीर्षक और डायरी के प्रथम पृष्ठ की पंचलाइन- "हमारे समय, समाज और राज्य का एक बेचैनी-भरा दस्तावेज" से ही स्पष्ट है, यह डायरी भी लेखक की निर्भीक प्रवृत्ति और उनकी अन्य रचनाओं के अनुरूप सच की टेक पर, रिस्क उठाते हुए रची संजोई गई है, क्योंकि 'लेखक समाज का प्रहरी ही नहीं, प्रहारक भी है।'

साहस और डर के बीच (डायरी)/ लेखक-नरेंद्र मोहन/ प्रकाशक- संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़ - 245101/ संस्करण: प्रथम 2018/ पृष्ठ संख्या:-200/ मूल्य: ₹450

डायरी का प्रारंभ 6 जून 2010 से किया गया है जहाँ दक्षिण कोरिया की एक फिल्म 'पोयट्री' के माध्यम से लेखक बलात्कार की यातना झेलती नायिका की आंतरिक पीड़ा से उसी की भाँति तड़प उठता है- "यह घटना मेरे साथ घटित नहीं हुई है, तो भी मुझे एक अंदरूनी वारदात-सी महसूस हुई है।" पीड़ा और यातनाओं के ये दृश्य सामाजिक एवं राजनैतिक दोनों स्तरों पर भरपूर व्याप्त हैं, चाहे शर्मिला इरोम का प्रसंग हो या विनायक सेन के मानवाधिकार प्रयासों के खिलाफ शासन की कार्रवाई, चित्रकार हुसैन की देश-निष्कासन जनित पीड़ा या कुलबुर्गी जैसे लेखक की दिन-दहाड़े हत्या। नरेंद्र मोहन की लेखकीय 'आदत' या उत्तरदायित्व की गहन जड़ीभूत प्रवृत्ति उसे दिन-प्रतिदिन दुर्घटित अमानवीय-असामाजिक स्थितियों से निर्लिप्त नहीं होने देतीं। उसका मन-मानस पूर्व से भी अधिक अदम्य चैतन्य और वैचारिक ओज से भरकर अपनी पुरजोर प्रतिक्रिया और शेष को व्यक्त करता है।

कश्मीर के तनावपूर्ण हालात लगभग रोज की खबर का हिस्सा हैं। एक आम भारतीय के लिए यह तनाव चिंता का एक दैनिक और अनिवार्य तथ्य बन चुका है। ऐसे में आंतकवादियों द्वारा सर्वानंद कौल प्रेमी जैसे समादृत कवि, विद्वान की हत्या लेखक को बुरी तरह विचलित करती है- "भय की श्रृंखला कहीं खत्म होने में नहीं आ रही। इस श्रृंखला के सामने मानव-श्रृंखलाएँ बनती हैं और शिथिल होकर टूट जाती हैं। कश्मीर को लेकर दिनोंदिन एक डरावना अनुभव हाड़-माँस में धँसता जाता है।" इस गंभीर प्रसंग में आलोच्य डायरी की एक अनन्य विशेषता अनायास उभरती है- डायरी के भीतर एक निडर कश्मीरी लेखक निदा नवाज़ की डायरी-प्रविष्टि का उद्धरण सहित प्रामाणिक प्रसंग जिससे उक्त घटना के भीतरी आतंक और मृत्यु भय को स्वयं पाठक भी अपने भीतर जीने लगता है।

लेखक का सरोकार सिर्फ सामाजिक परिवेश की त्रासद एवं विषम स्थितियों पर ही केंद्रित नहीं, वह निरंकुश राजनीतिज्ञों के अनियोजित अविवेकी क्रियाकलापों और उनके दुष्परिणामों को भुगतती आम जनता की मर्मातक पीडा को भी भीतर तक महसूसता है। कठिनाई यह कि इनमें लोकतंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया की भूमिका शोचनीय ही नहीं, हास्यास्पद भी है। मीडिया की दोगली बातें, खंडन-मंडन आदि से क्षुब्ध लेखक मीडिया की राजनीति पर जमकर तंज कसता है- "चैनलों के जाल-जंजाल से खबरों का कचूमर निकल रहा है। जिनका काम है सही खबरें लेना-देना, वे ही लाखों करोड़ों के वारे-न्यारे करने में लगे हों तो आगे कौन हवाल?"

आदिवासी या नक्सलवादी समस्या को नरेंद्र मोहन राजनैतिक विमर्श के रूप में देखने के आग्रही हैं। यह ऐसी समस्या है जिसे 1967 से लेकर आज तक कोई भी सरकार हल नहीं कर पाई है नक्सलवादी सोच और संघर्ष को नए सिरे से प्लेस करने और समझने की जरूरत है जिसके लिए लोकगीतों और लोकगाथाओं में फैली हुई इनकी जड़ों तक जाना होगा। लोक-साहित्य पर इस डायरी में सर्वाधिक लंबा लगभग पाँच पृष्ठों का लेखन है जो इस विमर्श के प्रति लेखक की गंभीरता को दर्शाता है। लोक-साहित्य मौखिक परंपरा का साहित्य है जिसकी धुरी है- प्रेम, पीड़ा और करुणा।

आज की अर्थ-केंद्रित उपभोक्तावादी संस्कृति के समक्ष दृढ़ता से खड़ा यह साहित्य विद्रोह के स्वरों से भी संबलित है, लेखक ने छोटे-छोटे उद्धरणों से इसे सिद्ध किया है। लोक साहित्य ही एकमात्र उपाय है- आतंक के धूर्त राजनीति के षड्यंत्रों से लड़ने का। "आज मैं भी सोचता हूँ देवेंद्र सत्यार्थी की तरह कि जहाँ-जहाँ आतंक का माहौल हो और सरकारी, गैर सरकारी दमन की कार्यवाहियाँ चल रही हों, वहाँ मैं उनके खिलाफ लोकगीतों को रोप आऊँ।" और इसीलिए कश्मीर के, आतंक भरे माहौल में जहाँ थियेटरों पर पुलिस और सी आर पी एफ का कब्जा हो, वहाँ वर्ल्ड फिल्म फेस्टीवल का आयोजन एक चुनौती और जोखिम सहेजने जैसा है किंतु निश्चय ही ऐसे बोल्ड कदम और कलाकारों के हौसले मजहबी आतंकियों और सरकारी दमन-कृत्यों से लोहा जरूर लेते हैं।

डायरी में अनेक स्थानों पर नरेंद्र मोहन द्वारा नाट्य-लेखन एवं मंचन की बारीक जानकारी, रंगमंचीय अनुभव और वक्तव्य-व्याख्यान दर्ज हैं जो उन नाटकों की रचना प्रक्रिया के अंतर्गत लेखक के अंतर्भुक्त विभाजन जनित यथार्थ पीड़ा-अनुभवों, पात्रों को स्वयं भीतर तक जीने के गहरे अहसासों से समन्वित है।

भाषा ISSN 0523-1418

'मिस्टर जिन्ना' 'मंटो जिंदा है' 'मलिक अंबर' आदि नाटकों की प्रस्तुतियों और योजनाओं के साथ उनके दृश्यों के संयोजन, अभिनय आदि के शोधन में वह सक्रिय रूप से सहभागी है। हर नाटक के सफल मंचन के साथ मानों वह उस नाटक को पुन: जी लेता है। साथ-ही साथ वे अन्य नाटककारों विशेषकर भीष्म साहनी, अल्वेयर कामू के नाटकों के मंचन आदि के बारे में भी समान रुचि के साथ लिखते हैं और नई पीढ़ी के उभरते नाटककारों के नाटकों पर भी। नरेंद्र मोहन का यह समभावी उदारवादी नजरिया उन्हें अपने समकालीन अनेक लेखकों से अलग उच्चतर श्रेणी में खड़ा करता है।

विचार कविता के प्रवर्तक नरेंद्र मोहन ने जब अनुभव और विचार के विशिष्ट समीकरण पर बल दिया था तो उनको विरोध का सामना करना पड़ा था, इस अनुभव को भी लेखक ने डायरी में कविता के विषय में चिंतन करते हुए स्थान दिया है। नई उभरती हुई परिस्थितियों में कवि-कर्म की प्रक्रिया जटिल होती जा रही है, जीवन मूल्य बदलते जा रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में भाषा को - शब्द को नए रूप में परिकल्पित करने की आवश्यकता पर जोर देता डायरी लेखक इंगित करता है एक नई शुरुआत की ओर जहाँ कविता तथा अन्य कलाएँ जैसे नृत्य, संगीत, चित्र और नाट्य-कला एक दूसरे में अंत:-प्रवेश कर रही हैं, कविता के इन नए प्रयोगों और उनसे जुड़े सृजनात्मक क्षणों को भी लेखक ने यत्र-तत्र आत्मीयता और अंतरंगता के साथ डायरी में व्याख्यायित किया है।

इस डायरी में लेखक ने केवल अपनी रचनाओं और रचनाधर्मिता का ही विवरण नहीं दिया है, अन्य लेखकों, विशेषत: साहित्य के नए स्वरों के भी नामोल्लेख एवं रचना-उल्लेख सहित जगह-जगह चर्चा और प्रशंसा की है- नई स्थानीय ध्वनियों और प्रतीकों के साथ।

स्त्री-विमर्श और दलित विमर्श की चलताऊ व्याख्याओं से साहित्य के भरे होने पर भी लेखक ने सवाल खड़े किए हैं। भले ही ये राजनीति के लिए चुनावी मुद्दे हों, एक साहित्यकार के लिए ये सामाजिक विसंगतियों-विडंबनाओं का ज्वलंत यथार्थ है। ये यथार्थ साहित्य मे कैसा रूपाकार ग्रहण करे, इसके दृष्टांत रूप में वे तेलुगु कवयित्री वोल्गा की कविताओं को रखते हैं- "स्त्री-विमर्श की एक सुलगती लकीर उनके कथा-साहित्य की केंद्रीय प्रवृत्ति है।" ----- "दांपत्य कविता की एक पंक्ति है- 'हमारी राते हमें चाहिए'। जिसमें उसने रात के मेटाफर को नए अर्थों में पलट दिया है, रूपांतरित कर दिया है। ध्वस्त करना उसका उद्देश्य नहीं है, उसका इरादा है कि सूरत बदलनी चाहिए।'

डायरी में अपने समकालीनों के प्रति आत्मीयता से भरपूर अनेक रोचक, हास-परिहास युक्त प्रसंग हैं। डॉ. सादिक से मनमुटाव से लेकर उनसे पुनर्मिलन की मीठी-सी झलक- "उनके आने से लगा हवा का एक ताजा झोंका करीब से गुजर गया हो।" वहीं अपने साथियों और समकालीनों से सदा-सर्वदा के बिछोह की न खत्म होने वाली टीस भी है चाहे वे देवेंद्र इस्सर हों, गोविंद पानसरे हों, रवींद्र कालिया के हौसलों की स्मृतियाँ हों या इंतजार हुसैन जैसे नामी शायर की यादें। महीप सिंह जी पर सख्य-संस्मरण लेखक से उनकी अभिन्नता को अविकल रूप से निदर्शित करता है- "इसके साथ ही टूटकर लुप्त हो गया बातचीत का वह धागा जो ढीलता तनता रहा लेकिन हम दोनों को हमेशा जोड़े रहा।"

यहाँ कुछेक पारिवारिक प्रसंग भी हैं- सुख-दु:ख के, जीवन के बिछोह के, वर्तमान पीढ़ी की लापरवाह प्रवृत्तियों के प्रति चिंता के। ये विरल और सांकेतिक रूप में ही उभरे हैं, तथापि लेखक के जीवन में आए पारिवारिक संबंधों के तूफानों और संकटों का परोक्ष उल्लेख अवश्य करते हैं। डायरी में प्रसंगवश वृत्तचित्र, साक्षात्कार, पत्र-साहित्य और संस्मरण विधाओं के भी अंश-दर्शन हो जाते हैं, जो स्वाभाविक ही है।

लेखक की भावनाएँ और विचार ही पृष्ठों पर आकार ग्रहण नहीं करते, उसकी अंतर्चेतना से जुड़े शहर भी उसकी संवेदनाओं से मूर्त रूप ग्रहण कर मानवीकृत हो उठते हैं। जालंधर उनके लेखन को सान पर चढ़ाने वाला शहर है तो कहीं जम्मू में दिल्ली और दिल्ली में जम्मू के घुलने के अहसास हैं। अंबाला का बेगानापन सालता है तो लाहौर में अपनी धरती के प्रति खिंचाव है-

लाहौर हो या औरंगाबाद
तेजी से घूमती मेरी जन्मभूमियाँ हैं
एक स्पंदन में थिरकती।

वर्ष 2010 से 2017 तक की कुल साढ़े सात-आठ वर्ष की अवधि में घटित घटनाक्रम कहीं वर्तमान प्रतिक्रिया तो कहीं पूर्व स्मृति के रूप में व्यक्त हुए हैं। देश में ही नहीं, विदेश में- पाकिस्तान में घटित आतंकी घटनाओं - पेशावर के आर्मी स्कूल में आंतकवादियों द्वार बच्चों के कत्लेआम पर भी लेखक के साथ अंत: संवेदनाओं के सोए तार छेड़ता है। तथापि 26/11 और 16 दिसंबर, 2012 की रूह कँपा देने वाली घटना का कहीं भी जिक्र न होना थोड़ा आश्चर्य में डाल देता है।

लेखक की आत्मकथाओं की भाँति यहाँ भी निंदर केंद्रीय मेटाफर है जो उन्हें उकसाता है, टोकता है, सच बोलने के लिए जोर लगाता है, निंदर के अतिरिक्त मंटो भी इस डायरी का अभिन्न हिस्सा है। और जैसा कि लेखक ने स्वयं लिखा है- "मेरे पाठक जानते हैं कि विभाजन, मंटो और निंदर मेरी रूह में एक साथ चिपके हुए हैं। मंटो और निंदर की मिली-भगत ने मुझे कई बार हैरान-परेशान किया है मगर वक्त के साथ वे मेरे भीतर कुछ इस तरह बिंध गए कि उनसे पार पाना मेरे लिए मुश्किल हो गया हैं।" हाँ, नरेंद्र मोहन की आत्मकथा में यत्र-तत्र एक महत्वपूर्ण पात्र के रूप में उभरी नंदिता यहाँ मात्र एक ही स्थान पर आई हैं, जो थोड़ा अचरज उत्पन्न करता है।

डायरी में रोचकता के अनेक प्रसंग हैं, दोस्तों के, संगोष्ठियों, व्याख्यानों, कार्यशालाओं के जिन्हें संवादों से अधिक संप्रेषणीय बनाया गया है। साथ ही इसकी शैलीगत विशेषता पाठकों को प्रत्यक्ष संबोधन, मानो डायरी लिखी नहीं जा रही, आपको घटना-प्रसंग प्रत्यक्ष सुनाया जा रहा हो- "वाह! देखिए न, ---"

इस प्रकार यह डायरी घटना-क्रमों और तथ्यों का नीरस ब्यौरा-भर बनने से बची है और लेखक से भाव-तादात्म्य स्थापित होने के साथ पाठकों को मिली है एक नई दृष्टि, किसी घटना-विशेष पर सोचने का अलग नज़रिया।

वर्तमान लेखकों के अनुत्तरदायित्वपन, बाजारी क्रियाकलापों, सम्मान पाने की जुगाड़ू मानसिकता पर भी लेखक की चिंता और कटाक्ष जगह-जगह लक्षित होते हैं। किंतु जो सच का पक्षधर होगा, उसके दोस्त भी अंतत: इससे विमुख होने लगते हैं, यह कटु सत्य है जिसे लेखक ने भीतर तक झेला है। उम्र के इस पड़ाव पर निराला की भाँति कभी लेखक पीछे की ओर मुड़ता है तो कभी आगे की ओर बढ़ता है इस अहसास के साथ- 'देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सांध्य-बेला शरीर में वय की थकन है, शिथिलता है किंतु मन का परिंदा उड़ान भरने को आतुर है, तत्पर है क्योंकि मन की कोई सरहद नहीं - न भौतिक, न भौगोलिक - उसी भाँति जैसे लेखक की कल्पना, विचार और संवेदन किसी दायरे में नहीं बंधते, अतिक्रमण करते ही हैं।

इसी मन-पाखी के भरोसे हमें प्रतीक्षा है एक जीवंत नाटक के रचे जाने की ताकि हमारा समाज जाति-भेदक लकीरों के दुष्परिणामों से सबक ले सके और सावधान हो सके वोट-बैंक की राजनैतिक कुचालों से।

- एल-704, अग्रसेन अपार्टमेंट, 66, आई. पी. एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

❑❑❑

प्राप्ति स्वीकार

1. सेतु के आर-पार/ संतोष खन्ना/ हेमाद्रि प्रकाशन/ 1955 गली न. 22-ए, ईस्ट राम नगर, नजदीक दुर्गा मंदिर, शाहदरा, दिल्ली- 110032/ प्रकाशन वर्ष: 2018/ पृष्ठ: 120/ मूल्य: ₹300/-
2. आग अभी शेष है (कविता संग्रह)/ रवि पुरोहित/ प्रकाशन राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार समिति, संस्कृति भवन, एन. एच. 11, श्री डूंगरगढ़ - 331803, बीकानेर (राजस्थान)/ प्रकाशन वर्ष: 2018/ पृष्ठ : 96 / मूल्य : ₹200/-
3. धारा को रोकते नहीं पहाड़/ कैलाश नीहारिका/ बोधि प्रकाशन/ सी-46, सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर- 302006/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृष्ठ : 124/ मूल्य : ₹120/-
4. अनुगूँज/ प्रदीप कुमार अग्रवाल 'प्रदीप्त'/ अनुराधा प्रकाशन, 1193, पंखा रोड, नांगलराय, निकट डी 2ए, जनकपुरी, नई दिल्ली-110046/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृष्ठ : 192/ मूल्य : ₹250/-
5. मेरी पतंग मेरी डोर / गीता ग्रोवर / शिवांजली प्रकाशन, बी-16, रामदत्त एंक्लेव, ईस्ट उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृष्ठ : 71/ मूल्य : ₹120/-
6. शेख फरीद 'गंज-ए-शकर'/ ब्रजेंद्र कुमार सिंहल/ आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, डी-48, गली नं. 3, दयालपुर करावल नगर रोड, दिल्ली/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृष्ठ : 184/ मूल्य : ₹75/-

संपर्क सूत्र

1. अनिरुद्ध सिन्हा, गुलज़ार पोखर, मुंगेर, बिहार-811201
2. डॉ. ज्ञान चंद्र शर्मा, 324, दशमेश एन्क्लेव, ढकोली जीरकपुर, चंडीगढ़ -160104
3. डॉ. ह. सुवदनी देवी, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, काँचीपुर इंफाल-795003, मणिपुर
4. किशन लाल शर्मा, 103, रामस्वरूप कालोनी, शाहगंज, आगरा-282010
5. के. रामनाथन, 83/23-बी, करुंगलपट्टी, IV स्ट्रीट, सेलम-636006
6. डॉ. मिथलेश सिंह, विभागाध्यक्ष, जी. एस. एस. जैन कॉलेज, वेपेरी, चेन्नई
7. राकेश शर्मा 'निशीथ', 1/5569, बलबीर नगर विस्तार, शाहदरा, दिल्ली-110032
8. डॉ. दादूराम शर्मा, महाराज बाग, भैरवगंज सिवनी, जिला-सिवनी (म. प्र.) 480661
9. डॉ. मैथिली प्र. राव, संकायाध्यक्ष-भाषा निकाय, प्रोफेसर-हिंदी विभाग, जैन विश्वविद्यालय, बेंगलूरू
10. डॉ. मिलन रानी जमातिया, सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, त्रिपुरा
11. प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, 56, अशोक नगर, अधारताल, जबलपुर-482004 (म.प्र.)
12. डॉ. अंजु सिंह, डी II/12, पूसा कैंपस, नई दिल्ली-12
13. योगेंद्र कुमार 'गोस्वामी', केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम नई दिल्ली- 66
14. अनिता शर्मा, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, देव समाज गर्ल्स कॉलेज, अंबाला शहर (हरियाणा)
15. दीपक तांबोली, 94, नागेश्वर कालोनी, महाबल परिसर, जलगाँव, महाराष्ट्र
16. डॉ. अशोक वाचुलकर, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, आजरा महाविद्यालय, आजरा, तहः आजरा-416505, महाराष्ट्र
17. माया राही, ए-1/601, हैप्पी वैली टिकुंजी वाड़ी के पास, मानपाड़ा, थाणा-400610,
18. डॉ. हूंदराज बलवाणी, 172, महारथी सोसायटी, सरदार नगर, अहमदाबाद-382475,
19. अर्पण कुमार, फ्लैट संख्या- 102, गणेश हेरिटेज, स्वर्ण जयंती नगर, आर. बी. हॉस्पीटल के समीप, (पत्रकार कॉलोनी) गौरव पथ, बिलासपुर, पिन-495001
20. सुशांत सुप्रिय, ए-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद - 201014 (उ. प्र.)
21. फूलचंद मानव, 239, दशमेश एंक्लेव, ढ़कोली जीरकपुर-160104 (समीप चंडीगढ़)
22. डॉ. अनुराधा सेंगर, 223, मैट्रो व्यू अपार्टमैंट, सै.-13, पॉकेट-बी द्वारका, नई दिल्ली

23. डॉ. सरोज कुमार त्रिपाठी, बी-144, केंद्रीय विहार, सेक्टर-56, गुरुग्राम, पिन - 122011

24. दिविक रमेश, एल-1202, ग्रेंड अजनारा हेरिटेज, सेक्टर-74, नोएडा-201301

25. डॉ. साधना गुप्ता, द्वारा:- के. एल. गुप्ता 'एडवोकेट' राज.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड मंगलपुरा टेक, झालावाड (राज.)-326001

26. वैद्यनाथ झा, क्यू-36, फेज. II, (निकट प्रकाशपुरी आश्रम), न्यू पालम विहार, गुरुग्राम-122017(हरियाणा)

27. डॉ. अनुपम माथुर, एल-704, अग्रसेन अपार्टमेंट, 66, आई. पी. एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

❑❑❑

मौत और उसके बाद

विष्णु खरे

मुझे शायद याद करें वे टिमटिमाते तारे
रातों में जिन्हें देखता था मैं
मुझे न पाकर रोएँगें मेरे पागल विचार
अनजाने ही जिन्हें था लेखता मैं
बरखा मुझे न देखकर कहे
"क्या चल दिया वह?"

और आवारा बादलों का टुकड़ा न रहे
पूछ बैठे "नहीं रहा क्या वह
एक ही, बस एक ही पागल जो

हमें था देखता और मुस्कुराया?"
मेरी चिता पर नहीं होंगे किसी के
अश्रु, स्मृति में चढ़ाए फूल
बाद दो दिन के दिखावे के, रोने के,
सभी जाएँगे मुझको भूल
क्या हुआ जो सिरफिरा इक मर गया?
जगत के आनंद में कम क्या कर गया।

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

जैसे दिया सिराया जाता है

केदारनाथ सिंह

जैसे दिया सिराया जाता है
कल माँ को सिरा आया भागीरथी में
कई दिनों से गंगा नहाने की
कर रही थी ज़िद
सो, कल भरी दोपहरी में
जब सो रहा था सारा शहर कलकत्ता
मैंने उसे हथेलियों पर उठाया
और बहा दिया लहरों पर

जब वह बहती हुई
चली गई दूर तो ध्यान आया
हाय, ये मैंने क्या किया
उसके पास तो वीसा है न पासपोर्ट
जाने कितना गहरा-अथाह जलमार्ग हो
जल के कस्टम के जाने कितने पचड़े

कुछ देर इस उम्मीद में
शायद कुछ दिख जाए
खड़ा-खड़ा देखता रहा जल के भीतर की
वह गहरी अँधेरी जाम-लगी सड़क
और जब कुछ नहीं दिखा

तो मैंने भागीरथी से कहा-
माँ,
माँ का ख़याल रखना
उसे सिर्फ़ भोजपुरी आती है।

❑❑❑

सिक्का बदल गया

कृष्णा सोबती

खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिए शाहनी जब दरिया के किनारे पहुँची तो पौ फट रही थी। दूर-दूर आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी। शाहनी ने कपड़े उतारकर एक ओर रक्खे और 'श्रीराम, श्रीराम करती पानी में हो ली। अंजलि भरकर सूर्य देवता को नमस्कार किया, अपनी उनींदी आँखों पर छींटे दिए और पानी से लिपट गई!

चिनाब का पानी आज भी पहले-सा सर्द था, लहरे लहरों को चूम रही थीं। वह दूर सामने कश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ पिघल रही थी। उछल-उछल आते पानी के भंवरों से टकराकर कगारे गिर रहे थें लेकिन दूर-दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी। शाहनी ने कपड़े पहने, इधर-उधर देखा, कहीं किसी की परछाई तक न थी। पर नीचे रेत में अगणित पाँवों के निशान थे। वह कुछ सहम-सी उठी!

आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षो से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लंबा अरसा है। शाहनी सोचती है, एक दिन इस दुनिया के किनारे वह दुलहिन बनकर उतरी थी। और आज...आज शाहजी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाहजी की लंबी-चौड़ी हवेली में अकेली है। पर नहीं यह क्या सोच रही है वह सवेरे-सवेरे! अभी भी दुनियादारी से मन नहीं फिरा उसका! शाहनी ने लंबी सांस ली और 'श्री राम', करती बाजरे के खेतों से होती घर की राह ली। कहीं-कहीं लिपे-पुते आंगनों पर से धुआँ उठ रहा था। टनटन बैलों की घंटियाँ बज उठती है। फिर भी...फिर भी कुछ बंधा-सा लग रहा है। 'जम्मीवाला' कुआँ भी आज नहीं चल रहा। ये शाहजी की ही असामियाँ हैं। शाहनी ने नजर उठायी। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भरी-भराई नई फसल को देखकर शाहनी किसी अपनत्व के मोह में भीग गई। यह सब शाहजी की बरकतें हैं दूर-दूर गाँवों तक फैली हुई जमीनें, जमीनों में कुएँ सब अपने हैं। साल में तीन फसल, जमीन तो सोना उगलती है। शाहनी कुएँ की ओर बढ़ी, आवाज दी, "शेरे-शेरे, हसैना-हसैना....।"

शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है। वह न पहचानेगा! अपनी माँ जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ। उसने पास पड़ा गंडासा 'शटाले' के ढेर के नीचे सरका दिया। हाथ में हुक्का पकड़कर बोला "ऐ हैसैना-सैना...।" शाहनी की आवाज उसे कैसे हिला गई है! अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी की ऊँची हवेली की अंधेरी कोठरी में पड़ी सोने-चाँदी की संदूकचियाँ उठाकर... कि तभी 'शेरे-शेरे...। शेरा गुस्से से भर गया। किस पर निकाले अपना क्रोध? शाहनी पर! चीखकर बोला ऐ मर गयीं ऐ एब्ब तैनू मौत दे।

हसैना आटेवाली कनाली एक ओर रख, जल्दी-जल्दी बाहर निकल आई। "ऐ आयीं आं क्यों छावेले (सुबह-सुबह) तडप़ना एं?"

अब तक शाहनी नजदीक पहुँच चुकी थी। शेरे की तेजी सुन चुकी थी। प्यार से बोली, "हसैना, यह वक्त लड़ने का है? वह पागल है तो तू ही जिगरा कर लिया कर।"

"जिगरा!" हसैना ने मान भरे स्वर में कहा। शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है। कभी शेरे से भी

भाषा ISSN 0523-1418

पूछा है कि मुँह अंधेरे ही क्यों गालियाँ बरसाई हैं। इसने?" शाहनी ने लाड़ से हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हंसकर बोली "पगली मुझे तो लड़के से बहू प्यारी है! शेरे"

"हाँ शाहनी"

"मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आए हैं यहाँ? " शाहनी ने गंभीर स्वर में कहा।

शेरे ने जरा रुककर, घबराकर कहा, " नहीं शाहनी..." शेरे के उत्तर को अनसुनी कर शाहनी जरा चिंतित स्वर से बोली, "जो कुछ भी हो रहा है, अच्छा नहीं। शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। पर.... "शाहनी कहते-कहते रुक गई। आज क्या हो रहा है शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है। शाहजी के बिछुड़े कई साल बीत गए, पर आज कुछ पिघल रहा है शायद पिछली स्मृतियाँ....आँसुओं को रोकने के प्रयत्न में उसने हसैना की ओर देखा और हल्के-से हँस पड़ी। और शेरा सोच ही रहा है, क्या कह रही है शाहनी आज! आज शाहनी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह होके रहेगा क्यों न हो? हमारे ही भाई-बंदों से सूद ले-लेकर शाहजी सोने की बोरियाँ तोला करते थे। प्रतिहिंसा की आग शेरे की आँखों में उतर आई। गंडासे की याद हो आई। शाहनी की ओर देखा, नहीं-नहीं, शेरा इन पिछले दिनों में तीस-चालीस, कत्ल कर चुका है। पर वह ऐसा नीच नहीं.... सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आँखों में तैर गए। वह सर्दियों की रातें कभी-कभी शाहजी की डांट खा के वह हवेली में पड़ा रहता था। और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहनी के ममता भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए 'शेरे-शेरे, उठ, पी ले।' शेरे ने शाहनी के झुर्रिया पड़े मुँह की ओर देखा तो शाहनी धीरे से मुस्करा रही थी। शेरा विचलित हो गया। 'आखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा? शाहनी की बात शाहजी के साथ गई, वह शाहनी को जरूर बचाएगा। लेकिन कल रात वाला मशवरा! वह कैसे मान गया था फिरोज की बात! 'सब कुछ ठीक हो जाएगा सामान बांट लिया जाएगा!

"शाहनी चलो तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ!"

शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरी सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे-पीछे मजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित-सा इधर-उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूंज रही हैं। पर क्या होगा शाहनी को मारकर?

"शाहनी"

"हाँ शेरे"

शेरा चाहता है कि सिर पर आने वाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे?"

"शाहनी"

शाहनी ने सिर ऊँचा किया। आसमान धुएँ से भर गया था। "शेरे"

शेरा जानता है यह आग है। जबलपुर में आज आग लगनी थी लग गई! शाहनी कुछ न कह सकी। उसके नाते-रिश्ते सब वहीं हैं।

हवेली आ गई। शाहनी ने शून्य मन से ड्योढ़ी में कदम रक्खा। शेरा कब लौट गया उसे कुछ पता नहीं। दुर्बल-सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के! न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी। दुपहर आई और चली गई। हवेली खुली पड़ी है। आज शाहनी नहीं उठ पा रही। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है। शाहजी के घर की मालकिन....लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा। मानो पत्थर हो गई हो। पड़े-पड़े सांझ हो गई, पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही। अचानक रसूली की आवाज सुनकर चौंक उठी।

"शाहनी-शाहनी, सुनो ट्रकें आती हैं। लेने?"

"ट्रके...?" शाहनी इसके सिवाय कुछ न कह सकी। हाथों ने एक-दूसरे को थाम लिया। बात की बात में खबर गाँव भर में फैल गई। बीबी ने अपने विकृत कंठ से कहा "शाहनी, आज तक कभी ऐसा न हुआ, न कभी सुना। गजब हो गया, अंधेर पड़ गया।"

शाहनी मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही। नवाब बीबी ने स्नेह-सनी उदासी से कहा "शाहनी, हमने तो कभी न सोचा था!"

शाहनी क्या कहे कि उसी ने ऐसा सोचा था। नीचे से पटवारी बेगू और जैलदार की बातचीत सुनाई दी। शाहनी समझी कि वक्त आन पहुँचा। मशीन की तरह नीचे उतरी, पर ड्योढ़ी न लांघ सकी। किसी गहरी, बहुत गहरी आवाज से पूछा कौन? कौन हैं वहाँ? कौन नहीं है आज वहाँ? सारा गाँव है जो असामियाँ है जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन आज उसका कोई नहीं वह अकेली है! यह

भीड़, उनमें कुल्लूवाल के जाट। वह क्या सुबह ही न समझ गई थी?

बेगू पटवारी और मसीत के मुल्ला इस्माइल ने जाने क्या सोचा। शाहनी के निकट आ खड़े हुए। बेगू आज शाहनी की ओर देख नहीं पा रहा। धीरे से जरा-सा गला साफ करते हुए कहा "शाहनी, रब्ब नू एही मंजूर सी।"

शाहनी के कदम डोल गए। चक्कर आया और दीवार के साथ गई। इसी दिन के लिए छोड़ गऐ थे शाहजी उसे? बेजान-सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है 'क्या गुजर रही है शाहनी पर! मगर क्या हो सकता है! सिक्का बदल गया है...'

शाहनी का घर से निकलना छोटी-सी बात नहीं। गाँव का गाँव खड़ा है हवेली के दरवाजे से लेकर उस दारे तक जिसे शाहजी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था। तब से लेकर आज तक सब फैसले, सब मशविरे यहीं होते रहे हैं। इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गई थी! यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो। वह जानकर भी अनजान बनी रही। उसने कभी बैर नहीं जाना। किसी का बुरा नहीं किया। लेकिन बूढ़ी शाहनी यह नहीं जानती थी कि सिक्का बदल गया है...

देर हो रही थी। थानेदार दाऊद खाँ जरा अकड़कर आगे आया और ड्योढ़ी पर खड़ी जड़ निर्जीव छाया देखकर ठिठक गया! वही शाहनी है जिसके शाहजी उसके लिए दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे। यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मंगेतर को सोने के कनफूल दिए थे मुँह दिखाई में। अभी उसी दिन जब वह 'लीग' के सिलसिले में आया था तो उनसे उद्दडंता से कहा था 'शाहनी, भागोवाल मसीत बनेगी, तीन सौ रुपया देना पड़ेगा' शाहनी ने अपने उसी सरल स्वभाव से तीन सौ रुपए दिए थे; और आज....?

शाहनी! डयोढ़ी के निकट जाकर बोला "देर हो रही है शाहनी (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो। कुछ साथ बाँध लिया। सोना-चाँदी है? शाहनी अस्फुट स्वर से बोली सोना-चाँदी! जरा ठहरकर सादगी से कहा सोना-चाँदी! बच्चा वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।"

दाऊद खाँ लज्जित-सा हो गया। "शाहनी तुम अकेली हो, अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। वक्त का कुछ पता नहीं"

"वक्त?" शाहनी अपनी गीली आँखों से हँस पड़ी। "दाऊद खाँ, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिंदा रहूँगी" किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने।

दाऊद खाँ निरुत्तर है। साहस कर बोला "शाहनी कुछ नकदी जरूरी है।"

"नहीं बच्चा मुझे इस घर से– शाहनी का गला रुंध हो गया" नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यहीं रहेगी।"

शेरा आन खड़ा गुजरा कि हो ना हो कुछ मार रहा है शाहनी से। "खाँ साहिब देर हो रही है"

शाहनी चौंक पड़ी। देर मेरे घर में मुझे देर! आँसुओं की भंवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पले हुए... नहीं, यह सब कुछ नहीं। ठीक है देर हो रही है पर नहीं, शाहनी रो-रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान से लाँघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन वह रानी बनकर खड़ी हुई थी। अपने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर शाहनी ने दुपट्टे से आँखें पोछीं और ड्योढ़ी से बाहर हो गई। बढ़ी-बूढ़ियाँ रो पड़ीं। किसकी तुलना हो सकती थी इसके साथ! खुदा ने सब कुछ दिया था, मगर दिन बदले, वक्त बदले...

शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढाँपकर अपनी धुंधली आँखों में से हवेली को अंतिम बार देखा। शाहजी के मरने के बाद भी जिस कुल की अमानत को उसने सहेजकर रखा आज वह उसे धोखा दे गई। शाहनी ने दोनों हाथ जोड़ लिए यही अंतिम दर्शन था, यहीं अंतिम प्रणाम था। शाहनी की आँखे फिर कभी इस ऊँची हवेली को न देख पाएँगी। प्यार ने जोर मारा सोचा, एक बार घूम-फिर कर पूरा घर क्यों न देख आई मैं? जी छोटा हो रहा है, वह जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक हैं बस हो चुका। सिर झुकाया। ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकलकर कुछ बूंदे चू पड़ी। शाहनी चल दी ऊँचा-सा भवन पीछे खड़ा रह गया। दाऊद खाँ, शेरा,

भाषा ISSN 0523-1418

पटवारी, जैलदार और छोटे-बड़े, बच्चे, बूढ़े-औरतें सब पीछे-पीछे।

ट्रकें अब भर चुकी थीं। शाहनी अपने को खींच रही थी गाँव वालों के गलों में जैसे धुआँ उठ रहा है। शेरे, खूनी शेरे का दिल टूट रहा है। दाऊद खाँ ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवाजा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज से कहा "शाहनी, कुछ कह जाओ। तुम्हारे मुँह से निकली असीस झूठ नहीं हो सकती" और अपने साफे से आँखों का पानी पोछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचक को रोककर रुंधे-रुंधे से कहा, "रब्ब तुहानु सलामत रक्खे बच्चा, खुशियाँ बक्शे...।"

वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया। जरा भी दिल में मैल नहीं शाहनी के। और हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढ़कर शाहनी के पाँव छुए, "शाहनी कोई कुछ कर नहीं सका। राज भी पलट गया" शाहनी ने कांपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रक्खा और रुक-रुक कर कहा "तैनू भाग जगण चन्ना!" (ओ चाँद तेरे भाग्य जागे) दाऊद खाँ ने हाथ का संकेत किया। कुछ बड़ी-बूढ़िया शाहनी के गले लगीं और ट्रक चल पड़ी।

अन्न-जल उठ गया। वह हवेली, नई बैठक, ऊँचा चौबारा, बड़ा 'पसार' एक-एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आँखों में! कुछ पता नहीं ट्रक चल दिया है या वह स्वयं चल रही है। आँखें बरस रही हैं। दाऊद खाँ विचलित होकर देख रहा है इस बूढ़ी शाहनी को। कहाँ जाएगी अब वह?

"शाहनी मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते! वक्त ही ऐसा है। राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है..."

रात को शाहनी जब कैंप में पहुँचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा "राज पलट गया है.... सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आई।..."

और शाहजी की शाहनी की आँखे और भी गीली हो गईं।

आसपास के हरे-हरे खेतों से घिरे गाँवों में रात खून बरसा रही थी।

शायद राज पलटा भी खा रहा था और सिक्का बदल रहा था....

❑❑❑

अच्छी कहानी

नामवर सिंह

कहानी संबंधी तमाम चर्चाओं की सार्थकता इस बात में है कि आप कम से कम एक अच्छी नई कहानी दिखा सकें-ऐसी कहानी जिस पर कोई राय न दी गई हो या दी भी हो गई तो स्थिर न हुई हो। वरना अच्छी कहानी के नाम पर आपने यदि आज भी 'उसने कहा था' का ही नाम लिया तो क्या हुआ? एक अचूक पहचान के आगे समीक्षा के सैकड़ों सिद्धांत फीके हैं। सिद्धांत तो एक पहचान को केवल 'सर्वसामान्य' रूप देने का कार्य करते है; सिद्धांत के द्वारा उस पहचान को अधिक से अधिक एक ठोस, वस्तुगत एवं युक्ति-संगत आधार मिलता है। यदि कोई साफ-साफ बता दे कि मुझे अमुक कहानी अच्छी लगती है तो यह बताने में ज्यादा कठिनाई न होगी कि कहानी के बारे में उसकी मान्यता क्या है अथवा कोई मान्यता है भी या नहीं।

कहना न होगा कि इधर की प्रकाशित कहानियों के अंबार में अच्छी कहानियाँ प्राय: पहचान ली गई हैं। पाठकों के पत्रों, संपादकीय टिप्पणियों और आलोचनात्मक लेखों के आलोड़न-विलोड़न से जो दस-बारह अच्छी कहानियाँ ऊपर आई हैं उनके पीछे व्यापक सहमति दिखाई पड़ती है। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि हिंदी को कथा-जगत् में अच्छे-बुरे का विवेक एकदम लुप्त नहीं हो गया है। किंतु इसके साथ ही क्या यह भी सच नहीं है कि कुछ अच्छी कहानियाँ अब भी विवादास्पद है और क्या यह भी संभावना नहीं है कि कुछ अच्छी कहानियाँ अनदेखी रह गई हैं? ऐसे ही सरहदी मामलों को लेकर सैद्धांतिक सवाल उठ खड़े होते हैं और फिर तो सवाल से सवाल पैदा होते हैं।

इधर बार-बार यह आवाज उठाई गई है कि सवाल 'नई कहानी' का नहीं बल्कि 'अच्छी कहानी' का है। गोया 'अच्छी कहानी' सिर्फ एक सवाल है और वह भी पहला! मिर्ज़ा होते तो कहे बगैर न रहते 'इस सादगी पे कौन न मर जाय..!' इतना सीधा-सा सवाल कोई मासूम ही कर सकता है या फिर वह जिसे पूरा आत्मविश्वास हो कि उसके पास अच्छी कहानी का एक बना-बनाया शाश्वत मानदंड है जो कहीं भी कारगर हो सकता है। साहित्यिक दुकानदार ही ऐसे बाट और भाव इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन जो जानते हैं कि 'अच्छी कहानी' के एक सवाल के साथ दस और सवाल जुड़े हुए हैं जिन पर निर्णय देना कठिन है, उनकी जिज्ञासा का रूप दूसरा होता है और शायद उसके सवालों की शुरुआत भी किसी दूसरे कोण से होती है। यह कहना गलत है कि 'कहानी की बात किसी भी कोण से शुरू की जा सकती है।' ऐसी बात वही लेखक कह सकता है जिसमें यह कहने का साहस हो कि कहानी कहीं से भी शुरू की जा सकती है। इस तरह की बातें उन्हीं को कहने दें जो हर चीज़ को ग्लोब समझते हैं और जिनका ख्याल है कि केंद्र तक पहुँचने के लिए परिधि के किसी भी बिंदु से रवाना हुआ जा सकता है। क्या अजब कि ऐसे लोगों के हाथ ग्लोब का खाली आकार-शून्य ही हाथ लगे!

किसी कहानी को अच्छी कहने के पीछे न जाने कितने कारण होते हैं। कभी-कभी केवल एक निहायत छोटी-सी बात के लिए भी किसी कहानी को अच्छी कहते सुना गया है- चाहे वह एक चित्र हो, या एक

 भाषा ISSN 0523-1418

वाक्य। कहने वालों में अच्छे भले लोग मिलते हैं- यहाँ तक कि साहित्य-समीक्षक और कहानीकार भी। अब इस पसंद को क्या कहा जाएगा? चार बातें इसके खिलाफ कही जा सकती हैं तो एक-दो बात इसके समर्थन में भी पेश की जा सकती है। सुंदरता का निर्णय भी क्या सिर्फ एक-आध चीज़ को लेकर ही नहीं किया जाता? या तमाम चीज़ों की एक-एक कर नाप ली जाती है? अगर यह प्रवृत्ति एकांगी है तो जो लोग केवल विषय-वस्तु या कलाकौशल के लिए किसी कहानी को अच्छी कहते हैं, वे भी क्या एकांगी नहीं है? यदि कुछ तथाकथित 'अच्छी कहानियों' के अच्छे होने की जाँच की जाए तो पता चलेगा कि ये भी शायद एक ही दो बातों के लिए अच्छी कही गई हैं।

तो क्या 'संपूर्ण प्रभाव' के अनुसार अच्छी कहानी का निर्णय हो? लेकिन इस बात का निर्णय कैसे हो कि उस तथाकथित 'संपूर्ण-प्रभाव' में कितना अंश पाठक का अपना है और कितना स्वयं उस कहानी का? कठिनाई और बढ़ जाती है जब किसी कहानी के 'संपूर्ण-प्रभाव' को भावात्मक रूप में व्यक्त किया जाता है। जैसे एक कहानीकार का कहना है कि 'इन दस वर्षों की कोई भी अच्छी कहानी उठा लीजिए-उसका प्रभाव या परिणति एक झटके के साथ देखा या पाया हुआ सत्य नहीं होता। न वह हथौड़े की चोट की तरह सारे अस्तित्व को झनझनाती है, न खुले तीर की तरह टीसती है। वह तो कुहासे या चंदनगंध की तरह समस्त चेतना पर छा जाती है। उसका अंग बन जाती है और अनजाने ही आत्मा को संस्कार और दृष्टि देती है।' अब इस 'कुहासे' और 'चंदनगंध' को लेकर किसी अच्छी कहानी का निर्णय कैसे किया जाए? इस कुहासे और चंदनगंध से किसी पाठक को क्या दृष्टि मिल सकती है। यदि हम किसी कहानी के बारे में कहें कि कुहासे या चंदनगंध की तरह समस्त चेतना पर छा जाती है इसलिए अच्छी कहानी है तो कितने लोग है जो उसे अच्छी मान लेंगे? क्या यही बात एक छायावादी कहानी के बारे में लागू नहीं हो सकती है? फिर किसी को यदि हथौड़ा या नीमकश तीर ही पसंद हो तो कुहासे या चंदनगंध को क्यों स्वीकार करेगा? निर्णय के लिए प्रभाव की 'तीव्रता' और 'व्याप्ति' ही काफी है या उस प्रभाव की 'प्रकृति' का बोध भी आवश्यक है? 'अनजाने' ही आत्मा को संस्कार या दृष्टि मिल जाना एक बात है लेकिन उस संस्कार और दृष्टि से अनजान रह जाना बिल्कुल दूसरी बात है। इस आत्म-सजग युग में इस छायावादी अनजानेपन का क्या मतलब है?

इसके अलावा जिसे कहानी का 'संपूर्ण प्रभाव' कहा जाता है, वह हमेशा पड़ता ही है या ग्रहण भी किया जाता है? क्या 'पड़ा हुआ प्रभाव' और 'ग्रहण किया हुआ प्रभाव' दोनों एक ही हैं? दृष्टि जो देखती है और दृष्टि जो केवल प्रतिबिंबित करती है- एक ही है? सवाल यह है कि हम किस दृष्टि को देखना चाहते हैं और देखते समय स्वयं अपनी दृष्टि को भी देखने की कोशिश करते हैं या नहीं? इतनी दृष्टियों और दृष्टियों के बिंब-प्रतिबिंबों की यह दुनिया क्या पागल कर देने वाली नहीं है? आँखें खोलकर जो भी इस दुनिया में प्रवेश करेगा वह यह महसूस किए बिना न रहेगा कि 'आइनाखाने में कोई लिए जाता है हमें!'

निस्संदेह कहानी के 'संपूर्ण प्रभाव' की 'प्रकृति' को भी निर्दिष्ट करने की कोशिशें हुई हैं। कहा गया है कि प्रभाव की सांकेतिकता के 'स्वरूप' या 'अस्वस्थ' प्रभाव का निर्णय होना चाहिए! क्या यह कसौटी साहित्य के स्वास्थ्य-मंत्री के वक्तव्य जैसी नहीं लगती? क्या इससे समस्या का समाधान हो जाता है? स्वरूप अथवा अस्वस्थ प्रभाव का निर्णय कैसे होगा? स्वरूप अथवा अस्वस्थ प्रभाव के निर्णय की कसौटी क्या होगी? एक प्रभाव की व्याख्या को दूसरे प्रभाव के हवाले करके क्या हम एक वृत्ताकर जटिलता में नहीं जा उलझते हैं? घूम-फिर कर बात फिर पाठकों पर जा पड़ती है। और यदि हम पाठकों की आत्मगत (सब्जेक्टिव) प्रतिक्रिया की अनिश्चित, दुर्गम एवं खिसकने वाली बालुकाभूमि पर अपने मूल्यांकन को प्रतिष्ठित नहीं करना चाहते हैं तो हमें किसी 'आदर्श पाठक' या 'औसत पाठक' का निश्चय करने के लिए सांख्यिकी विज्ञान की किसी पद्धति का आश्रय लेना पड़ेगा। इस प्रकार हम अनिवार्यत: आँकड़ों के जाल में जा पड़ेंगे।

लेकिन हम जानते हैं कि साहित्य का रसास्वादन वस्तुत: अनुभवपरक है और यहाँ आँकड़े की सृष्टि आर्थिक या दूसरे वस्तुगत क्षेत्रों की तुलना में कहीं अधिक जटिल है। इसलिए आलोचना की वर्तमान स्थिति को देखते हुए फिलहाल हमें वस्तुगत अनुभवों के आधार पर ही अच्छी कहानी का निर्णय करना पड़ेगा। यदि पढ़ना एक सचेत क्रिया है तो इस क्रिया का

यथासंभव पूरा ब्यौरा देना कठिन नहीं है। अब तक के आलोचनात्मक अनुभव से यही प्रतीत होता है कि किसी अच्छी कृति का निर्णय करने के लिए एक बने-बनाए मानदंड से आरंभ करने की अपेक्षा पढ़ने की प्रक्रिया से शुरू करना अधिक उपयोगी हो सकता है। हो सकता है कि आगे चलकर मूल्यांकन की यह पद्धति भी अपर्याप्त प्रमाणित हो जाए किंतु क्या इसको लेकर एक प्रयोग नहीं किया जा सकता है?

'आलोचना में एक प्रयोग' नामक सद्य: प्रकाशित पुस्तक में प्रोफेसर सी. एस. लेविस ने इस प्रयोग की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है जिसे कहानी के क्षेत्र में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

प्रस्तावित प्रयोग इस संभावना को लेकर चलता है कि अच्छी और बुरी कहानियों को पढ़ने का ढंग बुनियादी तौर पर भिन्न होता है। अच्छी कहानी एक ढंग से पढ़ी जाती है तो बुरी कहानी बिल्कुल दूसरे ढंग से। धीरे-धीरे पढ़ने का यह ढंग कुछ दिनों बाद जब 'आदत' का रूप ले लेता है तो अच्छी और बुरी कहानियों के अनुसार पाठकों के भी दो भिन्न समुदाय बन जाते है। जहाँ इस भेद को अच्छी तरह देखा जा सकता है। वस्तुभेद से क्रियाभेद और क्रिया-भेद से व्यक्तिभेद - रूपांतर की दिशा बहुत कुछ इसी प्रकार की होती है; इसलिए इस प्रक्रिया को पलट कर हम अच्छी-बुरी रचनाओं का निर्णय कर सकते हैं। कुछ अच्छी कहानियों के बारे में क्या यह कहते नही सुना जाता कि यह तो पढ़ी ही नहीं जा सकी? अमुक कहानी पठनीय है या अपठनीय- किसी पाठक की यह पहली सम्मति होती है। और संभवत: इसी आधार पर वह प्रस्तुत कहानी का मूल्यांकन भी करता है। इससे क्या यह स्पष्ट नहीं होता कि पढ़ने की पद्धति ही सबसे महत्वपूर्ण है और इस प्रकार किसी भी पड़ताल का आरंभिक क्षेत्र भी!

जिन पाठकों को प्राय: असाहित्यिक और असंस्कारी कहा जाता है, उनके पढ़ने के अंग का यदि विश्लेषण किया जाए तो कुछ रोचक तथ्य सामने आ सकते हैं। सस्ती कहानियों को पढ़ते-पढ़ते जिनकी रुचि एक खास तरह की हो गई है उनका पढ़ने का तरीका भी एक विशेष रूप ले चुका है। वे किसी रचना को 'दुबारा' नहीं पढ़ते-यहाँ तक कि दुबारा पढ़ने को ही अनावश्यक समझते हैं यदि उनसे किसी कहानी को दुबारा पढ़ने के लिए कहा जाए तो चट कहेंगे कि मैं इसे पहले ही पढ़ चुका हूँ धीरे-धीरे कुछ ऐसा अभ्यास हो जाता है कि हर रचना पहले ही पढ़ी हुई मालूम होने लगती है। यदि कभी भूल से कोई पढ़ी हुई कहानी हाथ लग जाए तो इस तथ्य का निश्चय होते ही वे उसे जहाँ का तहाँ छोड़ देते हैं। किसी कहानी को लेकर बहस होने पर ही अपनी धुंधली याद को ताजा करने के लिए वे उसे देख लेते हैं, लेकिन बस देख ही लेते है- पूरी पढ़ने का कष्ट नहीं उठाते! उनके लिए एक बार की पढ़ी हुई कहानी जली हुई सलाई की तीली है या पुराना रेल-टिकट या फिर कल का अखबार जिसका इस्तेमाल हो चुका है। उनके लिए यह समझना असंभव है कि कुछ लोग कैसे एक ही कृति को दस-बीस-पच्चीस बार पढ़ते हैं।

जहाँ कुछ लोग एक बार अच्छी लगी हुई रचना को दुबारा पढ़ने के लिए शांति और अवकाश की तलाश करते है वहाँ वे फालतू वक्त ही पढ़ने का काम करते हैं। एक तरह के लोग जहाँ कहानियों के चरित्रों, दृश्यों और पंक्तियों के साथ जीते हैं और बातचीत के दौरान उनका हवाला देते हैं वहाँ दूसरों के लिए वह सब कपोलकल्पना और सर्वथा अप्रांसगिक हैं। वहाँ से अपने जीवन के लिए कुछ भी संग्रह करने योग्य नहीं है। एक के लिए यदि किसी कहानी का प्रथम पाठ एक अविस्मरणीय अनूठा अनुभव है तो दूसरे के लिए कुछ भी नहीं।

ऐसा नहीं है कि इस तरह के पाठकों में केवल 'असाहित्यिक' और 'अल्प-शिक्षित' लोग ही हैं। इस कोटि में बहुत से साहित्यिक और विद्वान भी प्राय: आ जाते हैं जो अध्ययन और अध्यापन के व्यवसाय में हैं वे भी पेशे के तकाज़े से ही बहुत कुछ पढ़ते हैं। पुस्तकों के पेशेवर समीक्षकों के पढ़ने का ढंग भी बहुत कुछ इसी प्रकार का होता है। सभ्य समाज में घूमने-फिरने वाले सुसंस्कृत भद्रजन भी ऐसे ही पाठक हैं जो नए फैशन को देखते हुए ही पुस्तकें पढ़ते हैं- उनके लिए पठनीय पुस्तक वह है जिसकी आजकल चर्चा हो, जिस पर कोई विवाद उठ खड़ा हुआ हो या किसी कारण से जिस पर रोक लगा दी गई हो। इसी कोटि में वे विद्वान समीक्षक भी आते हैं जो केवल 'श्रेष्ठ' और 'क्लासिक' साहित्य पढ़ते हैं क्योंकि उन्हें किसी नई रचना के प्रति पहले से आश्वस्त होना कठिन लगता है। एक प्रकार से ये साहित्य के पुरातत्वविद हैं। संभवत: साहित्य को ये

संग्रहालय समझते हैं और अपने को 'क्यूरेटर'! इनके अतिरिक्त साहित्य के प्रति अतिरिक्त भाव से सतत गंभीर रहने वाले आलोचक हैं जो हर रचना को 'अध्ययन का विषय' समझते हैं- उन्हें भी पढ़ने से मतलब नहीं है।

कुल मिलाकर इस पाठक-समुदाय का पढ़ने का ढंग बहुत कुछ एक सा है चाहे वह हल्का-फुल्का हो या गंभीर, पेशेवर हो या स्वेच्छा-स्वीकृति, है वह अंततः 'असाहित्यिक' ही! इस समुदाय में ज्ञान, दृष्टि और रुचि का भेद चाहे जितना हो किंतु इनके पढ़ने का जो ढंग है उससे किसी अच्छी नई कहानी का चुना जाना संदेहास्पद ही है।

वैसे, इस बात की पूरी आशंका है कि अच्छी कहानी भी बुरे ढंग से पढ़ी जा सकती और इसके विपरीत एक बुरी कहानी को भी अच्छे ढंग से पढ़ने की कोशिश हो सकती है, किंतु अधिक संभावना इसी बात की है कि एक बुरी कहानी अच्छे पाठ की आँच बर्दाश्त नहीं कर सकती; वस्तुतः वह जिन शब्दों में प्रस्तुत होती है वे एक अच्छे पाठक की तेज़ निगाहों के सामने ज्यादा ठहर सकने में असमर्थ होते हैं। इसलिए प्रोफेसर लेविस के कथन को थोड़ा-सा बदलकर हम कह सकते हैं कि "ए गुड स्टोरी इज़ वन विच परमिट्स, 'इनवाइट्स एंड कंपैल्स' गुड रीडिंग।" कहना न होगा कि 'परमिट्स', 'इनवाइट्स' और 'कंपैल्स' ये तीनों शब्द साभिप्राय और पूरे वज़न के साथ इस्तेमाल किए गए हैं। जो कहानी कुछ भी अच्छी होती है वह उसमें अच्छे पाठ की 'संभावना' होती है और जो उससे भी अच्छी होती है अच्छे ढंग से पढ़ने के लिए 'निमंत्रित करती है; लेकिन जो कहानी बहुत अच्छी होती है वह अच्छे ढंग से पढ़ने के लिए 'बाध्य' करती है। इस प्रकार संभावना, निमंत्रण और बाध्यता में भी एक निश्चित अनुक्रम है।

इस प्रकार पढ़ने के ढ़ंग के अनुसार बुरी कहानी से अच्छी कहानियों के तारतम्य अर्थात् तर और तम का भी निश्चय किया जा सकता है। इससे गुण और मात्रा-दोनों क्षेत्रों में विवेक किया जा सकता है।

सवाल यह है कि पढ़ने के जिस ढंग पर इतना जोर दिया जा रहा है उसे वस्तुगत रूप में जानने का कोई उपाय है क्या? क्या कुछ मोटे-मोटे नियमों का उल्लेख करके इस पाठ-पद्धति की रूपरेखा पेश की जा सकती है? अवश्य ही प्रोफेसर लेविस ने कुछ सामान्य सूत्रों का उल्लेख किया है और जिन्हें अंग्रेजी की नई समीक्षा-पद्धति का पता है वे उन सरणियों से परिचित भी होंगे, किंतु इस पद्धति का सर्वाधिक सुरक्षित रूप है कुछ-एक रचनाओं के रसास्वादन का पूरा विवरण हो। इस पाठ-पद्धति का अधिक से अधिक वस्तुगत रूप यही हो सकता है।

जैसे भी हो लेकिन हर कहानी से होकर स्वयं गुजरने के सिवा कोई चारा नही है; शुरू से लेकर आखीर तक यह रास्ता हर एक को स्वयं ही तय करना पड़ेगा- कदम-ब-कदम!

स्थिति कुछ-कुछ तोल्सतोय की अन्ना की-सी है। ब्रोन्स्की के साथ अन्ना का घातक प्रेमप्रसंग जब चल ही रहा था कि अन्ना अपने भाई से कहती है: "नहीं, स्तीवा, मैं खत्म हूँ: खत्म से भी बदतर; अभी मैं खत्म नहीं हूँ-मैं कह नहीं सकती कि सब कुछ समाप्त हो गया: इसके विपरीत मैं महसूस करती है कि यह खत्म नहीं हुआ है। मैं एक कसी हुई वायलिन के तार की तरह हूँ जिसे टूटना ही चाहिए लेकिन अभी इसका अंत नहीं हुआ है..... और अंत भंयकर होगा।" अंत का आभास होने पर भी अंत तक अन्ना को जाना ही था और इन सबके बीच से गुजरते हुए : वही उसकी पूर्णता थी और था चरम अंत! नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय!

क्या इसके बाद भी अच्छी कहानी की तलाश करने वाले किसी पाठक के लिए टिप्पणी की आवश्यकता है! किसी अच्छी कहानी की यह आत्मपूर्णता एक पाठक से भी इसी प्रकार की आत्म-पूर्ण ग्रहणशीलता की अपेक्षा रखती है। मानदंड मेरे पास कोई नहीं हैं। यदि है तो एक प्रयोग की चुनौती। क्या मानदंडों का सहारा छोड़कर यह प्रयोग आजमाने लायक नहीं है?

❑❑❑

समाचार–समोन्नति

असमिया समाचार

1. विगत 4-5 अक्तूबर, 2018 को असम विश्वविद्यालय, सिलचर में पूर्वोत्तर भारत के विशेष संदर्भ में सांस्कृतिक विविधता एवं मीडिया की भूमिका पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया।
2. साहित्य अकादमी तथा डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में सैयद अब्दुल मालिक (असमिया भाषा के साहित्यकार) की जन्मशती मनाई गई। 29-30 अक्तूबर को आयोजित इस कार्यक्रम की अध्यक्षता असम साहित्य सभा के पूर्व अध्यक्ष श्री नागेन शाइकिया ने किया।

-श्री अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

मैथिली समाचार

1. मैथिली साहित्य का सर्वोच्च पुरस्कार "प्रबोध साहित्य सम्मान 2019 प्रसिद्ध कवि श्री हरेकृष्ण झा को दिए जाने की घोषणा की गई।
2. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के वर्ष 2018 का अनुवाद पुरस्कार (मैथिली) श्री सदरे आलम गौहर को दिए जाने की घोषणा की गई।
3. मधुबनी (बिहार) स्थित प्रसिद्ध साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था 'मैथिली साहित्यिक व सांस्कृतिक समिति' ने अपनी गतिविधियों में अब नियमित रूप से बाल रचनाकारों की सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने का निर्णय किया जिसके अंतर्गत संप्रति कहानी व कविता विधा प्रत्येक में तीन-तीन पुरस्कार क्रमशः 3, 2 व 1 हजार रु. के प्रदान किए जाने की घोषणा की।

-श्री वैद्यनाथ झा

कोंकणी समाचार

1. 22 से 26 जनवरी 2019 तक कोंकणी नाट्योत्सव का आयोजन रविंद्र भवन के हॉल में किया गया था। सोमवार 22 जनवरी को 'अगरबत्ती' नाम से बुंदेली भाषा का नाटक दिखाया गया। 23 जनवरी को 'अंधायुग' गुजराती नाटक देखने का अवसर गोवावासियों को मिला। 24 जनवरी को 'आय लव यू' कोंकणी नाटक देखने का अवसर मिला। 25 जनवरी को 'विश्वामित्र' मराठी नाटक दिखाया गया। 26 जनवरी को 'फ्लीस्ट' नाटक का मंचन किया गया था।
2. मौखिक साहित्य को लेकर भी कोंकणी साहित्य के लोगों में काफी दिलचस्पी दिखाई देने लगी है। साहित्य अकादमी ने गोवा के केपें शहर के सरकारी महाविद्यालय में 'मौखिक साहित्य' विषय पर परिसंवाद आयोजित किया। विशेषज्ञों ने अलग-अलग आयामों को लेकर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए।

-डॉ. चंद्रलेखा डिसौज़ा

केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्‌वारा आयोजित विविध गतिविधियाँ

निदेशालय/वै.त.श. आयोग तथा हिंदुस्तानी भाषा अकादमी, नई दिल्ली के संयुक्त आयोजन के क्रम में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की 150वीं जयंती के सुअवसर पर "गांधी चिंतन: हिंदी भाषा और साहित्य तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी की स्थिति" विषय पर एकदिवसीय संगोष्ठी दिनांक 02 अक्तूबर 2018 को निदेशालय में आयोजित की गई।

21 फरवरी, 2019 को मातृभाषा दिवस के अवसर पर एकदिवसीय संगोष्ठी में भाषा संगम, प्रयाग के महासचिव डॉ. एम. गोविंदराजन तथा प्रो. के. के. गोस्वामी, नई दिल्ली ने निदेशालय एवं आयोग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के मध्य मातृभाषा की महत्ता और विविध संदर्भों में उसकी आवश्यकता संबंधी विचारों को प्रस्तुत किया।

दिनांक 08 मार्च, 2019 को निदेशालय एवं वै.त.श. आयोग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर एक दिवसीयगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें निदेशालय एवं वै.त.श. आयोग के सभी रचनाकार सदस्यों ने मौलिक रचनाओं का पाठ प्रस्तुत किया।

प्रगति मैदान में पुस्तक मेले के अवसर पर 12 जनवरी 2019 को "भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के कोश-निर्माण में निदेशालय की भूमिका" विषय पर विशेष परिचर्चा का आयोजन किया गया।

NEW DELHI
WORLD BOOK FAIR
5-13 JANUARY 2019
PRAGATI MAIDAN, NEW DELHI

लेखक
एवं
साहित्य मंच

हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला
एवं अंतर्राष्ट्रीय हिंदी परिषद, भारत

हिंदी कार्यशाला, काव्य गोष्ठी एवं 'राजभाषा एवं
साहित्य' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन
दिनांक : 18-19 जनवरी, 2019
स्थान : त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
महिला दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित
विचारगोष्ठी

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-1-2019
1100

Digital India
Power To Empower

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित